वासवदत्ता कथाश्रित रूपक: एक तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय-झाँसी (उ०प्र०)

पीएच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2005

शोध निर्देशक
डा० ओमकार मिश्र
एम०ए०, पीएच०डी०
रीडर-संस्कृत विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा, बाँदा

शोधकर्त्री
अनीता सिंह
एम०ए०, बी०एड०
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा, बाँदा

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

डॉ० ओमकार मिश्र
एम०ए० पी०एच०डी०
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा पी०जी० कालेज
अतर्रा (बाँदा)
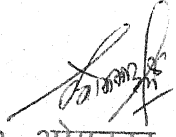
सम्पर्क
द्वारा, सन्तकुमार अग्निहोत्री
गौरा बाबा के पास, नरैनी
रोड अतर्रा (बाँदा) 210001
मो0नं0.– 9450226865

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती अनीता सिंह, शोध–छात्रा संस्कृत विभाग, अतर्रा पी0जी0 कालेज अतर्रा (बाँदा) ने, बुन्देखण्ड विश्वविद्यालय (झाँसी) के नियमानुसार न्यूनतम 200 दिन की अवधि को पूर्ण करते हुए, 'वासवदत्ता कथाश्रित रूपकः एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य पूर्ण कर लिया है। शोध छात्रा के रूप में किया गया इनका यह कार्य शोध–प्रबन्ध के उद्देशों पर आधारित है। इनका यह कार्य मौलिक एवं प्रशंसनीय है।

दिनांकः–
29/12/2005

डॉ0 ओमकार मिश्र

आभार

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से शोध का यह श्रमसाध्य कार्य पूर्ण हुआ। इस कार्य के लिए मै अपने गुरू एवं शोध निर्देशक पूज्य डॉ0 ओमकार मिश्र जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञ एवं आभारी हूँ, जिन्होंने अपने कुशल निर्देशन में मेरा मार्ग दर्शन किया। विभागाध्यक्ष श्री राजाराम दीक्षित जी के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने सदा मुझे उचित परामर्श एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। परिस्थितिवश, यह कार्य इतनी सुगमता से पूर्ण नहीं होता, यदि माता-पिता का आशीर्वाद, प्रोत्साहन एवं सहयोग न मिलता। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरी सामर्थ्य से परे है। इस सन्दर्भ में, मैं अपने जीवनसंगी को कदापि विस्मरित नहीं कर सकती, जिनके असीम प्रेम एवं सहयोग ने मुझे विकट परिस्थितियों में भी निरूत्साहित नहीं होने दिया। इनके अतिरिक्त, इस कार्य के लिए मुझे अनेक लोगों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ। उन सभी का मैं अभार व्यक्त करती हूँ एवं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

दिसम्बर 2005

अनीता सिंह

अनीता सिंह
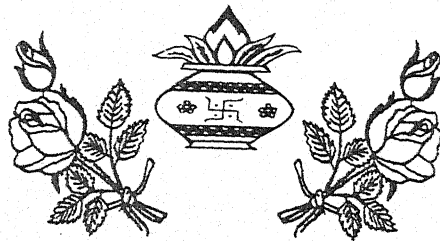
समर्पण

प्रेम के अथाह सागर

प्रिय माँ

श्रीमती गायत्री देवी

एवं

पूज्य पिता जी

श्री राजितराम सिंह

को,

जिनके प्रेम,त्याग व तपस्या का

यह

परिणाम

है।

अनीता सिंह

अनीता सिंह

अनुक्रमणिका

भूमिका

काव्य का अर्थ

आनन्द की अपर संज्ञा 'काव्य' आदि, काल से ही मनीषियों, विबुधों, मर्मज्ञों के अनुशीलन का विषय रहा है । वास्तव में काव्य का वह आधारभूत तत्व कौन सा है, जिसके कारण काव्य 'काव्य' कहा जाता है और जिसके अभाव में वह काव्य नहीं रह जाता । इस प्रश्न को प्राचीन आचार्यों ने 'काव्य की आत्मा' के रूप में उठाते हुये उस आधारभूत तत्व के अनुसंधान का प्रयत्न किया, जो काव्य को 'काव्यत्व' प्रदान करता है । इस सन्दर्भ में विभिन्न आचार्यों ने अपने–अपने मत प्रतिपादित किये हैं, जिसके आधार पर उन्हें निम्नलिखित पाँच सम्प्रदायों में विभक्त किया जा सकता है –

1–रस सम्प्रदाय :– 'रस सम्प्रदाय' संस्कृत काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीन सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य भरतमुनि हैं । इन्होंने 'रस' का विवेचन 'नाट्यशास्त्र' में 'नाट्य' के प्रसंग में ही किया है, क्योंकि इनके समय तक नाट्य और काव्य में भेद नहीं था। •इनकी मान्यता है कि रस के अभाव में कोई भी अर्थ नहीं हो सकता अर्थात किसी भी अर्थ का अर्थतत्व रस पर ही आधृत होता है – 'नहि रसादृते कश्चिदव्यर्थः प्रवर्तते'

परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र के अधिकांश आचार्यों ने काव्य के अन्य तत्वों की अपेक्षा रस तत्व को ही महत्ता प्रदान की है और काव्य में इसकी अनिवार्यता घोषित करके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ही इसे काव्य की आत्मा माना है ।

अग्नि पुराणकार ने काव्य में वाग्विदग्धता की महत्ता स्वीकार करते हुये भी 'रस' को ही काव्य की आत्मा माना है –'वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्' । आचार्य राजशेखर ने काव्यरूपी पुरूष की कल्पना करते हुये शब्दार्थ को उसका शरीर तथा रस को काव्य की आत्मा माना है –'शब्दार्थौ ते शरीरं, रस आत्मा'–[1]

1 – काव्य मीमांसा – पृष्ठ 13 –14

पण्डित राज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ : प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'–[1] लिखकर रस को काव्य की आत्मा घोषित किया है । आचार्य विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य मानते हैं – 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'–[2] 'ये रसस्याङगिनों धर्मा :शौर्यादय इवात्मनः' –[3] लिखकर आचार्य मम्मट ने रस को ही काव्य का आत्मतत्व स्वीकार किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत काव्यशास्त्र में अधिकांष आचार्य रस के ही पक्ष में हैं। जिन आचार्यों ने रस से भिन्न, इतर तत्वों की काव्यरूपता स्वीकार की है उन्होंने भी रस को यथेष्ट महत्व दिया है।

2– अलंकार सम्प्रदाय :– अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व मानने वाले आचार्य अलंकारवादी आचार्य कहलाते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं। दण्डी, उद्भट, रूद्रट, जयदेव आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं। अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी रस की सत्ता तो स्वीकार करते हैं किन्तु उसे प्रधानता नहीं देते हैं। उनके मत में काव्य का प्राणभूत जीवनाधायक तत्व अलंकार ही है। अलंकार विहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है जैसे उष्णता विहीन अग्नि की कल्पना । आचार्य जयदेव ने काव्य में अलंकारं की अनिवार्यता की घोषणा निर्भान्त शब्दों में की है । आचार्य मम्मट ने काव्य में अलङारों की स्थिति वैकल्पिक मानी है – अनलंकृती पुनः क्वापि –[4] इसका खण्डन करते हुये जयदेव लिखते हैं –

अङगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्डामलंकृती ।।[5]

अर्थात जो विद्वान अलंकार विहीन शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं वे उष्णता विहीन अग्नि की सत्ता क्यों नहीं मानते आचार्य भामह काव्य का लक्षण इस प्रकार करते हैं –'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं' अर्थात शब्द और अर्थ का

---

1 – रसगङाधर – पृष्ठ – 4
2 – साहित्य दर्पण – (व्याख्याकार –डॉ0 सत्यव्रत सिंह) पृष्ठ – 23
3 – काव्य प्रकाश– 8 : 1
4 – काव्य प्रकाश 1 : 1
5 – काव्यप्रकाश व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर भूमिका पृष्ठ 16 से उद्धृत

लक्षण इस प्रकार करते हैं –'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं' अर्थात शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य कहलाता है। आचार्य दण्डी लिखते हैं –'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली'[1] अर्थात् इष्ट अर्थात् मनोरम ह्रदयाह्लादक अर्थ से युक्त पदावली (शब्द–समूह) अर्थात् शब्द और अर्थ दोनो मिलकर ही काव्य शरीर है।

3–रीति सम्प्रदाय :– कालक्रम में अलंकार सम्प्रदाय के बाद रीति सम्प्रदाय का स्थान आता है। वामन इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं। इन्होंने 'रीति' को काव्य की आत्मा स्वीकार की है –रीतिरात्मा काव्यस्य'।[2] रीति का अर्थ करते हुये लिखते हैं –' विशिष्ट पद रचना रीतिः[3] अर्थात् विशिष्ट पद रचना रीति कहलाती है। वाक्य में आये विशिष्ट की व्याख्या इस प्रकार की है –'विशेषो गुणात्मा'–[4] अर्थात रचना में माधुर्यादि गुणों का समावेश ही उसकी विशिष्टता है। और यह विशिष्टता ही रीति है। इस सिद्धान्त में 'गुण' और 'रीति' का घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिये रीति सम्प्रदाय 'गुण सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है। वामन ने 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः[5] तथा 'तदतिशयहेतवस्त्वलंकारः'[6] इन दो सूत्रों के माध्यम से गुण तथा अलंकारों का भेद प्रदर्शित किया है। अर्थात् 'गुण' काव्य शोभा के उत्पादक होते हैं, जबकि अलंकार केवल उस शोभा के अभिवर्धक होते हैं। इसलिये काव्य में अलंकारों की अपेक्षा गुणों का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य वामन गुणों को काव्य के लिये अनिवार्य मानते हैं जबकि अलंकारो को वैकल्पिक। मम्मट आदि उत्तरवर्ती आचार्यों ने रीति की उपयोगिता तो स्वीकार की है किन्तु उसे काव्य की आत्मा नहीं माना। उनके मत में – 'रीतियोऽवयव संस्थान विशेषवत्' । अर्थात काव्य में रीतियों की स्थिति वैसी ही है जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों की । इन अवयवों की

---

1 – काव्यादर्श – 1 : 10
2 – काव्यालङार सूत्र – 1 : 2 : 6
3 – काव्यालंकार सूत्र – 1 : 2 : 7
4 – काव्यालंकार सूत्र – 1 : 2 : 8
5 – काव्यालंकार सूत्र – 3 : 2 : 1
6 – काव्यालंकार सूत्र – 3 : 1 : 2

रचना शरीर के लिये उपयोगी भी है और शोभा की जनक भी, फिर भी उसे आत्मा का स्थान नहीं दिया जा सकता है।

4 **वक्रोक्ति सम्प्रदाय** :— रीति सम्प्रदाय के बाद वक्रोक्ति सम्प्रदाय का स्थान आता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक माने जाते हैं। कुन्तक ने काव्य में रीति की प्रधानता को समाप्त करके वक्रोक्ति की प्रधानता की स्थापना की । वैसे काव्य में इससे पूर्व भी वक्रोक्ति की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। आचार्य भामह ने —

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।।[1]

तथा दण्डी ने — भिन्नं द्विधा स्वभावोक्ति वक्रोक्तिश्चेति वाङ्गमयम्।[2] लिखकर वक्रोक्ति के महत्व को स्वीकार किया है। आचार्य वामन भी 'सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः[3] लिखकर काव्य में वक्रोक्ति को स्थान देते हैं। किन्तु उन सबके मत में वक्रोक्ति सामान्य अलंकारादिरूप ही है काव्य की आत्म रूप नहीं। कुन्तक ने ही वक्रोक्ति को विशेष गौरव प्रदान किया तथा उस पर 'वक्रोक्ति जीवितं ' नामक विशाल व महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की । कुन्तक ने अपने पूर्ववर्ती रीति सिद्धान्त को परिमार्जित करते हुये अपने यहाँ स्थान दिया है। वामन ने पांचाली, वैदर्भी , और गौडी आदि रीतियों का आधार देश भेद माना है किन्तु कुन्तक ने उनका आधार देशभेद न मानकर रचनाशैली को माना है और रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग करते हैं। वामन की वैदर्भी रीति को कुन्तक सुकुमार मार्ग, गौडी रीति को विचित्र मार्ग व पाञचाली रीति को मध्यम मार्ग कहते हैं।

5— **ध्वनि सम्प्रदाय** :— इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन माने जाते हैं। इन्होंने 'ध्वन्यालोक' नामक एक युग प्रवर्तक ग्रन्थ की रचना कर एक सार्वभौम सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की । इनके मत में काव्य की आत्मा ध्वनि है —

---

1 — भामह — काव्यालंकार — 2 : 85
2 — काव्यादर्श — 2 : 363
3 — काव्यालंकारसूत्र — — 4 : 3 : 8

काव्यस्यात्मा ध्वनिः[1] इस सिद्धान्त के विरोध में अनेक ग्रन्थ लिखे गये किन्तु अन्त में काव्यप्रकाशकारं आचार्य मम्मट ने अपनी तलस्पर्शनी प्रज्ञा एवं प्रबल युक्तियों से उन सबका खण्डन कर ध्वनि सिद्धान्त की पुन : स्थापना की । इसलिये इन्हें ध्वनि प्रतिष्ठापक परमाचार्य कहा जाता है। अभिनव गुप्त ने 'ध्वन्यालोक' की 'लोचन' टीका लिखकर समस्त भ्रान्तियों एवं आक्षेपों को निर्मूल कर दिया। ध्वनि का लक्षण करते हुये आचार्य आनन्दवर्धन लिखते हैं।

यत्रार्थः शब्दो व तमर्थमुपसर्जनी कृत स्वार्थौ ।
व्यडक्तः काव्य विशेषो सः ध्वनिरीति सूरिभिः कथितः।।[2]

अर्थात् जहाँ अर्थ अपने को तथा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस (प्रतीयमान) अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को विद्वान लोग 'ध्वनि' कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'काव्य क्या है' इस विषय पर पर अनेक आचार्यों ने अपने –अपने मत अभिव्यक्त कर 'काव्य' का अर्थ करने का प्रयास किया है। किसी ने काव्य के शरीर पर विचार किया तो किसी ने काव्य की आत्मा का अनुशीलन किया । पर वास्तव में 'काव्य की आत्मा' ध्वनि है इस सिद्धान्त को ही परम प्रतिष्ठा मिल पायी है।

काव्य के प्रयोजन

जगत का प्रत्येक कार्य प्रयोजनार्थ होता है अर्थात् मनुष्य जो कुछ भी करता है उसका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। काव्य भी इससे अछूता नहीं है। काव्य प्रयोजन के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न आचार्यों ने अपने–अपने मत अभिव्यक्त किये हैं।

भरतमुनि के काव्य प्रयोजन : — संस्कृत काव्यशास्त्र के आदि आचार्य ने नाट्य अथवा काव्य प्रयोजनों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्म संश्रयम् ।

---

1 — ध्वन्यालोक — 1 : 1
2 — ध्वन्यालोक — 1 : 13

हितोपदेश जननं धृतिक्रीडा सुखादि कृत्।।[1] अर्थात् (यह नाट्य) उत्तम, मध्यम और अधम (सभी प्रकार) मनुष्यों के कर्मों पर आश्रित है। हितकारी उपदेशों का जनक (तथा) धैर्य, क्रीडा सुख आदि उत्पन्न करने वाला है –

दुखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् । [2]
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेत्द भविष्यति ।।

यह नाट्य दुःख से व्याकुल, श्रम से परिश्रान्त (और) शोक से सन्तप्त दीन दुखियों के लिये समय पर विश्राम देने वाला होगा।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवधर्नम् ।[3]
लोकापदेशजननं नाट्यमतेद् भविष्यति।।

यह नाट्य धर्म, यश (और) आयु का संवर्धक, हितकारी, बुद्धि बढाने वाला (और) लोक (समस्त संसार) को उपदश देने वाला होगा । स्पष्ट है भरतमुनि जनहित को नाट्य या 'काव्य' का प्रयोजन मानते हैं ।

भामह सम्मत काव्य प्रयोजन :– काव्यालंकारकार आचार्य भामह ने काव्य प्रयोजनों का उल्लेख दो आधारों पर किया है । प्रथम, कवि और पाठक को आधार मानकर और द्वितीय केवल कवि को आधार मानकर । कवि और पाठक को आधार मानकर इन्होंने काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताये हैं –

धर्मार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।[4]
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यं निबन्धनम् ।।

अर्थात् उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप चारों पुरूषार्थों तथा समस्त कलाओं में निपुणता और कीर्ति एवं प्रीति अर्थात आनन्द को उत्पन्न करने वाली होती है। केवल कवि को आधार मानकर काव्यप्रयोजन पर प्रकाश डालते हुये भामह लिखते हैं –

उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्धविधायिनाम् ।

---

1 – नाट्यशास्त्र – 1 : 113
2 – नाट्सशास्त्र – 1 : 114
3 – नाट्यशास्त्र – 1 : 115
4 – भामह काव्यालंकार – 1 : 2

आस्त एवं निरातङ्ककान्तं काव्यमयं वपु :।।[1]

उत्तम काव्यों की रचना करने वाले महाकवियों के दिवंगत हो जाने के बाद भी उनका सुन्दर काव्य–शरीर अक्षुण्ण बना रहता है ।

रणद्धि रोदसी चास्य यावत कीर्तिरनश्वरी ।[2]
तावत् किलायमध्यास्ते सुकृति वैबुधं पदम् ।।

और जब तक उनकी अनश्वर कीर्ति इस भूमण्डल तथा आकाश में व्याप्त रहती है, तब तक वे सौभाग्यशाली पुण्यात्मा देवपद का भोग करते हैं ।

अतोऽभिवाञ्छता कीर्तिं स्थेयसीमा भुवः स्थितेः।
यत्नोविदितवेधेन विधेयः काव्यलक्षणः ।।[3]

इसलिये प्रलय पर्यन्त स्थिर रखने वाली कीर्ति के चाहने वाले कवि को, उसके उपयोगी समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करके उत्तम काव्य की रचनाके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

सर्वथापदपदमत्यें कं न निगाद्यमवद्यवत् ।[4]
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते ।।

काव्य में एक भी अनुपयुक्त पद न आने पावे इस बात का घ्यान रखना चाहिये, क्योंकि बुरे काव्य की रचना से कवि, उसी प्रकार निन्दा का भाजन होता है जिस प्रकार कुपुत्र से पिता की निन्दा होती है।

नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा।[5]
कुकवित्वं पुन : साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिण : ।।

अकवित्व से न तो अधर्म होता है न व्याधि या दण्ड का भागी ही बनना पड़ता है, परन्तु कुकवित्व को विद्वान लोग साक्षात् मृत्यु ही कहते हैं।

---

1 — भामह काव्यालंकार 1: 6
2 — भामह काव्यालंकार 1 : 7
3 — ,, ,, 1 : 8
4 — ,, ,, 1 : 11
5 — भामह काव्यालङार 1 : 12

आचार्य वामन सम्मत काव्य–प्रयोजन :– आचार्य वामन ने कर्ता की दृष्टि से काव्य प्रयोजन पर विचार किया है इनके अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं–एक कीर्ति और दूसरा प्रीति। इनमें से प्रीति अर्थात– आनन्दानुभूति को काव्य का दृष्ट प्रयोजन तथा कीर्ति को अदृष्टार्थ प्रयोजन माना है–'काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीति कीर्ति हेतुत्वात्।'[1] इनमें से अदृष्टार्थ प्रयोजन को विशेष महत्व देते हुये आचार्य वामन ने निम्नलिखित श्लोक दिये हैं –

प्रतिष्ठां काव्यबन्धस्य यशसः सरणिं विदुः ।
अर्कीतिवर्तिनीं त्वेवं कुकवित्वविडंम्बनाम्।।[2]
कीर्ति स्वर्गफलामाहुरासंसारं विपश्चितः।
अकीर्तिन्तु निरालोकनरकोद्‌देशदूतिकाम् ।।[3]
तस्मात् कीर्तिमुपाढ़ातुमकीर्तिञ्च व्यपोहितुम् ।
काव्यालंकार सूत्रार्थः प्रसाद्यः कविपुडगवैः ।।[4]

कुन्तक सम्मत काव्य–प्रयोजन :– आचार्य कुन्तक ने इस विशाल परम्परा से तनिक हटकर विचार किया है। उनका मानना है –

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः ।
काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः।।[5]

अर्थात काव्य की रचना अभिजात – श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न – राजकुमार आदि के लिये सुन्दर एवं सरस ढ़ंग से कहा गया धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का सरल मार्ग है।

व्यवहारपरिपन्दसौन्दर्यं व्यवहारिभि : ।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ।।[6]

---

1 – वामन काव्यालंकार सूत्र – 1 : 1 : 5
2 – वामन काव्यालंकार सूत्र – 1 : 1 : 5
3 – " " " – 1 : 1 : 6
4 – " " " – 1 : 1 : 7
5 – वक्रोक्तिजीवितम् – 1 : 3
6 – " " – 1 : 4

सत्काव्य के परिज्ञान से ही व्यवहार करने वाले सब प्रकार के लोगो को अपने–अपने व्यवहार का पूर्ण एवं सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है।

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम् ।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ।।[1]

उससे सहृदयों के हृदय में चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति से बढकर आनन्दानुभूतिरूप चमत्कार उत्पन्न होता है।

आचार्य रूद्रट सम्मत काव्य प्रयोजन :– आचार्य रूद्रट चतुर्वर्ग प्राप्ति को काव्य प्रयोजन मानते हैं–

ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुवर्गे।[2]
लघु मृदु च नीरसेभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः।।

आचार्य मम्मट सम्मत काव्य–प्रयोजनः–प्रखर प्रज्ञा काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट काव्य के छह प्रयोजन मानते हैं –

काव्यं यशसेंऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।[3]

अर्थात् काव्य का यशजनक, अर्थ का उत्पादक, (लोक) व्यवहार का बोधक, अनिष्ट का नाशक पढने (देखने या सुनने आदि) के साथ ही (सद्यः) परम आनन्द का देने वाला और स्त्री के समान (सरस रूप से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का) उपदेश प्रदान करने वाला होता है ।

इनके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने भी काव्य प्रयोजनों पर अपने–अपने मत स्पष्ट किये हैं । ध्वन्याचार्य आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य प्रयोजनों का पृथक रूप से उल्लेख न करके ध्वनि स्थापना के प्रसंग में ही उसका संकेंत दे दिया है– तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।[4]

---

1 – वक्रोक्तिजीवितम् – 1 : 5
2 – काव्यालंकार रूद्रट – 12 :1
3– काव्यप्रकाश –व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर–उल्लास प्रथम श्लोक –2
4– ध्वन्यालोक – 1 : 1

आनन्दवर्धन के अनुसार केवल प्रीति (आनन्द) ही काव्य प्रयोजन है। आचार्य राजशेखर के अनुसार सहृदय की दृष्टि से काव्य का प्रयोजन है– आनन्द प्राप्ति, और कवि की दृष्टि से काव्य प्रयोजन है। अक्षय कीर्ति। आचार्य हेमचन्द्र सूरी ने तो शब्द भेद से मम्मट–काव्य– प्रयोजनों को ही दोहरा दिया है। जो युक्तियुक्त हैं तथा परवर्ती आचार्यों पर इनका विशेष प्रभाव है। इसलिये यदि मम्मट के काव्य–प्रयोजनों को सर्वश्रेष्ठ कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। साथ ही यदि उपर्युक्त काव्य प्रयोजनों का विश्लेषण किया जाये, तो यह तथ्य सामने आता है कि सभी आचार्य इस विषय पर एकमत हैं कि आनन्दानुभूति काव्य का सर्वप्रमुख प्रयोजन है।

काव्य के प्रकार :– काव्यप्रकाशकार काव्य के तीन भेद बताते हैं। प्रथम, उत्तम काव्य, द्वितीय मध्यम काव्य, या गुणीभूत व्यंग्य तथा तृतीय अधम काव्य या चित्रकाव्य। इनमें से उत्तम काव्य का लक्षण करते हुये आचार्य मम्मट लिखते हैं – 'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः'।[1] अर्थात् वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्य (अर्थ) के अधिक चमत्कार युक्त होने पर काव्य उत्तम होता है और विद्वानों ने उसको ध्वनि (काव्य) कहा है। आचार्य मम्मट –'निःशेष च्युतचदनंस्तनतटं'[2] इत्यादि श्लोक उत्तम काव्य के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत श्लोक में कहने वाली भी जानती है कि यह नायक के साथ भोग करके आयी है और जिससे कहा जा रहा है वह तो जानती ही है। इसलिये वक्ता तथा बोद्धा के वैशिष्ट्य से तू उसी के पास गयी थी, और रमण करने के लिये ही गयी थी, यह बात विशेषकर 'अधम' पद से अभिव्यक्त होती है । इसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारयुक्त है इसलिये मम्मट ने इसको 'उत्तम' काव्य या 'ध्वनि काव्य' का उदाहरण माना है। आचार्य मम्मट मध्यम काव्य का लक्षण इस प्रकार हैं – 'अतादृशि गुणीभूत व्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्' ।[3] वाच्य से अधिक चमत्कारी व्यंग्य न

1 – काव्यप्रकाश व्याख्याकार – आचार्य विश्वेश्वर–प्रथम उल्लास सूत्र – 2
2 – काव्यप्रकाश – वही – प्रथम उल्लास सूत्र–3
3 – काव्यप्रकाश– व्याख्याकार – आचार्य विश्वेश्वर – प्रथम उल्लास सूत्र– 3

होने पर गुणीभूत व्यंग्य नामक दूसरे प्रकार का काव्य होता है जो 'मध्यम काव्य' कहा जाता है । जैसे –

ग्रामतरूणं तुरूण्या नववंञ्जुलमंञ्जरीसनाथकरम् ।

पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया।।[1]

अर्थात् वेतस वृक्ष की ताजी तोडी हुयी मंजरी को हाथ में लिये ग्राम के नवयुवक को देख देखकर तरूणी के मुख की कान्ति मलिन होती जा रही है। यहाँ पर व्यड्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ ही अधिक चमत्कारी है इसलिये यह गुणीभूत व्यंग्य है।

मम्मट का तृतीय काव्यभेद 'अधम या चित्रकाव्य' है। चित्रकाव्य के शब्द चित्र व अर्थ चित्र दो भेद बताते हैं –शब्द चित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्यं त्ववरं स्मृतम ।[2] अर्थात् व्यड्यार्थ से रहित 'शब्द चित्र' तथा 'अर्थ चित्र' (दो प्रकार का) अधम (काव्य) कहलाता है। मम्मट ने – 'स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरः' इत्यादि श्लोक शब्द चित्र तथा 'विनिर्गतं मानदमात्म मन्दिराद्' इत्यादि श्लोक अर्थचित्र के उदाहरण स्वरूप दिया है। आचार्य विश्वनाथ काव्य के दो भेद मानते हैं– प्रथम ध्वनि तथा द्वितीय गुणीभूत व्यङ्य – काव्यं ध्वनिर्गुणीभूत व्यंग्य चेति द्विधा मतम्।[3] इनमें से प्रथम ध्वनि काव्य का लक्षण करते हुये लिखते हैं –'वाच्यातिशयिनि व्यङ्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्।'[4] अर्थात् ध्वनि संज्ञक काव्य, जिसे सर्वोत्तम काव्य कहा गया है, वह है जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्य रूप अधिक सुन्दर (अतिशय चमत्कार जनक हुआ करता है) तात्पर्य यह है कि ध्वनि काव्य में जो अर्थ व्यङ्य रूप से व्यक्त होता है, वह इतना चमत्कार जनक होता है कि वाच्यार्थ तिरस्कृत हो जाता है। वस्तुतः यही काव्य का सर्वोत्कृष्ट प्रकार है। इसे ध्वनि इसलिये कहते हैं क्योंकि यही वह कवि कृति है, जिसमें वह अर्थ ध्वनित हुआ

1– काव्य प्रकाश–व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर––प्रथम उल्लास सूत्र –3
2– काव्य प्रकाश–व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर–प्रथम उल्लास श्लोक 4
3 –साहित्य दर्पण –व्याख्याकार– डॉ सत्यव्रत सिंह चतुर्थ परिच्छेद पृष्ठ–279
4– '' '' '' चतुर्थ परिच्छेद सूत्र 1 पृष्ठ – 279

करता है जिसका सौन्दर्य वाच्यार्थ की पहुँच से परे रह जाता है। काव्य के द्वितीय प्रकार गुणीभूत व्यङ्ग्य का निरूपण करते हुये कविराज लिखते हैं।

`अपरं तु गुणीभूतव्यङ्ग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यङ्ग्ये।'[1]

अर्थात् गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य, वह काव्य है जिसमें प्रतीत होने वाला व्यङ्ग्यार्थ (अपने व्यंजक रूप से अवस्थित) वाच्यार्थ की अपेक्षा अनुत्तम अथवा गुणीभूत लगा करता है। विश्वनाथ के अनुसार गुणीभूत व्यङ्ग्य के आठ भेद होते हैं।

विश्वनाथ कविराज मम्मट सम्मत काव्य के तृतीय भेद 'चित्रकाव्य' को काव्य नहीं मानते। इस सन्दर्भ में उनका अभिमत है कि व्यङ्ग्यार्थ के प्रधान्य और अप्रधान्य ही शब्दार्थ युगल ही काव्यता के प्रयोजक हैं। जिस शब्दार्थ युगल में व्यङ्ग्यार्थ प्रधान हो वह ध्वनि काव्य और जिसमें व्यङ्ग्यार्थ अप्रधान हो वह गुणीभूत व्यङ्ग्य रूप काव्य माना जाता है। इन दो काव्य प्रकारों के अतिरिक्त जो भी शब्दार्थ योजना है (जिसमें व्यङ्ग्यार्थ के प्रधान्य व अप्रधान्य की कोई सम्भावना नहीं, अपितु शब्द अथवा अर्थ का चित्र मात्र दिखाई दिया करता है।) वह 'चित्र' है काव्य नहीं।

आचार्य विश्वनाथ ने 'चित्रकाव्य' को काव्यत्व की श्रेणी में न मानने का जो तर्क दिया है उसी विचार भूमि को आधार बनाकर पण्डित राज जगन्नाथ ने काव्य के चार प्रकार सिद्ध किये हैं –

1– उत्तमोत्तम काव्य– शब्दार्थौ यत्र गुणी भवितात्मानौ कमप्यर्थम व्यगतस्ताद्यम।[2]

2 –उत्तम काव्य :– यत्र व्यङयमप्रधानमेव सच्चमत्कार कारणं तद् द्वितीयम्।[3]

3 –मध्यम काव्य :– यत्र व्यङ्ग्य चमत्कारासमानाधिकरणो वाच्य चमत्कार –स्तत् तृतीयम।[4]

1– साहित्य दर्पण व्या० का डॉ० सत्यव्रत सिंह पृष्ठ – 319
2 –रस गंगाधर प्रथम आनन
3– '' '' ''
4– '' '' ''

4— अधम काव्य :— यत्रार्थः चमत्कृत्युपस्कृता शब्द चमत्कृतिः प्रधानं तदधमं चतुर्थम्।[1]

स्पष्ट है कि मम्मट ने काव्य के तीन विश्वनाथ ने दो तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने चार प्रकार मानें हैं ।

रूपक का अर्थ :— संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि से काव्य के दो भेद माने गये हैं— दृश्य तथा श्रव्य काव्य। उनमें से दृश्य काव्य को 'रूप' भी कहते हैं 'रूपं दृश्यतयोच्यते[2]' आरोप किया जाने के कारण नाट्य 'रूपक' कहलाता है —'रूपकं तत्समारोपात्[3]' अब नाट्य का अर्थ बताते हुये दशरूपककार कहते है — अवस्थानुकृर्तिनाट्यं [4]

अर्थात् अवस्था का अनुकरण ही 'नाट्य' है। नायक की उदात्त आदि अवस्थाओं का अनुकरण अथवा अभिनय कौशल 'नाट्य' कहलाता है। अर्थात् जो काव्य अभिनेय होता है वह 'नाट्य कहलाता है। यह अभिनय चार प्रकार का होता है—

1 — आङ्गिक

2 — वाचिक

3 — आहार्य

4 — सात्विक

उनमें से अंग द्वारा सम्पादित अभिनय आंगिक, वाणी द्वारा सम्पादित वाचिक, वेषभूषा द्वारा सम्पादित आहार्य और मनोभावों के आविष्करण द्वारा सम्पादित सात्विक अभिनय कहलाता है —

भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्विकस्तथा।।[5]

1— रस गंगाधर प्रथम आनन्
2— दशरूपक — 1.8
3 — दशरूपक — 1.9
4 — दशरूपक — 1 : 7
5 — साहित्यदर्पण — 6 : 2

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मुख में चन्द्रमा का आरोप किया जाने के कारण 'मुखचन्द्र' में रूपक (अलंकार) कहलाता है इसी प्रकार नट में राम आदि की अवस्था का आरोप होने के नाट्य को 'रूपक' कहते हैं ।

रूपक के भेद :– रस पर आश्रित होने वाला रूपक दस प्रकार का होता है– दशधैव रसाश्रयम्[1] जो निम्नलिखित हैं –

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।[2]

(अर्थात् 1– नाटक 2– प्रकरण 3– भाण 4 – व्यायोग 5– समवकार 6 – डिम 7– ईहामृग 8– अंडक 9– वीथी 10 – प्रहसन)

नाटक :– नाटक का वृत्त (चरित्र) इतिहास, पुराण आदि में प्रसिद्ध होना चाहिये। वह मुखादि पंञ्च सन्धियों से तथा अनेक विभूतियों से युक्त होना चाहिये। श्रृंगार आदि अनेक रसों से व्यवहृत होता हुआ सुख दुःख आदि की अनुभूति कराने वाला, अधिकतम् दश तथा कम से कम पाँच अंको वाला नाटक होता है।

इसका नायक प्रख्यात वंश का राजर्षि धीरोदत्त, प्रतापी, दिव्य, अथवा अदिव्य होना चाहिये। श्रृंगार या वीर में से कोई एक प्रधान रस होता है । नाटक में कुल चार या पाँच मुख्य पुरूष कार्य में संलग्न होते हैं। गोपुच्छ के अग्रभाग के समान अंको को समायोजित करना चाहिये। 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पंचसन्धि–समन्वितम्'[3] अभिज्ञान शकुन्तलम् नाटक का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

2 प्रकरण :– कथावस्तु लौकिक एवं कवि कल्पित होती है। इसका प्रधान रस श्रृंगार तथा नायक ब्राह्मण, मंत्री, अथवा वैश्य होता है, जो विध्नपूर्ण धर्म, अर्थ, तथा काम में धीरप्रशान्त होता है। जैसे 'मृच्छकटिक' का नायक चारूदत्त' एक ब्राह्मण है। 'मालतीमाधव' का नायक माधव' मंत्री तथा 'पुष्पभूषित' एक वणिक है। प्रकरण की नायिका कुलीन, वेश्या अथवा दोनों हो सकती हैं। जैसे 'पुष्पभूषित' नामक प्रकरण

2– दशरूपक – 1 : 8
4– साहित्य दर्पण , – 6 : 3
3– '' '' – 6 : 7 – 11

में कुलीना' नायिका, रंगवृत्त प्रकरण में वेश्या नायिका तथा मृच्छकटिक' में कुलीना वेश्या नायिका है। 'भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितं.'[1]

3 भाण :— धूर्तों के चरित्र से युक्त अनेक अवस्थाओं से व्याप्त 'भाण' एक अंकवाला ही होता है। अकेला विट ही जो निपुण वा पंडित होता है – रंग में अपनी अथवा दूसरों की अनुभूत बातों को प्रकाशित करता है। सम्बोधन तथा उक्ति, प्रत्युक्ति 'आकशभाषित' के द्वारा होती है। सौभाग्य और शौर्य के वर्णन से बीर और श्रृंगार रस को सूचित किया जाता है । इसकी कथावस्तु कविकल्पित तथा वृत्ति प्रायः 'भारती' होती है मुख' ओर 'निर्वहण' सन्धियों के साथ साथ गेपपदादिक दसों लास्यांग होते हैं। 'भाणः याद् धूर्त्तचरितो[2] लीला मधुकरम्'[2] इसका प्रमुख उदाहरण है।

4 व्यायोग :— 'ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः'।[3] अर्थात व्यायोग की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसमें स्त्रियों की संख्या बहुत कम तथा पुरूष पात्रों की संख्या प्रचुर हुआ करती है। इसमें 'गर्भ ' और 'विमर्श ' सन्धियों की योजना अपेक्षित नहीं रहा करती और इसकी एक अंक में ही समाप्ति आवश्यक मानी गयी है । इसमें युद्ध स्त्री के लिये नहीं होता तथा 'वृत्ति' भी कौशिकी' नहीं होती है। इसका नायक प्रख्यात 'धीरोदत्त' राजर्षि अथवा दिव्य पुरूष होता है। हास्य, श्रृंगार तथा शान्त के अतिरिक्त कोई अन्य रस प्रधान होता है।'सौगन्धिकाहरणम्' इसका प्रमुख उदाहरण है।

5 समवकार :— 'वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्' ।[4] समवकार वह रूपक भेद है जिसका वृत्त पुराण आदि में प्रसिद्ध देवविषयक अथवा असुर विषयक होता है। इसमें 'विमर्श' सन्धि का अभाव होता है तथा अंकों की संख्या तीन होती है। इसमें से प्रथम अंक में दो सन्धियाँ तथा दूसरे व तीसरे अंक में एक–एक सन्धि होती

1— साहित्य दर्पण 6 : 224 : 226
2 – साहित्य दर्पण 6 – 227 –230
3 – ‘‘ ‘‘ 6 – 231 – 233
4— ‘‘ ‘‘ 6 : 234 – 238

है। इसमें देवता तथा मनुष्य 12 नायक होते हैं । जिनमें से प्रत्येक का प्रयोजन पृथक–पृथक हुआ करता है। वीर रस मुख्य होता है तथा बिन्दु, प्रवेशक का अभाव होता है। कौशिकी वृत्ति के पुट के साथ–साथ और तीनों वृत्तियाँ आवश्यक हैं। यथासम्भव वीथी के तेरह अंगो का उपन्यास आवश्यक है। 'गायत्री' 'उष्णिक' आदि अनेक प्रकार के छन्द होते हैं । तीन प्रकार का बिद्रव होता है। प्रथम अंक की कथा 12 नाडियों (24 घडी) में, द्वितीय अंक की कथा 4 नाडी (8 घडी) में सम्पन्न होनी चाहिये। 'समुद्रमंथनम्' इसका प्रमुख उदाहरण है।

6 डिम :– 'मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्ता दि'[1]. डिम की कथावस्तु इतिहास होती है। यह माया इन्द्रजाल युद्ध, क्रोध और उद्भ्रान्ति (उत्तेजना) आदि चेष्टाओं तथा उपरागों से व्याप्त होता है। इसमें रौद्र रस की प्रधानता होती है। विष्कम्भक प्रवेशक तथा कैशिकी वृत्ति का अभाव होता है। डिम में शान्त, हास्य और श्रृंगार रस का भी अभाव होता है। इसमें 16 नायक होते हैं जो देव, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, सर्प, भूत प्रेत, पिशाचादि होते हैं।त्रिपुरदाह ' डिम का सर्वोत्तम उदाहरण है।

7 <u>ईहामृग</u> :– 'ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरंक।'[2] चार अंको से युक्त ईहामृग की कथावस्तु ऐतिहासिक व कवि कल्पित दोनो का सम्मिश्रण ही हैं इसमें मुख, प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन सन्धियाँ आवश्यक होती हैं इसमें नायक और प्रतिनायक प्रख्यात और धीरोद्धत देव अथवा मानव होते है। इसमें दस पताकानायक होते है जो देव या मानव दोनो प्रकार के हो सकते है। इसमें बधयोग्य भी लोगो के वध का वर्णन नही किया जाता। कुछ नाट्याचार्यो ने ईहामृग के लिए एक अंक की ही रचना पर्याप्त मानी है और देव को ही नायक रूप में स्वीकार किया है। कुछ अन्य आचार्य ईहामृग के लिए छह नायक आवश्यक मानते है जो किसी दिव्यांगना के लिए परस्पर लड़ते झगड़ते है। इसका उदाहरण कुसुम शेखर विजादि है।

---

1 – साहित्य दर्पण – 6 : 241–244
2 – साहित्य दर्पण –

8– अंडक –'उत्सृष्टिकांङ्क एकाङ्को नेतराः' ....।[1] उत्सृष्टांक अथवा अंक एक अंक में ही रचा जाता है जिसमें साधारण पुरूषों को नायक रूप में चित्रित किया जाता है। इसमें नारी विलाप के वर्णन की प्रचुरता के कारण करूण रस अंगी रस होता है । इतिवृत्त प्रख्यात होती है। सन्धि, वृत्त और अंगों की योजना भाण के समान होती है। इसमें जय–पराजय युद्ध–नियुद्ध आदि वाणी द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं। साथ ही साथ इसमें निर्वेदप्राय वचनों का भी बाहुल्य रहा करता है । 'शमिष्ठाययातिः' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

9 वीथी :– 'वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽय.'......।[2] अर्थात् वीथी वह रूपक प्रकार है जिसमें एक ही अंक हुआ करता है और एक ही नायक 'आकाश भाषित 'के द्वारा चित्र विचित्र, उत्तर–प्रत्युत्तर–पूर्वक, अन्यान्य काल्पनिक पात्रों से, आलाप–संलाप करते हुये चित्रित किया जाया करता है। इसमें श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति अधिक और अन्य रसों की अभिव्यक्ति कम रखी जाया करती है। इसमें सन्धियाँ तो केवल 'मुख' और निर्वहण दो ही हुआ करती हैं किन्तु अर्थप्रकृतियाँ पांचों होती हैं। नाट्यकोविदों ने वीथी के 13 अंग बताये है–
(1) उद्घात्यक (2) अवगलित (3) प्रपंच (4) त्रिगत (5) छल (6) वाक्केलि (7) अधिबल (8) गण्ड (9) अवस्यन्दित (10) नालिका (11) असत्प्रलाप (12) व्याहार और मृदव अथवा मार्दन –'अस्यास्त्रयोदशाङगानि निर्दिशन्ति मनीषिण.'।[3]

10 प्रहसन :– 'भाणवत्सन्धिसन्ध्यङगलास्याङ्ग.'....।[4] अर्थात् –प्रहसन रूपक की वह विधा है जिसमें सन्धि, सन्ध्यङग, लास्यांग और अंक की रचना 'भाण' की भाँति हुआ करती है। इसका इतिवृत्त अधम प्रकृति के नायक का इतिवृत्त होता है और कविकल्पित होता है। प्रहसन में 'आरभटी' वृत्ति नहीं हुआ करती और न विष्कम्भक और प्रवेशक की ही रचना की जाया करती है। प्रहसन का अंगी रस

1 – साहित्य दर्पण –

हास्य हुआ करता है। इसमें वीश्यडग योजना ऐच्छिक है अनिवार्य नहीं। शुद्ध संकीर्ण और विकृत भेद से 'प्रहसन' तीन प्रकार का होता है।

उपर्युक्त 10 रूपक के अतिरिक्त 18 उपरूपकों भी दृश्य काव्य का प्रकार माना है जो निम्नलिखित हैं –

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।
प्रस्थानोल्लाप्य काव्यानि प्रेड.खणं रासकं तथा ।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका ।
दुर्भल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ।
अष्टादश प्राहुरूपरूपकाणि मनीषिण।
बिना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम् ।।[1]

अर्थात् (1) नाटिका (2) त्रोटक (3) गोष्ठी (4) सट्टक (5) नाट्यरासक (6) प्रस्थान (7) उल्लाप्य (8) काव्य (9) प्रेड.खण (10) रासक (11) संलापक (12) श्रीगदित (13) शिल्पक (14) विलासिका (15) दुर्मल्लिका (16) प्रकरणी (17) हल्लीशक और भणिका – ये 18 प्रकार के उपरूपक हैं ।

संस्कृत काव्य में रूपक का स्थान :—वस्तुतः 'नाटक' दशरूपकों का एक भेद है । कालान्तर में 'नाटक' शब्द अर्थ विस्तार प्राप्त कर सभी रूपकों के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होने लगा। फलतः 'नाटक' या नाट्य' शब्द से रूपक का भाव ग्रहण होना चाहिये। नाट्य शब्द जो रूपक वाची है सर्वप्रथम भरत के नाट्यषास्त्र में शीर्ष स्थान प्राप्त करता है। ब्रह्मानन्द सहोदर 'रस' की अनुभूति काव्य के सरस सरल और सहज माध्यम से सर्वदा होती रही है। काव्य के अनिवर्चनीय तत्व 'आनन्द' की सत्ता सभी पाष्चात्य वा यौर्वात्य विद्वान स्वीकार करते हैं। भारतीय ऋषि 'रसोवैसः से जिस रस की उपमा ब्रह्म से देते थे वह 'रस' काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है।

1– साहित्य दर्पण – 6 : 4 – 6

नाट्य या रूपक दृश्य काव्य हैं और नाटकों में श्रव्य काव्यों की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंज्जकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता, विषय की विविधता और रसानुभूति अधिक होती है। इसलिये वह जनप्रिय होता है। यही कारण है कि काव्य में नाटकों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है – 'काव्येषु नाटकं रम्यं'।

संस्कृत साहित्य की विश्व प्रसिद्धि में 'अभिज्ञानशकुन्तल' जैसे उच्च कोटि के नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। काव्य में नाटक की सर्वोच्च प्रतिष्ठा करते हुये कविता–कामिनी के चतुर चितेरे महाकवि कालिदास कहते हैं

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते ।
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधात्येकं समाराधनम् ।।[1]

काव्य के श्रवण की अपेक्षा रंगमंच का आकर्षण अधिक होता है। काव्यानन्दानुभूति में मुनष्य स्वसत्ता भूलकर नाटक के पात्रों में स्वयं को निरूपित कर लेते है तथा उनका सुख दुःख स्वयं का मानने लगते हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य वामन कहते हैं –

सन्दर्भेषु रूपकं श्रेयः तद्धि चित्रं ।
चित्रपटवत विशेषसाकल्यात् ।।[2]

'नाटक' लोकवृत का अनुकरण होता है। इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन होता है। आचार्य भरतमुनि नाट्यवेद को सार्ववर्णिक कहते हैं। नाटक में विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन तथा विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं का चित्रण होता है –

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।[3]
नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम् ।।[4]

---

1 – मालविकाग्निमित्र 1 : 4
2 – काव्यालङ्कार सूत्र – 1 : 3 : 30–31
3 – नाट्यशास्त्र – 1 :107
4 – नाट्यशास्त्र – 1 : 112

नाटक के द्वारा दर्शकों में उत्साह की वृद्धि होती है। अल्पज्ञ विशिष्ट बोध को प्राप्त कर लेता है तथा विद्वान और विशेषज्ञता प्राप्त कर लेते हैं। यह धनियों के लिये मनोरंजन, दुःखितों के लिये आश्वासन, व्यावसायियों के लिये आय का साधन और व्याकुलों के लिये शान्तिप्रद होता है–

'अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।[1]
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च ।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरूद्विग्नचेतसाम्।[2]

नाटक' दुःख से व्याकुल, श्रम से परिश्रान्त और शोक से सन्तप्त दीन–दुखियों के लिये समय पर विश्राम देने वाला तथा धर्म, यश, आयु का सम्वर्द्धक, हितकारी, बुद्धि बढाने वाला और लोकोपदेश जनक होता है।

दुःखर्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।[3]

कवि विल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरितम् ' में काव्य रूपी अमृत को साहित्य समुद्र के मंथन से उत्पन्न कहा है–

साहित्य पाथो निधिमन्थनोत्थं
काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्रा :।

भरत नाट्यशास्त्र को कलाओं का विश्वकोष कहा जाता है । भरतमुनि कहते हैं ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग, और कर्म नहीं है, जो नाट्य में न दिखाई देता है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृष्यते ।।[4]

1– नाट्यशास्त्र – 1 : 110
2– '' '' – 1 : 111
3– '' '' – 1 : 114 – 115
4– '' '' – 1 : 116

सारांशतः कहा जा सकता है कि रूपक संस्कृत काव्य राशि की अमूल्य निधि हैं। विश्ववाङ.गमय में संस्कृत रूपक सर्वोच्च पद प्रतिष्ठित हैं । रूपक में गद्य और पद्य दोनों का सुष्ठु मणिकान्चन संयोग होता है। इसकी श्रेष्ठता को परिलक्षित करते हुये ही अलंकारिकों ने ''नाट्कान्तं कवित्वम् '' कहा हैं ।

****

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य में वासवदत्ता

संस्कृत साहित्य में वासवदत्ता :– अनिन्द्य सुन्दरी वासदत्ता राजा उदयन की प्रेयसी पत्नी थी। वासवदत्ता उदयन की प्रणयकथा संस्कृत काव्य को सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान करती है। इस प्रसिद्ध लोकवृत्त को अनेक कवियो ने अपनी रचना का आधार बनाया तथा अपनी मेघा–शक्ति एवं कल्पना चातुर्य से संस्कृत साहित्य को अमूल्य ग्रन्थ–रत्न प्रदान किये। 'वासवदत्ता' भारतीय संस्कृति की प्रबल पोषिका है। उसका चरित्र भारतीय नारी को एक जीवन्त सन्देश देता है। पति का सर्वथा हित ही भारतीय नारी का परम उद्देश्य होता है। वासवदत्ता ने भारतीय मूल्यों की रक्षा करते हुए, जिस प्रकार आदर्श पत्नीत्व धर्म का निर्वहन किया वह वस्तुतः भारतीय नारीं के मध्य श्रेष्ठ स्थान प्रदान करता है।वासवदत्ता कथा पर आधारित जिन संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन हुआ ,उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

1–**प्रतिज्ञायौगन्धरायण–** प्रथम नाटककार महाकवि भास की इस कृति का मुख्य आधार उदयन वासवदत्ता की प्रणय कथा है।

2–**स्वप्नवासवदत्तम्–** भास की यह अपर कृति भी वासवदत्ता की उदादत्त भवनाओं पर आधृत है।

3–**तापसवत्सराजचरितम् –** मायुराज अनङ्हर्ष–प्रणीत इस रचना में भी वासवदत्ता प्रमुख पात्र है। इसमें राजा उदयन का अत्यधिक विलासितापूर्ण चित्रण है।

4–**प्रियदर्शिका–**श्री हर्ष कृत 'प्रियदर्शिका' का कथानक भी वासवदत्ता–उदयन पर आधारित है।

5–**रत्नावली–**श्री हर्षकृत इस परिष्कृत रचना में वासवदत्ता की महत्वपूर्ण भूमिका का वर्णन है।

6—वीणावासवदत्तम्—इस रचना के लेखक का नाम अभी तक अज्ञात है।वासदत्ता—उदयन पर आधारित इस कृति में उदयन का क्रूर तथा गर्विष्ठ चित्रण प्राप्त होता है। इसकी कुछ घटनाएं तथा नवीन पात्रों की संकल्पना इस कृति की एतिहासिकता को संदिग्ध बनाती है। वीणा वासदत्तम् की समानता प्रतिज्ञायौगान्धरायण से की जाती है।[1]

इस नाटक का पता 'शाकुन्तल' की एक टीका से चलता है। इसके आठ अंको में से प्रथम चार अंक की उपलब्ध होते है। इसकी कथा 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के ही समान है। इसमें तथा भास के नाटकों में बहुत कुछ सादृश्य होने के कारण डा0 कुन्हन राजा इसे भास की रचना मानते है। किन्तु इस नाटक का वस्तु—विन्यास भास के नाटको से भिन्न है, शैली में कृत्रिमता अधिक है, पात्र भी अधिक रूढ़ि सम्मत है। अतः इसे भास की रचना मानना उचित नही है।[2]

7—अभिसारिकावञ्चितकम् — विशाखदत्त प्रणीत इस रचना का केन्द्रीय आधार वासवदत्ता व उदयन का प्रणय—व्यापार है। इस रचना में परम्परा से हटकर पद्मावती का उदयन से प्रेम के स्थान पर विरोध का चित्रण हुआ है। नवीं शताब्दी की यह कृति सम्प्रति अप्राप्त है।

8— वासवदत्ता नाट्यधारा :— यह कृति वासवदत्ता उदयन और यौगन्धरायण के कथावृत्त पर आधारित है। इसके रचनाकार सुबन्ध है जो मौर्यकालीन एक ब्राह्मण मंत्री है।[3]

9— मनोरमा वत्सराज : — इस अप्राप्त कृति के रचनाकार श्रीमत् है। सम्भवतः यह श्री हर्ष की नाट्कृति प्रिदयदर्शिका के मनोरमा पर आधारित है।

10— ललित रत्नमाला :— क्षेमेन्द्र की इस कृति में वासवदत्ता व उदयन

1— दृष्टव्य — कुप्पुस्वामी— वीणावासदत्तम् — प्रस्तावना

2— संस्कृत साहत्य की रूपरेखा — चन्द्रशेखर पांडे — पृष्ठ 105

3 — प्राचीन भारत — वी0डी0 महाजन पृष्ठ 339

की कथा है। इस अप्राप्त रचना का साम्य 'रत्नावली' से स्थापित किया जाता हैं

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थ भी है जिनमें 'वासवदत्ता' का उल्लेख मात्र हुआ है। 5 वीं0 शताब्दी में रचित धम्मपद की बुद्ध घोष टीका में उदयन वासवदत्ता के पारस्परिक अनुराग का वर्णन प्राप्त होता है।

सोमप्रभकृत 'कुमारपाल' प्रतिबोध' का मुख्य कथानक अवन्ति नरेश चण्डप्रद्योत से सम्बन्धित है।[1] इसी सन्दर्भ में वासवदत्ता का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

मालाधारी देवपाल कृत 'मृगावती चरित' अनुपलब्ध ग्रन्थ है। इसमें वासवदत्ता उदयन व पद्मावती का वर्णन मिलता है।

वासवदत्ता की ऐतिहासिकताः :— इतिहास में वासवदत्ता चण्डप्रद्योत की पुत्री तथा उदयन की पत्नी के रूप में वर्णित है। अतएव वासवदत्ता की ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में उदयन की ऐतिहासिकता पर दृष्टि—प्रेक्षण समीचीन हो जाता है। 'वत्स' राज्य गंग्रा नदी के दक्षिण में स्थित था। कौशाम्बी इसकी राजधानी थी जो सम्प्रति इलाहाबाद से लगभग 30 किमी0 की दूरी पर स्थित है। कौशाम्बी संस्कृति और व्यापार का प्रसिद्ध नगर था क्योंकि यह नगर उस व्यापारिक मार्ग पर स्थित था जो विदिशा व उज्जैन होते हुए दक्षिण भारत को जाता था।

[2]ईसा पू0 की छठी शताब्दी में बुद्ध के समय उदयन 'वत्स' का प्रसिद्ध राजा था। उदयन को मगध के राजा अजातशत्रु और अवन्ति के राजा चण्डप्रद्योत से संघर्ष करना पड़ा। मगध से उसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। चण्डप्रद्योत ने उदयन को बंदी बना लिया था। बाद में उससे की पुत्री वासवदत्ता का विवाह हो जाता है।

---

1 — कुमारपाल प्रतिबोध, पृष्ठ 66 संस्करण 1920

2— प्राचीन भारत का इतिहास — वी0डी0 महाजन पृष्ठ 339

वासवदत्ता एक ऐतिहासिक पात्र है वह दो राज्यों की मित्रता की केन्द्रीय धुरी है। जहाँ वासवदत्ता तथा वत्सनरेश उदयन का विवाह अवन्ति व 'वत्स' राज्य की विरोध को समाप्त करता है वहीं वासवदत्ता के उदात्त सहयोग से यौगन्धरायण मगधराज दर्शक की पुत्री 'पदमावती' का विवाह उदयन से कराने में सफल होता है, जिसके फल स्वरूप मगध तथा वत्स का विरोध भी समाप्त हो जाता है।

अतएव कहा जा सकता है कि वासवदत्ता एक ऐसी एतिहासिक पात्र है जो मगध वत्स तथा अवन्ति राज्य को एक सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है वासवदत्ता न होती तो कदाचित उदयन इतनी प्रसिद्धि न प्राप्त कर पाता,। कदाचित, वत्स का इतिहास कुछ और कह रहा होता।

वासवदत्ता कथाश्रित रूपक एवं रूपककार

भासः व्यक्तित्व एवं कृतित्वः — उपलब्ध संस्कृत रूपकों के आधार पर महाकवि भास प्राचीनतम नाटककार, माने जाते हैं। उनकी सरल, सरस एवं सुमधुर प्रसादोक्तियों से पूर्ण रचनाएं उन्हें संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट स्थान प्रदान करती है। जयदेव, भास से अभिभूत होकर ही भासो हासः लिखकर उन्हें सम्मानित करते है। महाकवि कालिदास, बाणभट्ट आदि उच्चकोटि के विद्वान भास की प्रशस्ति करते हैं। सन् 1909 ई0 में महामहोपाध्याय श्री टी0 गणपति शास्त्री ने त्रावणकोर राज्य से भास प्रणीत 13 नाटक खोज निकाले है। उनके इस अनुसंधान कार्य ने ही भास को प्रथम नाटककार होने का गौरवपूर्ण स्थान दिलाया।

यद्यपि इन नाटको को भास–प्रणीत मानने के संबन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। तथापि इन नाटकों को भासकृत मानने वाले विद्वानों की युक्तियाँ अत्याधिक प्रबल एवं तर्क संगत है, जो निम्नलिखित है —

1— महाकवि बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में भास की प्रशंसा में लिखा

है कि उनके नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार से होता है। पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है और पताकास्थान कों का प्रयोग है –

सूत्रधार कृतारम्भै नाटकै बहुर्भूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देव कुलैरिव।।[1]

इन नाटको में उपर्युक्त सभी विशेषताएं पायी जाती है। ये नाटक 'नान्दी' पाठ से प्रारम्भ न होकर 'सूत्रधार' से ही प्रारम्भ होते हैं। फलतः इन्हें भास प्रणीत माना जाता है।

2– वाकपति ने अपने ग्रन्थ 'गउऽवहो में भास को 'जलणमित्त' (ज्वलनमित्र) अर्थात् अग्नि का मित्र कहा है। भास के बहुत से नाटकों में अग्निदाह का दृश्य मिलता है अतः भास के लिए प्रयुक्त यह विशेषण सार्थक प्रतीत होता है।[2]

3– वामन ने –'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में भास के नाटको से तीन उद्वरण दिये है–

(अ) अध्याय 3 अधिकरण 5 में व्याजोक्ति का उद्वरण 'शरच्छशांक गौरेण' यह स्वप्न वासवदत्तम के अंक 4 में प्रापत है।

(ब) यो भतृपिण्डस्य कृते न युध्यते' यह प्रतिज्ञा यौगन्धरायण (4–2) का उद्वरण है।

(स) अध्याय 1 अधिकरण 5 में उद्धृत यासां बलिर्मदगृहदेहलीनां यह चारूदत्त (1/4) में मिलता है। अतः इन नाटको को भास की रचना मानने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।[3]

4– राजशेखर ने भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम् को सर्वश्रेष्ठ बताया है जिससे स्पष्ट होता है कि स्वप्नवासवदत्तं के रचयिता भास ही हैं

5– रामचन्द्र गुणचन्द्र ने अपनी पुस्तक 'नाट्यदर्पण' में स्वप्नवासवदत्तं को भासकृत बताते हुए, उसका एक श्लोक भी उदृधत किया है। जिसका

1– संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी पृष्ठ280 से उदृघत
2 – संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ कपिलदेव द्विवेदी– पृष्ठ 280
3 – " " " " पृष्ठ 281

ठीक स्थान स्वप्नवासवदत्तं के चतुर्थ अंक में श्लोक तीन के बाद है।[1] इनके अतिरिक्त भामह, अभिनवगुप्त, भोजदेव आदि आचार्यों ने भास के नाटकों का उल्लेख किया हैं। उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि ये नाटक भासकृत ही हैं।

टी0 गणपति शास्त्री द्वारा खोजे गये इन 13 नाटकों के रचयिता के सन्दर्भ में एक और प्रश्न आता है, कि क्या इन सभी नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है ? इसके उत्तर में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हां, इन सभी नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति (भास) है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं –

1– इन सभी नाटकों की एक प्रमुख विशेषता है कि ये सभी नाटक 'सूत्रधार' से प्रारम्भ होते हैं, जबकि अन्य संस्कृत नाटक 'नान्दीपाठ' से प्रारम्भ होते हैं।

2– इन नाटकों में 'प्ररोचना' का अभाव है अर्थात् प्रस्तावना में न लेखक का नाम, न नाटक और न नाट्टकार का ही परिचय मिलता है।

3– इन नाटकों में भूमिका के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य नाटकों में भूमिका के लिए 'प्रस्तावना' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

4– इन सभी नाटको में भरत–वाक्य प्रायः समान है। सभी भरतवाक्यों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः[2] प्राप्त होता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक और अभिषेक नाटक के भरतवाक्य एक ही है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता और दूतवाक्य के भरतवाक्य समान ही है।

5– अनेक शब्द, वाक्य तथा श्लोक कई नाटकों में समान रूप से मिलते हैं।

6– सभी नाटकों में कुछ पात्रों के नाम एक समान है।

1– यथा –भास कृते स्वप्नवासदत्ते शेफालिका तलमवलोक्य वत्सराजः।
पादाक्रान्तिानि पुष्पाणि सोमष्चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्टवा सहसागता।।
संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी पृष्ठ 281

2– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – चन्द्रशेखर पांडे – पृष्ठ 107–111

7– सभी नाटकों की भाषा व शैली समान है।

8– नाटकों में कवि कल्पनाएं समान है, तथा कुछ नाटकों में घटना, परिस्थिति और वर्णनों में समानता पायी जाती है।

9– कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध है, जैसे 'स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तरभाग प्रतीत होता है। इसी प्रकार प्रतिमानाटक तथा अभिषेक नाटक भी परस्पर संबद्ध हैं। इन तर्कों के अतिरिक्त अनेक ऐसे तर्क उपलब्ध हैं जो नाटकों की भास प्रणीति को सिद्ध करते हैं। तथापि विद्वानों का एक सम्प्रदाय इन नाटकों को भास–कृति मानने से इनकार करता है हुए अपने पक्ष में वे कतिपय खण्डनीय तर्क देते है–[1]

1– राजशेखर के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थकार ने 'स्वप्नवासदत्तं' को भास रचित नही लिखा है।

2– 12 वीं शताब्दी के रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत 'नाट्यदर्पण' मे 'स्वप्नवासदत्तं' को भास की रचना बताते हुए उसका जो श्लोक उद्धत किया गया है वह उपलब्ध स्वप्नपासदत्तं में प्राप्त नहीं होता। इस आधार पर प्रो0 सिल्वन लेवी स्वप्नवासदत्तं को भास की कृति नहीं मानते। किन्तु सम्भव है कि किसी प्रतिलिपि कर्ता ने दोष दृष्टि वश इसे छोड़ दिया हो, क्योंकि नाटक में इस श्लोक का उपयुक्त स्थान चतुर्थ अंक में प्राप्त होता है। काले महोदय द्वारा सम्पादित 'स्वप्नवासदत्तं' में यह श्लोक यथा स्थान रखा गया है।

3– अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक की अपनी टीका में एक 'आर्या' उद्धत की है जो उपलब्ध स्वप्नवासदत्तं मे नहीं है। गणपति शास्त्री के अनुसार यह आर्या स्वप्नवासदत्तं की कथा वस्तु के लिये अनावश्यक और असंगत प्रतीत होती है सम्भवतः इसीलिये टीकाकार ने इसे छोड़ दिया हो। इस आधार पर इनको भास की रचना न मानना असंगत होगा।

1– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा चन्द्रशेखर पांण्डेय पृष्ठ 99–101

4– महेन्द्र विक्रम वर्मा (620 ई0) नामक पल्लव राजा की कृति 'मत्तविलास' प्रहसन की प्रस्तावना भास की प्रस्तावना से साम्य रखती है। इसके आधार पर इन नाटकों के रचनाकार के रूप में महेन्द्रविक्रम वर्मा को स्वीकार किया जाता है। किन्तु भाषा, शैली, भरतवाक्य की आवृत्ति आदि की भिन्नता इस मत का भी खण्ड़न करती है।

उपर्युक्त तर्को के उपरान्त यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि गणपति शास्त्री द्वारा खोजे गये समस्त 13 नाटक एक ही लेखनी से प्रसूत है।

भास का स्थितिकाल– कतिपय विद्वानों को छोड़कर प्रायः संस्कृत कवियों ने अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है। फलतः उनका काल निर्धारण इतिहासकार विद्वानों के लिये एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। महाकवि भास भी अपने काल वंशादि के विषय में मूक है। कुछ साक्ष्यों, बिन्दुओं को आधार बनाकर विद्वानों ने भास का समय निर्धारित करने का श्रमसाध्य प्रयास किया है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

1–इतना तो निःसदिग्ध है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं, क्योंकि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रं' में भास का आदरपूर्वक नामोल्लेख किया 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमान कवे कालिदासस्य कियायां कथं परिषदों बहुमानः'।[1] प्रथितयशसां पद से ज्ञात होता है कालिदास के समय तक भास पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। कालिदास का स्थित काल प्रथम शताब्दी ई0 पू0 निश्चित सा हो चुका है अतः भास का समय ई0पू0 से 100 वर्ष पूर्व का माना जा सकता है।

(2) कौटिल्य ने भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायणं का एक श्लोक 'नव शराबं सलिलैः[2] अपने अर्थशास्त्र मे उद्धत किया है चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का

1– संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिदेव द्विवेदी पृष्ट 283
2– '' '' '' '' '' पृष्ठ 283

मन्त्री था चन्द्रगुप्त मौर्य 321 ई0पू0 सिंहासनारुढ हुआ। भास का समय चाणक्य से कम से कम 50 वर्ष पूर्व मानना चाहिये। फलतः भास का समय 370 ई0 पू0 के बाद माना जा सकता है।

(3) शूद्रक का 'मृच्छकटिक' नाटक 'चारूदत्त' का ही परिवर्धित रूप माना जाता है। शूदक का समय 220–196 ई0 पू0 निश्चित हो चुका है। अतः भास की स्थिति 220 ई0पू0 से पूर्व ठहरती है।

(4) प्रो0 मैक्डानल पाणिनि का समय 400 ई0पू0 मानते हैं। अतः भास को इस समय के आस–पास का ही माना जा सकता है, क्योंकि भास के नाटकों मे अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। महामहोपाध्याय टी गणपति शास्त्री भी भास का समय 400 ई0 पू0 स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त विद्वानों ने अन्य अनेक तथ्य साक्ष्य स्वरूप रखकर महाकवि भास को 450 ई0 पू0के लगभग माना है।

महाकवि भास ने अपनी रचनाओं के लिये विभिन्न कथा स्रोतों का प्रश्रय लिया, जिसके आधार पर उनके रूपक निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किये जा सकते हैं–

1–रामायण मूलक रूपक– प्रतिमानाटक तथा अभिषेक नाटक

2–महाभारत मूलक नाटक–

(1) पंचरात्र (2) मध्यम व्यायोग (3) कर्णभार

(4) दूतघटोत्कच (5) बालचरित (6) दूतवाक्य

(7) उरुभंड.ग

3– उदयन वासवदत्ता मूलक रूपक–

(1) प्रतिज्ञायौगन्धरायणं तथा (2) स्वप्नवासवदत्तं

4–कल्पना मूलक रूपक– अविमारक, इन रूपकों के नामोल्लेख के उपरान्त इनका अति संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है

1–प्रतिमानाटक– सात अंकीय इस रूपक मे रामायण की कथा संक्षेप मे वर्णित है।

2—अभिषेक नाटक— इस रूपक मे 6 अंक हैं। इसमे रामायण के किष्किन्धाकाण्ड़ से युद्व काण्ड़ तक की सम्पूर्ण कथा संक्षेप में वर्णित है। अन्त में रावण वध के पश्चात राम के राज्यभिषेक का वर्णन है।

3—पंचरात्र— तीन अंक वाले इस रूपक मे यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण दुर्योधन से दक्षिणा में आधा राज्य मांगते हैं। दुर्योधन इसे इस रूप मे स्वीकार करता कि यदि 5 रात्रियों के अन्दर पाण्ड़व मिल जायेगें, तो वह आधा राज्य दे देगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्ड़व मिल जाते है, तथा उन्हे आधा राज्य दे दिया जाता है।

4—मध्यमव्यायोग— यह एकांकी है इसमें मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम की पुत्र दर्शन से आनन्दानूभूति तथा हिड़िम्बा से पुनर्मिलिन का वर्णन है ।

5—कर्णभार— यह भी एक एकांकी है। इसमे कर्णका ब्राह्मणवेष धारी इन्द्र को दान में कवच व कुण्ड़ल देने की कथा है।

6—दूतघटोत्कच— एक अंक वाले इस रूपक में अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात श्री कृष्ण का घटोत्कच को दूत रूप मे दुर्योधन के पास भेजना दुर्योधन द्वारा अपमान तथा दुर्योधन का यह कथन है कि 'मै अपने बाणों से उनको उत्तर दूँगा' इत्यादि कथा वर्णित है।

7—बालचरित— इस रूपक में 5 अंक है इसमें श्री कृष्ण के जन्म से लकर कंस वध तक की कथा वर्णित है।

8—दूतवाक्य— एक अंक वाले इस रूपक में महाभारत के युद्व से पूर्व श्री कृष्ण का पाण्ड़वों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाना, और मनोरथ विफल हो जाने के बाद लौटने का वर्णन है।

9—उरुभंग— यह एकांकी है। इसमें द्रौपद्री के अपमान के प्रतिकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा भंग करके उसको मारने का वर्णन है। संस्कृत साहित्य में यही दुःखान्त नाटक है।

10—अविमारक— इस नाटक में 6 अंक है। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रणय विवाह वर्णित है।

11—चारूदत्त— चार अंकीय इस रूपक में निर्धन किन्तु, उदार वृत्ति वाले ब्राह्मण चारूदत्त और बसन्तसेना का प्रणय वर्णित है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को महाकवि भास केदो रूपक प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासदत्तं ही अभिप्रेय है अस्तु इनका विशद् विन्यास प्रस्तुति किया जायेगा।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण— वासवदत्ता तथा उदयन कथाश्रित यह उत्कृष्ट प्रकार का रूपक है। इस रूपक में वासवदत्ता के अपहरण की घटना वर्णित है। नाटक में यौगन्धरायण प्रमुख पात्र तथा समस्त घटनाओं का सूत्रधार है वह प्रद्योत द्वारा बंदी बनाये गये उदयन को मुक्त कराने के लिये सदैव सक्रिय रहता है। भाषा की सुबोधता एवं सरसता तथा भावपूर्ण शैली से युक्त इस रचना में महाकवि भास के वर्णन चातुर्य से वासवदत्ता और उदयन के मन्च पर न आने पर भी दर्शकों को उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास बना रहता है। उदयन, वासवदत्ता, प्रद्योत यौगन्धरायण, अगांरवती तथा रूमण्वान आदि प्रमुख पात्रों से अलंकृत यह रूपक, पात्रों के अर्थपूर्ण प्रभावात्मक संवाद से राजव्यवस्थाके घात—प्रतिघात तथा विडम्बनाओं का उद्घाटन करता हैं।

स्वप्नवासवदत्तम्— छह अंक वाले इस रूपक में उदयन का पद्मावती तथा वासदत्ता के प्रणय का उत्कृष्ट चित्रण किया गया है। इसमें वासवदत्ता उदयन के विवाह के पश्चात की घटना वर्णित है। अतः स्वप्नवासदत्ता को प्रतिज्ञायौगन्धरायण 'रूपक' का उत्तरार्द्ध माना जाता है नाटकीय संविधान की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। इसकी कथावस्तु प्रभावातक तथा पात्रों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। भास की अपनी इस प्रौढ़ कृति में भावाभिव्यक्ति, वर्णनकुशलता, भाषा सौष्ठव, एवं रस के पूर्ण परिपाक पर विशेष

दृष्टि रही है स्वप्नवासवदत्ता में वासवदत्ता के चरित्र विश्लेषण का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। उसके मनोभावों का चित्रण बड़ा ही सहज तथा मनोवैज्ञानिकता से पूर्ण प्राप्त होता है। भाषा सौष्ठव एवं भावगाम्भीर्य से पूर्ण यह ग्रन्थ नाट्य प्रेमीजनों में प्रतिष्ठ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासदत्तं भास की महान कृतियाँ हैं, जो अपने वस्तु विन्यास की रमणीयता, भावगम्भीरता एवं उत्कृष्ट अभिनेता से युग–2 तक सहृदयों को रसास्वादन कराती रहेंगी।

महाकवि हर्ष व्यक्तित्व एवं कृतित्वः— अन्य संस्कृत कवियों के काल निर्धारण की भॉति हर्ष के काल में इतिहासकार विद्वानों को श्रम नहीं करना पड़ा। सौभाग्यतः उनका काल वृत्त निर्विवाद एवं प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष के जीवन पर आधारित हर्षचरित के पाँच उच्छ्वासों में इनके पूरे इतिहास का वर्णन किया है। हर्ष स्थाणीश्वर और कन्नौज के राजा प्रभाकर वर्धन के पुत्र और राज्यवर्धन के अनुज हैं। इनका राजकाल 606 ई0 से 648 ई0 तक है।

राजा हर्ष उत्तर भारत के श्रेष्ठ सम्राट के रूप में वर्णित हैं। वे वीर विद्वान, गुणग्राही कवि तथा कवियों के आश्रयदाता थे। बाण, मयूर तथा मातंग दिवाकर जैसे उद्भट एवं गुणी विद्वान इनकी सभा को अलंकृत करते थे। सातवीं शताब्दी के इसराजा की प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं।

कुछ विद्वानों के मतानुसार राजा हर्ष का उक्त प्रियदर्शिका आदि रूपकों का लेखक होना संदिग्ध है। उनके सन्देह का प्रमुख कारण–11वी0 शताब्दी के कश्मीरी आचार्य मम्मट का काव्यप्रकाश में काव्यप्रयोजनो के सन्दर्भ में 'कालिदासादीनामिव यशः श्री हार्षादे

धावकादीनामिव धनम्[1] लिखना है। जिसके फलस्वरूप टीकाकारों का मानना है कि रत्नावली ' आदि रूपकों ' का रचनाकार 'धावक' नामक कवि है, जिसने अपनी रचनाओं को राजा हर्ष को बेंच दिया और प्रभूत धन प्राप्त किया। परन्तु काव्यप्रकाश के टीकाकारों के इस मतिविभ्रम के निवारणार्थ निम्नलिखिरत तथ्य उद्घाटित किये जा सकते है–

1– राजा हर्ष अपनी विद्वता, उदारता तथा दानवीरता आदि प्रसंगों से इतिहास के पृष्ठों को विभूषित करते हैं। वे कवियों, विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। वाणभट्ट ने 'हर्षचरितम्' में उनकी उदारता की मुक्तकण्ठेन प्रशंसा की है।[2] इसलिए सम्भव है कि मम्मट का अभिप्राय यह रहा होगा कि धावक आदि कवियों ने अपनी उत्तम रचनाओं के पुरष्कार स्वरूप 'हर्ष' से प्रभूत धन प्राप्त किया।

यदि 'हर्ष' की प्रवृत्ति कृतियाँ क्रय करने की होती तो वह प्रियदर्शिका, रत्नावली व नागानन्द तक ही सीमित न रहती। अपितु अनेक रचनांए भी उनके नाम से जानी जाती। प्रो0 बूहलर ने काश्मीर में काव्यप्रकाश की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त की, जिसमें धावक के स्थान पर 'बाण' पाठ आया है। इससे डॉ0 हॉल ने काव्यप्रकाश के 'बाणादीनामिव धनम्[3] से यह अर्थ लगाया कि 'रत्नावली' हर्ष की रचना न होकर बाण की रचना थी। लेकिन प्रसाद गुण एवं सरल शैली से परिपूर्ण 'रत्नावली' विकटबन्ध बाण की रचना नहीं मानी जा सकती। काव्य प्रकाश में कहीं धावक तो कहीं बाण का उल्लेख होना राजा हर्ष की गुणग्राहिता एवं दानवीरता की ही पुष्टि करता है। पाश्चात्य विद्वानों का यह तर्क कि वीर, तथा राजकार्यो में व्यस्त रहने वाले राजा को उच्चकोटि की रचना के लिए अवसर कैसे प्राप्त हो सकता है ? वस्तुतः प्रलाप ही कहा जा सकता है। क्योंकि भारतीय सांस्कृतिक परम्परा साक्षी है कि यहाँ

---

1 – काव्यप्रकाश – व्या0 आचार्य विशेश्वर – प्रथम उल्लास पृष्ठ – 10

2 – संस्कृत सहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिल देव द्विवेदी पृष्ठ– 367

3– '' '' '' पृष्ठ 366 पृष्ठ– 367

ऐसे शासकों का अभाव नहीं रहा जो उत्तम शासन संचालक के साथ–साथ अन्य साहित्य आदि क्षेत्रों के महारथी थे।

कुछ विद्वान प्रियदर्शिका, रत्नावली व नागानन्द इन तीनों को एक ही लेखक की कृति मानने में संकोच करते हैं। उनकी यह मान्यता कि ये तीनो कृतियाँ एक ही व्यक्ति की नहीं हो सकती, निम्नलिखित तर्को की निकष पर स्वतः खण्डित हो जाती हैं–

1– उपर्युक्त तीनों रचनाओं में अनेक स्थलों पर भाव, शब्दावली और घटना संयोगों में समानता पायी जाती है।

2– तीनों रूपकों की प्रस्तावना में उन्हें श्री हर्ष की रचना बताया गया है 'श्री 'हर्षोनिपुणः कविः' तीनों रचनाओं में समान रूप से प्राप्त होता है।

3– प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनों के 'भरतवाक्य' लगभग समान हैं तथा प्रियदर्शिका और नागानन्द के दो श्लोक भी समान हैं।

4– प्रियदर्शिका व रत्नावली में पात्रों, घटना संयोगो के अत्याधिक साम्य से एक कृति दूसरी का परिवर्धित स्वरूप प्रतीत होती हैं

उपर्युक्त अकाट्य तथ्यों के आधार पर माना जा सकता है कि उक्त रूपकत्रय का रचनाकार एक ही व्यक्ति है। और वह हर्ष ही है, इसमें संदिग्धता का कहीं अवकाश नहीं।

हर्ष की तीन रचनाएं संस्कृत साहित्य जगत को आलोकित करती है– प्रियदर्शिका रत्नावली तथा नागानन्द। सर्वप्रथम नागानन्द का अतिसंक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात प्रस्तुत शोध के लिए अभीष्ट प्रियदर्शिका व रत्नावली का परिचय प्राप्त करेंगे जो उदयन वासवदत्ता के सरस वृत्त पर आश्रित हैं।

नागानन्द – पाँच अंकों वाले इस नाटक में विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन तथा मलयवती के प्रणय व परिणय तथा शंखचूर्ण सर्प के बदले जीमूतवाहन के आत्मोत्सर्ग की कथा वर्णित है। भाषा, शैली, भावसौन्दर्य की दृष्टि से

महत्वपूर्ण यह नाटक, नाटकीय दृष्टि से पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता। करूण रस प्रधान हर्ष की इस अन्तिम कृति पर बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव है।

प्रियदर्शिका :– हर्ष की यह चार अंकीय कृति वत्सराज उदयन तथा दृढ़वर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका के प्रणय–वृत्त पर अवस्थित है। इसकी कथा तथा कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रं में पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है। दोनों में अन्तपुर प्रणय कथा का चित्रण मनोरम ढंग से हुआ है। यद्यपि यह कृति कालिदास से पर्याप्त प्रभावित है। तथापि हर्ष ने अपनी कल्पना चातुरी से इस मनोरम वृत्त में नूतनता व मौलिकता लाने का उत्कृष्ट प्रयास किया है। तृतीय अंक में गर्भांक में ~~गर्भांक~~ की योजना का सन्निवेश प्रियदर्शिका की प्रमुख विशेषता है। प्रसाद गुण युक्त शैली, भाषा की सरलता एवं अनेक वर्णन व घटनाओं के वर्णन की रोचकता से परिपूर्ण 'प्रियदर्शिका में यद्यपि नाट्य तत्वों का पूर्णतः सन्निवेश नहीं हो सका तथापि यह एक उत्कृष्ट प्रणय रचना है।

रत्नावली :–रत्नावली प्रियदर्शिका की अपेक्षा अधिक कलापूर्ण तथा परिष्कृत रचना है। इसमें सिंहल देश की राजकुमारी तथा उदयन की प्रणय कथा वर्णित है। नाट्य शास्त्र के नियमों का इसमें पूर्णतः पालन हुआ है फलतः साहित्यदर्पण तथा दशरूपक में इसके अनेक उद्धरण लिये गये हैं। प्राञ्जल एवं सरस शैली से युक्त 'रत्नावली' में यद्यपि मांसल प्रणय का चित्रण हुआ है तथापि इसमें भारतीय संस्कृतिगत मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं हुआ है। वस्तुतः यदि कहा जाये कि हर्ष प्रणय चित्रण में सिद्धहस्त हैं, तो कदाचित यह अत्युक्ति नहीं होगी। श्री हर्ष ने इसमें उदयन, वासवदत्ता, रत्नावली यौगन्धरायण आदि पात्रों के चरित्र चित्रण का पूर्ण अवसर प्रदान किया है। प्रणयप्रधान इस नाटिका में रसराज श्रृंगार, पूर्ण रूपेण अभिव्यक्त होकर सहृदयों को परमतृप्ति प्रदान करता है। कथावस्तु की सुश्लिष्टता, घटनाओं की गतिशीलता और रंगमंच पर अभिनेयता की दृष्टि से 'रत्नावली' को संस्कृत नाट्य साहित्य में

विशेष स्थान प्राप्त है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हर्ष ने वासवदत्ता–उदयन के प्रसिद्ध वृत्त पर आश्रित जिन दो चारू रूपकों का प्रणयन किया, उनमें से 'प्रियदर्शिका' कवि की पूर्व कृति है। यही कारण है कि रत्नावली के कथा–संविधान की दृढ़ता की अपेक्षा, प्रियदर्शिका का कथा विधान दृढ़ नहीं है, और न ही प्रियदर्शिका में घटनाओं की वह गतिशीलता देखने को मिलती है जो रत्नावली में सर्वत्र दृष्टव्य है। यद्यपि दोनों रूपकों की पृष्ठभूमि समान है तथापि रत्नावली अधिक लब्ध प्रतिष्ठ है।

महाकवि अनङ्.हर्ष व्यक्तित्व एवं कृतित्व[1] :– महाकवि अनङ्. हर्ष के जीवन के विषय में हमें इसी प्रस्तावना में प्राप्त नामादि संकेत के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसकी कोई अन्य रचना भी है या नही। प्रस्तावना में निबद्ध नटी और सूत्रधार की बातचीत से केवल इतना ही पता चलता है कि ये स्वयं राजपुत्र थे और इनके पिता का नाम नरेन्द्रवर्धन और इनका नाम अनंगहर्ष था। इनका दूसरा नाम मातृराज भी है जो कि सम्भवतः इनका उपनाम रहा होगा। (आर्ये अथ किम्–ननु तस्यैव सकलनरेन्द्रचन्द्रमसः श्री नरेन्द्रवर्धनसूनोः अनंगहर्षापरनाम्नः श्रीमातृराजस्यकृतौ–)

यद्यपि अपने काव्य–सौन्दर्य एवं रचनात्मक परिनिष्ठिता के कारण यह नाटक कई सौ वर्षो तक उत्तरवीं आचार्यो के लक्षण ग्रन्थों में सनामनिर्देश स्थान पाता रहा किन्तु ग्रन्थान्तर्गत अंशों को उद्धृत करने के अतिरिक्त कहीं भी कवि के विषय में कोई निर्देश नहीं हो सका है, जिससे उनकी काव्यकीर्ति के अतिरिक्त उसके जीवन के अन्य अंशों के बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता। स्वभाव से यह कवि बड़ा गुणी, परोपकारी एवं सहृदय था, इस बात का उल्लेख अवश्य ही उसकी इस कृति की प्रस्तावना में हो गया है।

1– तापसवत्सराज चरितम् – भूमिका पृष्ठ 8 – 9

यथा – स च कवि :–

सद्वृत्तानुगतां गतो गुणवतामाराध्नेऽनुक्षणं
कर्तुं वान्छति सर्वदा पणयिनां प्राणैरपि प्रीणनम्।
मात्सर्येण विनाकृतः परकृती श्रृण्वन् वहत्युच्चकै–
रानन्दाश्रु जलप्लवाप्लुतमुखो रोमांचपीनां तनुम्।।

कहा नही जा सकता कि आत्मस्तुतिपरक ये शब्द स्वयं कवि ने निबद्ध किए या उसके प्रशंसक किसी सूत्रधार ने। अधिक संगत तो यही लगता है कि उसके चारित्रिक वैशिष्टय का निरूपरण करने वाले इस पद्य की रचना किसी सूत्रधार ने ही की हो, क्योंकि इससे आगे की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से कहा गया है– स च किल कविरेवमुक्तवान्– मया हि–

न कवित्वाभिमानेन न चाप्यन्येन हेतुना।
रचितं नाटकमिदं स्वगोष्ठीभावितात्मना।।

और अपनी उस गोष्ठी का परिचय देते हुए वह कहता है–

पदवाक्यप्रमाणेंषु • सर्वभाषाविनिश्चते।
अंगविध्नासु सर्वासु परं प्रावीण्यमागता।।

जो भी हो इन पद्यो से उसके व्यक्तित्व पर थोड़ा ही सही, पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। यह 'नरेन्द्रसूनु' गुणियों एवं विद्वानों का आदर करने वाला था। इसकी सभा–गोष्ठी में अनेक शास्त्रों एवं भाषाओं के जानने वाले विद्वान आश्रय पाते थे। स्वयं भी बड़ा विद्वान था तथा विद्या न इसे यथोचित 'विनय' प्रदान की थी। यह सर्वथा निरभिमान था यह तो उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है ही पर यह परम दयालु एवं सहृदय भी था इसका प्रमाण स्वयं इसकी कृति है। सम्पूर्ण कृति में जिस प्रेम सौजन्य एवं करूण का निबन्धन किया गया है, वह स्वयं कवि हृदय से निस्सृत अनुभूति का ही मूर्त रूप है। कालिदास और भवभूति को छोड़कर कम ही ऐसे कवि होंगे जिनकी वाणी में इतनी सुकुमारता एवं हृदयस्पर्शिता के दर्शन होते हों जितने कि कविवर

'अंनगहर्ष' की वाणी में। सूत्रधार ने इसकी व्यक्तिगत प्रशंसा में जो कुछ कहा है वह सर्वथा अक्षरशः तथ्य प्रतीत होता है।

इसके बाद होने वाले लगभग सभी काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इसकी रचना से प्रभूत उदाहरण दिये हैं, इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि इस कवि ने अपने पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रों का विशेषकर नाटयशास्त्र का बड़ा गहन अध्ययन किया था तथा अपने इस शास्त्र–ज्ञान को अपनी इस रचना में क्रियात्मक रूप भी प्रदान किया।

महाकवि अनङ्.गहर्ष का स्थितिकाल[1] :– यद्यपि इसके जीवनवृत्त एवं जन्मस्थान के समान ही इसकी निश्चित स्थिति काल भी अभी अनुसन्धान का विषय है किन्तु इस विषय में सौभाग्य से कुछ ऐसे बहिरंग प्रमाण सुलभ है जिनके आधार पर इसके सम्भाव्य स्थितिकाल का अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी ऊपरी सीमा नवीं शताब्दी का मध्य भाग तथा निम्न सीमा 12वी. शताब्दी का अन्त ठहरती है। इसके लिए इसकी निम्न सीमा से ऊपरी सीमा की ओर जाने पर सबसे पहले हम देखते है कि कुमार पाल कें सभा पण्डित जैन कवि हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यनुशासन' में अलंकारो के प्रसंग में इस नाटक के कुछ पद्य उद्धृत किए है। कुमार पाल का समय 12 वी. शताब्दी का अन्त और 13वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है।

जल्हण ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में इस नाटक के एक पद्य 'आदौमानपरिग्रहेण (3/17) को संग्रीत किया है। जल्हण का समय स्वयं उसके अनुसार 1179 शालिवाहन शकाब्द है।

इससे पूर्व भोजदेव ने अपने 'सरस्वती कण्ठाभरण' एव 'श्रंगार प्रकाश' में इस नाटक से कई पद्य एवं अन्य अंश उद्धृत किये है। भोज का समय शालिवाहन शकाब्दि के अनुसार 11 वी. सदी माना गया है।

1– तापसवत्सराजचरितम् – भूमिका पृष्ठ – 10–11

दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 11 वी. शताब्दी के पूवार्द्ध के लेखक 'मङ.खक' 'मम्मट' और 'कुन्तक' ने क्रमशः अपने ग्रन्थों – 'श्रलंकारसर्वस्व', 'काव्यप्रकाश' एवं 'वक्रोक्तिजीवित' में इस नाटक से एक या एकाधिक पद्यो एवं गद्यांशो को उद्धृत किया है।

10वी. शताब्दी के प्रारम्भ काल के कवि, आलोचक राजशेखर ने भी 'काव्यमीमांसा' के 12 वे अध्याय में इस नाटक के एक पद्य 'सद्यस्नात (3/16) को उदधृत किया है।

इससे और पूर्व की ओर जाने पर हम देखते है कि भरत–नाट्यशास्त्र एवं ध्वन्यालोक के यशस्वी टीकाकार अभिनवगुप्त ने तो इस नाटक के नामग्रहण–पूर्वक अनेक पद्यों एवं इसमें निरूपित नाटकीय स्थितियों को उद्धृत किया है। अभिनवगुप्त का समय स्वयं उन्हीं के द्वारा प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में निबद्ध एक पद्य के आधार पर शालिवाहन शकाब्द के 936 के निकट ठहरता है।

स्वयं ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने भी अपने 'ध्वन्यालोक' में इसके द्वितीय अंक से एक पद्य 'उत्कम्पिनी' (2/16) को उद्धृत किया है। आनन्दवर्धन का समय नवम शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। यही इस नाटक के अंशो को उद्धृत करने की पूर्व सीमा है।

क्योंकि आठवीं शताब्दी के पूर्व के लेखकों बाण आदि तथा आचार्यो रूद्रट, वामन आदि ने कहीं इस कवि तथा इसकी कृति का कोई उल्लेख नही किया है तथा इसके नाटक में श्रीहर्ष ने नाटकों एवं भवभूति के नाटको का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है इसलिये यह मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि इस कवि का स्थिति काल आठवीं शताब्दी के मध्य में कही रहा होगा।

'मायुराज अनंगहर्ष की दो श्रेष्ठ रचनाएं प्राप्त होती है प्रथम 'तापसवत्सराज' तथा द्वितीय 'उदात्तराघव'।

तापसवत्सराजचरितम् :— मायुराज अनङ्.हर्ष की यह अमर कृति 6 अंको में विभक्त है। इसमें राजा उदयन वासवदत्ता के जल जाने की बात सुनकर नितान्त खिन्न होकर तापस बन जाता है तथा प्रयाग में आत्म हत्या करने को तैयार हो जाता है। मंत्रियों द्वारा अनेक युक्तियों से उसके प्राणों की रक्षा की जाती हैं। वह तापस वेष में घूमता हुआ आश्रम में जाता है, जहाँ पद्मावती से उसकी भेंट होती है। पद्मावती उस पर मुग्ध है किन्तु उदयन उसके प्रति उदासीन है। अन्त में मगध की राजकुमारी से उसका विवाह हो जाता है तथा वासवदत्ता से पुनर्मिलन हो जाता है। नाटकी की कथावस्तु बड़ी ही मार्मिक तथा रोचक है। इसकी घटनाओं में कार्यान्विति की पूर्ण सत्ता है। संस्कृत नाटकों में इसे विशेष स्थान प्राप्त है।

उदात्तराघव :— अनंगहर्ष की दूसरी रचना 'उदात्तराघव' है। इसकी ख्याति संस्कृत नाट्य साहित्य में बड़ी व्यापक व विपुल है। नितान्त लोकप्रिय इस नाटक में राम को उदात्तरूप में चित्रित करने के लिए मायुराज को उदात्त रूप में चित्रित करने के लिए मायुराज ने रामायणीय घटनाओं में अनेक परिवर्तन किया है। दशरूपकावलोक में उदात्तराघव के अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं। भोजदेव ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में तथा हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' की 'स्वोपज्ञ' टीका में इस नाटक से श्लोक उद्धृत किया है। इस प्रकार यह बहुप्रशंसित नाटक राम से संबधित नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रस्तुत अध्ययन की सार्थकता :—

'वासवदत्ता' का चरित्र नाटककारों को सदा ही आकर्षित करता रहा हैं महाकवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष भी इस आकर्षण से नही बच पायें। परिणामस्वरूप प्रतिज्ञायौगन्धरायणम, स्वप्नवासदत्तम्, प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम् जैसे उत्कृष्ट रचनाएं हमारे समक्ष है।

साहित्य की यह कलात्मक परम्परा (रूपक) अनेक अनुसंधानो की जननी रही है। अनेक साहित्य समीक्षकों ने भास, हर्ष व अनंगहर्ष की इन कृतियों पर अपनी समीक्षाएं प्रस्तुत की है। परन्तु इन नाटकों (रूपक) की एक साथ समग्र रूप से तुलनात्मक समीक्षा पर सम्भवतः अनुसंधान कर्ताओं का ध्यान नही गया। वासवदत्ता कथाश्रित रूपक संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। अतएव इन नाटकों (रूपक) की एक साथ समग्र रूप से समीक्षा वांछनीय है।

दीर्घकालिक अन्तराल के होते हुए भी भास, हर्ष एवं अनङ्गहर्ष ने 'वासवदत्ता' कथा को अपनी रचनाओं का आधार बनाया किन्तु इन सभी ने ही उनमें मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत कर अपने नाट्य कलेवर को अधिक से अधिक सुन्दर बनाकर सामाजिको को रसास्वादन कराने के अनुकूल बनाने का यत्न किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत नूतनताएं ही प्रस्तुत शोध का केन्द्र बिन्दु है। ये नूतनताएं चाहे कथावस्तु के संविधान से संबधित हो, या पात्र–चित्रण से। चाहे भाषा शैली से संबधित हो या भावाभिव्यक्ति व रस संयोजन से।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में महाकवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष के व्यक्तित्व उद्घाटन के साथ–साथ उनके ह्रदयों में व्याप्त भावसान्द्रता व वैचारिक सघनता का उद्धाटन किया गया है। उनकी दीर्घकालिक सांसारिक अनुभूतियों एवं लोक व्यवहार में प्रवीणता को स्पष्ट करते हुए यह उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है कि इन रूपककारों के दीर्घकालिक अन्तराल में भाषा शैली किस प्रकार प्रभावित हुयी तथा सामाजिक सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों में क्या परिवर्तन आए। 'वासवदत्ता' के चरित्र को, भिन्न–भिन्न युगों के साहित्यकारों ने किन भिन्न–भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया यह निःसन्देह शोध का विषय है।

इन सभी बिन्दुओं के आधार पर की गयी उक्त ग्रन्थों की तुलनात्मक समीक्षा, निश्चित ही विविध पक्षों व अनेक नवीन तथ्य उद्घाटित करने में सक्षम होगी। यही इस अध्ययन की सार्थकता है।

****

द्वितीय अध्याय

वासवदत्ता कथाश्रित रूपक: वस्तु विन्यास

रूपक की विधाएं :– अभिनेय या 'दृश्य काव्य' में उदात्त आदि अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है, अतः वे नाट्य कहलाते हैं। दृश्य होने के कारण वे रूप कहलाते हैं– रूपं दृश्योच्यते।[1] तथा नट में रामादि के रूप का आरोपण होने से दृश्य काव्य 'रूपक' कहलाता है।[2] वस्तु नायक तथा रस रूपक के भेदक तत्व हैं– 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः"[3] इन्हीं को आधार बनाकर नाट्यचार्यों ने रूपक के दस भेद बताये हैं –

नाटककमथ प्रकरणं भाणव्यायोग समवकार डिमाः।[4]
ईहामृगाड्.कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

प्रस्तुत, समीक्ष्य पाँचो रूपकों को भेद तत्वों की निकष पर रखकर उनमें प्रयुक्त विधाओं का कथन किया जाएगा।

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् की विधा :– प्रतिज्ञायौगन्धरायणं के प्रारम्भ में भास ने 'वयमपि प्रकरण मारभामहे तथा अन्त में 'इतिप्रतिज्ञानाटिकावसिता' लिखकर 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' को प्रकरण तथा नाटिका दो संज्ञाएँ प्रदान की है। प्रकरण तथा नाटिका की निकष पर इसे रखकर देखने से ज्ञात होता है कि वस्तुतः यह न तो प्रकरण है और न ही नाटिका। प्रकरण के लिए रूपक का दस अंक का होना, अमात्य विप्र या वणिक, धीर प्रशान्त नायक तथा कुलीना अथवा वेश्या नायिका का होना अनिवार्य है।[5] अतः यह प्रकरण की कोटि में नहीं आता। नाटिका के लिए प्रकरण की भाँति कथावस्तु कविकल्पित तथा नायक प्रख्यात व धीर ललित होना चाहिए। इसमें चार अंक तथा मुख्य रस श्रृंगार होता है। स्त्री पात्रों की बहुलता होनी चाहिए।[6]

1– दशरूपकम् – व्या0 श्री निवास शास्त्री 1 : 8
2– रूपकम् तत्समारोपात् दशरूपकम् श्री निवासशास्त्री 1 : 9
3– दशरूपकम् श्री निवास शास्त्री 1 : 6
4– साहित्यदर्पण डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 3
5– साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 224, 226
6– दशरूपक श्री निवास शास्त्री 3 : 48 – 52

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नाटिका के लिए आवश्यक तत्वों में से चार अंकों की ही उपलब्धता है। अतः यह नाटिका भी नही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भास ने प्रतिज्ञायौगनधरायण को नाट्य शास्त्रीय दृष्टि से प्रकरण या नाटिका न कहकर सामान्य दृष्टि से ही कहा है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नाटक के तत्व उपस्थित है। इसकी कथावस्तु 'प्रख्यात', नायक 'धीर', 'प्रशान्त' है। इसमें सन्धियाँ, अर्थकृतियाँ तथा सन्ध्यङ्ग भी मिलते हैं। अतः इसकी नाट्यशास्त्रीय कोटि 'नाटक' ही मानना चाहिए यद्यपि इसमें नाटकीय तत्व पाँच अंक का होना घटित नहीं होता।

स्वप्नवासवदत्तम् की विधा – श्रृंगार रस प्रधान स्वप्नवासवदत्तम् में नायक 'उदयन' 'प्रख्यात' वंश का 'धीरोदात्त' प्रकृति का है। अर्थप्रकृतियों सन्धियों तथा संन्ध्यांगो से युक्त इस रूपक की नाट्यशास्त्रीय विधा 'नाटक' है।

प्रियदर्शिका की विधा – प्रियदर्शिका की कथावस्तु 'प्रख्यात' नायक 'धीरललित' तथा मुख्य रस 'श्रृंगार' है। स्त्री पात्रों की बहुलता से पूर्ण इस रचना में ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा दो नायिकांए हैं। इसमें अर्थप्रकृतियों, सन्धियों तथा सन्ध्यांगों का सन्निवेश है अतः निःसन्देह इसकी नाट्यशास्त्रीय प्रकृति 'नाटिका' है।

रत्नावली की विधा – नाट्याचार्यो ने 'रत्नावली' को शुद्ध रूप से 'नाटिका' माना है।[1] चार अंक वाली इस नाटिका में नायक उदयन प्रख्यात वंशोत्पन्न राजा 'धीरललित' प्रकृति का है। इसकी मुख्य नायिका 'रत्नावली' राजकुलोत्पन्न नवानुरागवती कन्या है। ज्येष्ठा नायिका राजमहिषी 'वासवदत्ता' है, जो 'प्रगल्भा' प्रकृति की है तथा पग–पग पर मान में रूठी व राजा द्वारा अनुनय–विनय द्वारा मनायी जाती हुयी प्रदर्शित होती है। श्रृंगार रस प्रधान कैशिकी वृत्ति व सन्धि चुतष्टय से युक्त इस रूपक में नाटिका के लिए अनिवार्य समस्त तत्व उपस्थित हैं।

तापसवत्सराजचरितम् की विधा :– तापसवत्सराजचरितम् की कथावस्तु 'प्रख्यात' तथा 6 अंकों में निबद्ध है। इसका नायक उदयनविख्यात वंशोत्पन्न 'धीरोदात्त' प्रतापी

1– साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ– 532

राजर्षि है। पांच सन्धियों से युक्त इस रूपक में 'करूण विप्रलम्भ' रस अंगीरस है। इसमें समस्त नाटकीय तत्व घटित होते हैं अतः यह रूपक उत्कृष्टकोटि का 'नाटक' है।

कथा का आधार तथा मूल कथा में परिवर्तन

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् की कथा का आधार तथा मूलकथा मे परिवर्तन :— महाकवि भास प्रणीत प्रतिज्ञायौगन्धरायण चार अंकों में विभक्त एक उत्कृष्ट नाटक है। इसमें वत्सराज उदयन को महासेन द्वारा बन्दी बनाया जाना, यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा तथा कुशल नीति व्यवहारों द्वारा वत्सराज की मुक्ति एवं वासवदत्ता के अपहरण की कथा वर्णित हैं।

प्रथम अंक :— प्रथम अंक में हंसक यौगन्धरायण को बताता है कि महासेन ने छल से उदयन का अपहरण कर लिया है। यौगन्धरायण यह प्रतिज्ञा लेता है कि राहु से ग्रसित चन्द्रमा के समान पकड़े गये स्वामी को यदि मुक्त न करा दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।

द्वितीय अंक — इस अंक में प्रद्योत की राजधानी का वर्णन है। प्रद्योत–पुत्री वासवदत्ता के विवाह हेतु अनेक राजाओं के प्रस्ताव आने पर महासेन, रानी तथा कंचुकी से विवाह सम्बन्धी परामर्श करता है। अन्य राजाओं के गुणों का कथन करने के पश्चात महासेन पूछता है कि 'वासवदत्ता' किसे दी जानी चाहिए तभी सहसा कंचुकी को 'गृहीतो वत्सराजः' के स्थान पर 'वत्सराजः' कहना, राजा व रानी का ध्यान उदयन की ओर आकृष्ट करता है। रानी अंगारवती परोक्षरूप से वासवदत्ता के लिए उदयन को सुयोग्य वर कहती है।

तृतीय अंक :— तृतीय अंक में यौगन्धरायण, उन्मत्तक तथा रूमण्वान्, श्रमणक का वेषधारण कर अन्य साथियों के साथ प्रद्योत की राजधानी में उदयन की मुक्ति हेतु प्रयत्नरत है। यौगन्धरायण की, घोषवती वीणा, नलागिरि हाथी, वासवदत्ता तथा उदयन को कौशाम्बी ले जाने की पुनः प्रतिज्ञा की घटना भी इस अंक में है।

चतुर्थ अंक :— इस अंक में उदयन भद्रावती हाथी पर सवार होकर वासवदत्ता का अपहरण करके भाग जाता है। और यौगन्धरायण बन्दी बना लिया जाता है। उसे

अपने बन्दी होने का शोक नहीं, अपितु वह अपनी प्रतिज्ञापूरी करने पर गौरवान्वित है। प्रद्योत के अमात्य भरतरोहक के सभी प्रश्नों का उत्तर बड़े ही तर्क पूर्ण ढंग से देता है। इसी बीच महासेन यौगन्धरायण को पुरस्कार स्वरूप स्वर्ण रचित पात्र भेजता है, जिसे यौगन्धरायण अस्वीकार कर देता है। जब उसे चित्र फलक द्वारा उदयन–वासवदत्ता के परिणय की सूचना मिलती है तो वह इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेता है।

महाकवि भास रचित प्रतिज्ञायौगन्धरायण का कथानक आधार सोमदेव का कथा सरित्सागर है। भास ने मूल कथा में कतिपय दृष्टव्य परिवर्तन किये है–

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायण में शिविका में बैठकर जाती हुई वासवदत्ता को देखकर उदयन प्रेमाभिभूत होता है। जबकि कथा सरित्सागर में उदयन व वासवदत्ता दोनों परस्पर प्रेमासक्त तथा उदयन विवाह के लिए अत्यन्त उद्यत है।

2– 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में, बन्दी हो जाने के पश्चात उदयन हंसक द्वारा यौगन्धरायण को सन्देश भेजता है तथा यौगन्धरायण उदयन को सन्देश भेजता है तथा यौगन्धरायण उदयन को मुक्त कराने की प्रतिज्ञा करता है। कथा सरित्सागर में ये दोनों तथ्य उद्घाटित नहीं है।

3– कथासरित्सागर में यौगन्धरायण, महासेन को विशेष महत्व देता है तथा बारम्बार उदयन को महासेन से मित्रता करने को कहता है।[1] जबकि भास ने इन दोनों तथ्यों का कहीं उल्लेख नहीं किया है।

4– भास का यौगन्धरायण एक कूटनीतिज्ञ मंत्री है, जबकि कथा सरित्सागर में यौगन्धरायण एक इन्द्रजालिक के रूप में चित्रित है।[2]

5– कथासरित्सागर में वासवदत्ता की सहमति से अपहरण की योजना बनती है तथा उसकी सखी कान्चनमाला का भी अपहरण किया जाता है। जबकि प्रतिज्ञायौगन्धरायण में इन दोनों तथ्यों का सर्वथा अभाव हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन का 20 सैनिकों के साथ नीलकुवलयतनु

1– कथासरित्सागर – 2/3/81–82
2– " " 2 / 4 / 47 – 77

हांथी को वश में करने के लिए प्रस्थान, वहाँ महासेन के सैनिको के साथ युद्ध में घायल होकर गिर जाना, प्रद्योत्त के सैनिको द्वारा उदयन के वध का प्रयत्न शांकलायन द्वारा उदयन की प्राणरक्षा जैसे प्रसंग भास की उर्वर कल्पना शक्ति के परिणाम है। कथा सरित्सागर में इन तथ्यों का कोई उल्लेख नहीं है।

स्वप्नवासवदत्तम का कथानक तथा आधार – स्वप्नवासदत्तम् भास की नाट्य कुशलता का चूडान्त निदर्शन है। यह प्रतिज्ञयौगन्धरायण का उत्तरार्द्ध माना जाता है। 6 अंक वाले इसे नाटक में लावणकदाह का प्रवाद फैलाकर ब्राह्मण धारी यौगन्धरायण अवन्तिका वेषधारी वासवदत्ता को मगध–राजकुमारी पद्मावती के पास न्यास में रख देता है। राजा उदयन वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार पाकर उसी आग में प्राण त्यागने को उद्यत हो जाता है। उसका वासवदत्ता में दृढ़प्रेम है। इस नाटक में उदयन की विरहावस्था का बड़ा मार्मिक वर्णन है। कालान्तर में उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है। अनिंद्य सुन्दरी पद्मावती के साथ रहता हुआ भी, वह अपनी प्रिय पत्नी वासवदत्ता को विस्मरित नहीं कर पाता। एक दिन स्वप्न में वह वासदत्ता को देखता है तथा उससे मिलने की उत्कृष्ट अभिलाषा व्यक्त करता है। वत्सदेश की विजय के पश्चात चित्रफलक के प्रसंग से उदयन वासदत्ता का सुखद मिलन होता है।

कथानक का आधार तथा मूल कथा में परिवर्तन – 'स्वप्नवासदत्तम्' कथानक का आधार उदयन से संबधित लोककथा व कथा सरित्सागर है। महाकवि भास ने अपनी अनूठी सर्जना–शक्ति से मूलकथा से कतिपय परिर्वतन किये है–

1– 'स्वप्नवासदत्तम् में आरूणि द्वारा अपह्रत उदयन के राज्य को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से लावणक दाह तथा पद्मावती के विवाह का वर्णन है। जबकि कथासरित्सागर में लावणक दाह तथा पद्मावती विवाह का प्रयोजन यौगन्धरायण की, उदयन को चक्रवर्तित्व प्राप्त कराने की उत्कंट अभिलाषा है।

2– कथा सरित्सागर में प्रद्योत को मगध का राजा तथा पद्मावती को प्रद्योत की पुत्री कहा गया है। जबकि यह ऐतिहासिक साक्ष्यों से बिल्कुल अलग है। भास ने भी इसे अस्वीकार करते हुए प्रद्योत को अवन्ति नरेश तथा पद्मावती को मगध देश

की राजकुमारी के रूप में चित्रित किया है।

3– 'स्वप्नवासवदत्तम् में यौगन्धरायण वासवदत्ता को अपनी बहन बताकर पद्मावती के सरंक्षण में रखता है। जबकि कथासरित्सागर में वह यौगन्धरायण की पुत्री के रूप में न्यासीकृत की जाती है।[1]

4– कथा सरित्सागर में लावणक में, वासवदत्ता की जलकर मृत्यु हो जाने के समाचार को सुनकर राजा उदयन मूर्च्छित हो जाता है। अनन्तर वह नारद के वचनो को याद करता है कि, तुम चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करेंगे।[2] इस प्रकार वह भी वासवदत्ता को जीवित समझता है तथा वासवदत्तादाह को मंत्रियों का नीति–प्रयोग मानता है। परन्तु भास ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नही किया है।

5– स्वप्नवासवदत्तम् में वासवदत्ता तथा यौगन्धरायण की जलकर मृत्यु हो जाने का प्रवाद वर्णित है जबकि कथा सरित्सागर में वासदत्ता की मृत्यु प्रवाद फैलने के पश्चात यौग्न्धरायण राजा के पास पहुँच जाता है।

6– स्वप्नवासदत्तम् में उदयन–वासवदत्ता का मिलन चित्रफलक दर्शन के प्रसंग से होता है जबकि कथा सरित्सागर में इसके मिलन की कथा भिन्न रूप में वर्णित है।

7– स्वप्नवासवदत्तम् में पद्मावती वासवदत्ता की शुद्धि की स्वयं साक्षी है। जबकि कथासरित्सागर में वासवदत्ता कीं शुद्धता के लिए यौगन्धरायण अग्निप्रवेश की योजना करता है।

8– कथा सरित्सागर में उदयन, शतानीक का नप्ता तथा सहस्रानीक का पुत्र बताया गया है। जबकि भास का वर्णन इससे सर्वथा विपरीत है।

प्रियदर्शिका का कथानक :– प्रियदर्शिका का वस्तु विन्यास बहुत ही साधारण ढंग का है। चार अंक की इस प्रणय नाटिका में वस्तु की उपन्यस्तता में उतनी चुस्ती व आकर्षण नहीं है। वत्स का सेनापति, दृढ़वर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका को दरबार में लाता

1– कथासरित्सागर – 3/1/19–23

2– कथासरित्सागर – 3/2/50–52

है तथा उसे अरण्यकाधिपति विन्ध्यकेतु की कन्या के रूप में वहाँ रख देता हैं। राजा उसे वासवदत्ता को सौंप देते है। द्वितीय अंक में उपवन में भ्रमरों से परेशान प्रियदर्शिका तथा उदयन का मिलन होता है व अनुराग का प्रस्फुटन होता है।

तृतीय अंक में गर्भाक का सुन्दर निवेश है। मनोरमा तथा विदूषक की युक्ति से दोनो का सम्मिलन कल्पित किया जाता है। वासवदत्ता 'उदयन चरित' से सम्बद्ध नाटक का मंचन कराना चाहती है, जिसमें मनोरमा को उदयन तथा अरण्यका को वासवदत्ता की भूमिका मिली है। परन्तु मनोरमा के स्थान पर 'उदयन स्वयं पहुँच जाता है।

चतुर्थ अंक में वासवदत्ता के सम्वन्धी दृढ़वर्मा वत्स राज की सहायता से कलिंग नरेश को परास्त कर देता है। यहीं पर प्रियदर्शिका का भेद खुलता है तथा वासवदत्ता उदयन के साथ उसका विवाह करा देती है।

रत्नावली का कथानक– रत्नावली संस्कृत नाट्स साहित्य का एक जाज्वल्यमान रत्न है। चार अंको वाली 'रत्नावली' उत्कट प्रणय कृति है। प्रथम अंक में उदयन के साथ परिणय हेतु लायी जाती हुयी सिंहल नरेश कि पुत्री रत्नावली जहाज भग्न होने से भी बच जाती है। तथा मंत्री के पास लायी जाती है। मन्त्री उसे पहचानकर 'सागरिका' के नाम से वासवदत्ता के संरक्षण में रख देता है। कामदेव के उत्सव के प्रसंग में वासवदत्ता कामवपुः उदयन का पूजन करती हैं। सागरिका उसे कामदेव समझती है। यहीं पर उदयन के प्रति सागरिका के हृदय में प्रेमास्फुटन होता है। द्वितीय अंक में चित्र फलक प्रसंग में सागरिका, प्रच्छन्न प्रेम की चर्चा अपनी सखी सुसंगता से करती है। तभी वाजिशला से एक बन्दर के भागने से महल में कोहराम मंच जाता हैं, तथा चित्रफलक राजा के हाथ पड़ जाता है जो प्रच्छन्न प्रेम के प्रकटन का साधन बनता है। तृतीय अंक, इस नाटिका का हृदय माना जाता है। वेष परिवर्तन से उत्पन्न भ्रान्ति के कारण उत्पन्न घटना क्रम बड़ा ही मनोरम है। सागरिका वासवदत्ता का तथा सुसंगता दासी कांचनमाला का वेष धारण करके उदयन से पूर्व निश्चित स्थान पर मिलने आती है। परन्तु इनसे पूर्व ही वासवदत्ता पहुँच जाती है। तथा मिलन में बाधा पहुँचती है। परन्तु सद्यः ही

दोनों का मिलन होता है तथा वासवदत्ता क्रोधित हो जाती है। चतुर्थ अंक मुं इन्द्रजालिक द्वारा अग्निदाह का प्रभावशाली दृश्य हैं। सागरिका भूगर्भ में कैद हैं। वासवदत्ता की इस सूचना पर उदयन सागरिका की प्राण रक्षा करता है। सिंहल के मंत्री वसुभूति तथा कञ्चुकी बाभ्रव्य के द्वारा रत्नावली पहिचान ली जाती है। तथा वासवदत्ता, रत्नावली व उदयन के विवाह करने की सहर्ष स्वीकृति देती हैं।

प्रियदर्शिका व रत्नावली नाटिकाओं की कथावस्तु का आधार तथा मूल कथा में परिवर्तन :– हर्ष रचित प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनो ही नाटिकाओं का आधार लोककथा तथा वृहत्कथा या कथासरित्सागर हैं। हर्ष ने स्वयं वत्सराजचरित को 'लोकहारि'[1] कहा है। दोनो नाटिकाओं में हर्ष ने उदयन का जो स्वरूप उद्धृत किया है, वह कथा सरित्सागर में उपलब्ध नहीं है। किन्तु कथा सरित्सागर में वर्णित बन्धुमती का आख्यान् रत्नावली व प्रियदर्शिका के कथानक से पर्याप्त साम्य रखता है। हर्ष ने आख्यानगत वृत्त में कतिपय संशोधन करते हुए कुछ नवीन प्रसंगो की कल्पना करके, अपने वैदुष्य का परिचय तथा नाटिकाओं को गतिशीलता प्रदान की है:–

1– हर्ष ने कई प्रमुख पात्रों तथा स्थानों के नाम मूल स्रोत से लिये हैं। वत्सराज, उदयन, वासवदत्ता, यौगन्धरायण, रूमण्वान, वसन्तक और काञ्चनमाला ये पात्र दोनों नाटिकाओं तथा आख्यान दोनों में पाये जाते है। रत्नावली में रूमण्वान् को मंत्री के रूप में न दिखाकर सेनापति के रूप में प्रदर्शित किया है।

2– प्रियदर्शिका तथा रत्नावली के इतिवृत्त उदयन वासवदत्ता के विवाह के उपरान्त की घटनाओं से सम्बद्ध हैं। लावणक में वासवदत्ता के अग्निदाह का प्रवाद, उदयन की, उद्यानलता में छद्म नाम से छिपाकर रखी गई बन्धुमी से गुप्त प्रेम लीला, वासवदत्ता द्वारा उसका देखा जाना, तथा कुपित होकर विदूषक और बन्धुमती को बन्दी बना लेना, देवी का, प्रसन्न होने पर राजकुमारी को पति को देना–आख्यानगत इन घटनाओं को हर्ष ने नायिका का नाम परिवर्तित करके बड़ी ही कुशलता से चित्रित किया है।

1– रत्नावली – 1 : 5

3– भावप्रवण कवि हर्ष ने उदयन से रत्नावली के साथ विवाह का प्रस्ताव, सिंद्ध के इस वचन के विश्वास पर कराया कि, रत्नावली से विवाह करने वाला चक्रवर्ती राजा होगा। जबकि आख्यान में पद्मावती के साथ उदयन के विवाह का कारण मगध नरेश को मित्र बनाने की चिन्ता है और विवाह का प्रस्ताव मन्त्रियों की सलाह से किया गया।

4– आख्यान में वासवदत्ता की सपत्नी मगध की राजपुत्री है। जबकि प्रियदर्शिका दृढ़वर्मा की पुत्री तथा रत्नावली की नायिका रत्नावली सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री है।

5– आख्यान में वासवदत्ता छद्मवेष में पद्मावती के अन्तःपुर मगध में रहती है। जबकि प्रियदिर्शिका तथा रत्नावली छद्मवेश में वासवदत्ता के साथ कौशाम्बी में रहती हैं।

6– आख्यान में पद्मावती के साथ उदयन का विवाह मंत्रियों की राजनीतिक चाल का प्रतिफल है। उदयन पद्मावती के साथ सम्बन्ध के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाता। प्रियदर्शिका और रत्नावली में यौगन्धरायण, नायिका के साथ राजा का विवाह यद्यपि राजनीतिक कारणों से ही कराना चाहता है तथापि नायिका में उदयन की अनुरक्ति इसका मुख्य कारण है।

7– आख्यान मे वर्णित बन्धुमती से प्रणय कथा की समस्त घटनाओं का सम्बन्ध हर्ष ने 'प्रियदर्शिका' की नायिका के साथ बड़ी ही चतुरता से किया है जबकि, ''रत्नावली' आख्यान की बन्धुमती तथा पद्मावती दोनो का मिश्रित रूप है।

8– आख्यान में बन्धुमती के साथ राजा की गुप्त प्रेमलीला को देखकर कुपित हुयी वासवदत्ता प्रव्राजिका के समझाने पर बन्धुमती तथा वसन्तक को मुक्त कर देती है, जबकि रत्नावली में वसन्तक तो मुक्त कर दिया जाता हैं परन्तु, रत्नावली संकटापन्न स्थिति में वासवदत्ता द्वारा प्रार्थित उदयन द्वारा रक्षित होती है।

9– आख्यान में वासवदत्ता, पद्मावती के साथ उदयन के विवाह से होने वाले राजनीतिक फल से पूर्व परिचित है अतएव पद्मावती के प्रति उसे कोई ईर्ष्या नहीं होती है। जबकि प्रियदर्शिका तथा रत्नावली में वासवदत्ता को विश्वास में नहीं लिया गया है।

10– आख्यान में पद्मावती से विवाह हेतु उदयन मगध जाता है, जबकि रत्नावली तथा प्रियदर्शिका को विवाह हेतु कौशाम्बी लाया जाता है।

यानभंग की कल्पना, वसन्तोत्सव में मदनपूजन, सागरिका तथा चित्रपट की घटना , सागरिका द्वारा वेष परिवर्तन करके अभिसरण की घटना, ऐन्द्रजालिक की माया से कौशाम्बी में अन्तःपुर दाह जैसी घटनाएं हर्ष की नूतन कल्पनाएं हैं, जो कथानक को गत्यात्मक व प्रभावोत्पादक बनाती हैं।

तापसवत्सराजचरितम् के कथानक का आधार तथा मूलकथा में परिवर्तन :— मायूराज अनंगहर्ष द्वारा प्रणीत तापसवत्सराजचरितम् छह अंक का एक उत्कृष्ट नाटक है इसका संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत है —

प्रथम अंक के विष्कम्भक के माध्यम से पाञ्चाल नरेश आरूणि की वत्सराज पर आक्रमण की तैयारी की सूचना मिलती है। वत्सराज उदयन इस विपत्ति से निरपेक्ष हो कर अन्तःपुर के भोगविलास में निरत है। किन्तु उसका मंत्री यौगन्धरायण इस सन्दर्भ में सचेष्ट है। इस स्थिति से निबटने के लिए यौगन्धरायण, रूमण्वान तथा वासदत्ता के पिता प्रद्योत को विश्वास में लेकर भावी योजनाएं बनाता है। परन्तु इन योजनाओं की सफलता हेतु वासदत्ता का सहयोग अपेक्षित है।पिता के पत्र से अभिप्रेरित वासवदत्तायौगन्धरायण को सहयोग का वचन देती है। इसी बीच उदयन मृगया हेतु जंगल जाने के लिए वासवदत्ता से विदा लेता है।

द्वितीय अंक में रूमण्वान के भाई विनीतभद्र के कथन से ज्ञात होता है कि मंत्री अपनी पूर्व योजना के अनुसार वासवदत्ता को राजमहल से ले गये हैं तथा महल में आग लगा दी गई है। तत्पश्चात राजा उदयन, रूमण्वान् तथा वसन्तक के साथ वहाँ आकर वासददत्ता के जलकर मर जाने की आशंका से अत्यन्त करूण विलाप करता हुआ उसी अग्नि में जलकर प्राणोत्सर्ग करना चाहता है। यह ज्ञात होने पर कि वासवदत्ता की अग्नि से रक्षा करने के प्रयास में यौगन्धरायण की भीजलकर मृत्यु हो गयी है, उदयन मूर्च्छित हो जाता है। चेतना लौटने पर रूमण्वान, राजा से सिद्धजनों के दर्शनार्थ प्रयाग चलने का अनुरोध करता है। उसका शिष्य लामकायन तापसवेश में पहले ही प्रयाग पहुँच चुका है।

तृतीय अंक में विष्कम्भक के अनुसार, राजा उदयन लामकायन द्वारा मृत्यु मोह से निवृत्त कर दिया जाता है तथा वह तपस्वी होकर राजगृह आ जाता है। यहाँ पर लामकायन के शिष्य से यह सूचित होता है कि परिव्रजिका सांकृत्यायनी द्वारा उदयन की प्रतिकृति दिखाकर तथा उसके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा द्वारा, पद्मावती के ह्रदय को उदयन में अनुरक्त करा दिया गया है अनुरक्त ह्रदया पद्मावती, उदयन की प्रतिकृति की देवमूर्ति के समान पूजन करती है। ब्राह्मण वेषधारी यौगन्धरायण, वासवदत्ता को अपनी प्रोषित भर्तृका भगिनी बताकर पद्मावती के 'पास रखकर चला जाता है।

चतुर्थ अंक में रूमण्वान, का दूत सिद्धार्थक राजगृह की गतिविधि को जानने के लिए सांकृत्यायिनी के पास जाता है तथा राजा उदयन व पद्मावती के विवाह की योजना करने के लिए उसे आमात्य का संदेश देता है।

पंचम अंक के प्रारम्भ में मूल ग्रन्थ के खण्डित होने से कथा का ठीक-ठीक रूप स्पष्ट न होते हुए भी इतना अवश्य ज्ञात होता है कि वासवदत्ता द्वारा जगाया गया विदूषक राजा के पास चला जाता है। उदयन पद्मावती के साथ अपने प्रिय समागम का स्मरण कर रहा है तथापि वह वासवदत्ता को कदापि विस्मरित नही कर पाता। इसी समय दर्शक का सन्देशवाहक कुञ्जरक वहाँ आरूणि के साथ किये गये युद्ध का वर्णन करता है तथा आरूणि को बन्दी बनाये जाने व अपनी सेनाओं की विजय का सन्देश सुनाता है।

वसन्तक राजा उदयन को, आरूणि के विरूद्ध युद्ध करने में सहायक राजा दर्शक, गोपाल तथा पालक को धन्यवाद देने के लिए कौशाम्बी जाने का परामर्श देता है किन्तु राजा उदयन सिद्धवाणी के विश्वास से प्रयाग में वासवदत्ता से मिलन की आश में प्रयाग होकर जाने की स्वीकृति देता है।

षष्ठ अंक में प्रवेशक के माध्यम से सूचित होता है कि पद्मावती के संरक्षण में रखी गयी ब्राह्मणी वेषधारी वासवदत्ता को उसका भाई ले गया है। इसी अंक में उदयन के प्रयाग पहुँचने की सूचना मिलती है। प्रयाग में यौगन्धरायण चिता

में जलकर मरने के लिए वासवदत्ता को त्रिवेणी संगम की ओर ले जाता है। तभी राजा उदयन भी प्राण त्यागने के लिए पद्मावती व विदूषक के साथ संगम जाता है। और वासवदत्ता द्वारा प्रज्जवलित चिता में प्राण त्यागने को उद्यत होता है। यौगन्धरायण इसका विरोध करता है। इसी समय विदूषक के संकेत से राजा उसे पहचान जाता है। पद्मावती भी वासवदत्ता को पहचान जाती हैं। यही उदयन–वासवदत्ता के प्रिय समागम द्वारा नाटक का सुखद अवसान होता है।

तापसत्सराजचरितम् के इतिवृत्त का मूल स्रोत वृहत्कथा को माना जाता है क्योंकि वृहत्कथा के संक्षिप्त संस्कृत संस्करणों–कथासरित्सागर तथा वृहत्कथामंजरी की रचना से पूर्व ही इस नाटक की रचना हो चुकी थी। किन्तु इससे पूर्व ही उदयन वासवदत्ता की प्रणय–कथा आधृत पर्याप्त साहित्य सृजन हो चुका था। जैन और बौद्ध साहित्य में निरूपित प्रसंगो के अतिरिक्त भास, सुबन्धु (वासवदत्ता नाट्य धारा) और श्री हर्ष जैसे रचनाकार इसे अपनी लेखनी का विषय बना चुके थे। अतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि मायूराज ने तापसवत्सराज चरितम् का कथानक वृहत्कथा से ही ग्रहण किया है। तथापि तापसवत्सराजचरितम् स्वप्नवावदत्तम् तथा कथासरित्सागर की कथावस्तु की परस्पर तुलना करने पर यह स्वप्नवासदत्तम् की अपेक्षा कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथा मन्जरी के अधिक निकट प्रतीत होती है। अतः यह माना जा सकता है कि मायुराज ने वृहत्कथा को ही अपनी कथा का आधार बनाया हो तथा अपने कल्पना चातुर्य व वर्णन नैपुण्य से इसे प्रस्तुत स्वरूप दिया। स्वप्नवासवदत्तम् से कवि को प्रस्तुत नाटक लिखने की प्रेरणा अवश्य मिली होंगी। किन्तु वह इस नाटक के कथानक का आधार नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में कुछ बिन्दु उद्घाटित किये जा सकते हैं।

1– स्वप्नवासदत्तम् में दोनो मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को उनकी योजना का ज्ञान नहीं होता है। जबकि 'तापसवत्सराजचरितम्' में वासवदत्ता के पिता प्रद्योत को तथा कथासरित्सागर[1] में उसके भाई पालक को मंत्री अपने विश्वास में लेकर

1– कथा सरित्सागर – लम्बक 3 तरंग 1

ही वासवदत्ता द्वारा ऐसा त्याग करवाने की योजना बनाते हैं। हॉ वासवदत्ता तथा यौगन्धरायण के सम्बन्ध के प्रसंग में तापसवत्सराजचरितम् कथासरित्सागर व वृहत्कथामंजरी की अपेक्षा स्वप्नवासदत्तम से अधिक साम्य रखता है। इन दोनों नाटको में वासवदत्ता को यौगन्धरायण की प्रोषितपतिका भगिनी कहा गया है, जबकि उक्त दोनों कथा ग्रन्थों में वासवदत्ता, यौगन्धरायण की पुत्री बतायी गयी हैं।

2– स्वप्नवासदत्तम् में उदयन का मगध आने का उद्देश्य पद्मावती के साथ विवाह नहीं अपितु कार्यान्तर बताया गया है जबकि, तापवत्सराजचरितम् तथा दोनों कथा–ग्रन्थों में उदयन पद्मावती के साथ विवाह हेतु मगध आता है। यद्यपि कथाग्रन्थों में वह मगधनरेश के निमंत्रण पर मगध आता है।

3– 'तापसवत्सराजचरितम्' में राजा को वासवदत्ता से पुनर्मिलन का जो आश्वासन सिद्ध वेषधारी लामकायन द्वारा दिया जाता है, कथा सारित्सागर में वही आश्वासन नारद द्वारा दिया गया है।

4– नाटक के अन्त में वासवदत्ता के आत्मदाह का प्रसंग तापसवत्सराज चरितम् व कथासरित्सागर[1] में समान है, किन्तु इस सन्दर्भ में भास सर्वथा मूक हैं।

तापसवत्सराज चरितम् की कथावस्तु का इन ग्रन्थों के अनेक अंशो से साम्य होने पर भी, इसकी समस्त घटनाओं का स्रोत वृहत्कथा को नहीं माना जा सकता, क्योंकि नेपाल से प्राप्त 'वृहत्कथा श्लोक संग्रह' में इन घटनाओं का कोई विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता। सम्भवतः अनंगहर्ष को प्रस्तुत नाटक को लिखने की प्रेरणा भास के नाटको से ही मिली होगी। मायूराज अनंगहर्ष ने 'तापसवत्सराजचरितम् में अपनी उर्वर कल्पना शक्ति एवं वर्णन वैशिष्टय से अनेक नवीन उद्भावनाएं प्रस्तुत की है जो उनके नाट्कीय संविधान को उत्कृष्टता, दृढ़ता एवं गतिशीलता प्रदान करती है–

1– उदयन व पद्मावती का तापसवेश धारण कर तपोवन जाना, कवि की सर्वथा मौलिक एवं नवीन कल्पना है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नामकरण किया गया है।

1– कथासरित्सागर लम्बक 3 तरंग 2 श्लोक 44–47

2– उदयन–वासवदत्ता दोनों के द्वारा चिंता में आत्मदाह की घटना का अद्‌भुत नाटकीय ढंग से समायोजन, कवि की मौलिक उद्‌भावना का परिचायक है।

3– परिव्रजिका सांकृत्यायनी की योजना कवि की नवीन योजना है, जो वियोगिनी पद्‌मावती को तथा अप्रत्यक्ष रूप से वासवदत्ता को सान्त्वना देती है।

4– तापसवत्सराज चरितम् में यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता को पद्‌मावती के संरक्षण में देने की सूचना मात्र मिलती है। फलतः इस घटना को प्रदर्शित करने का ढंग भी नवीन है।

रूपकों की वस्त्वाभिव्यक्ति प्रक्रिया की तुलनात्मक समीक्षा

वस्तु प्रकार :– वस्तु को वृत्त की दृष्टि से तथा पात्रों की दृष्टि से भी विभाजित किया जाता है।

वृत्त की दृष्टि से :– वृत्त की दृष्टि से कथा वस्तु तीन प्रकार की होती है। प्रख्यात उत्पाद्य और मिश्र। उनमें से–

प्रख्यात[1] :– इतिहास आदि से लिया गया 'वृत्त' 'प्रख्यात' कहलाता है।

उत्पाद्यः[2]– कवि द्वारा स्वयं कल्पित इतिवृत्त 'उत्पाद्य' होता है।

मिश्र :[3] – यह इतिवृत्त प्रख्यात तथा उत्पाद्य का मिश्रण होता है।

प्रस्तुत शोध के लिए अभीष्ट प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम, प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा 'तापसवत्सराजचरितम्' का इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध उदयन वासवदत्ता पर आधारित 'प्रख्यात' कोटि का है। यद्यपि तापसवत्सराज के उदयन का तापसवेश धारण करना कवि की कल्पना है।

पात्रों की दृष्टि से वस्तु प्रकार :– पात्रों की दृष्टि से वस्तु को पुनः तीन भेद बताये गये हैं– दिव्य अदिव्य और दिव्यादिव्य।

1– दशरूपकम्– श्री निवास शास्त्री – 1 : 23
2– " " " 1 : 23
3– " " " 1 : 23

दिव्य[1] :— मानवेतर पात्रों से संयुक्त इतिवृत्त दिव्य कहलाता है।

मर्त्य[2] :— मानव पात्रों से युक्त इतिवृत्त मर्त्य कहलाता है।

दिव्यादिव्य[3] :— कुछ दिव्य तथा कुछ अदिव्य पात्रों से युक्त कथानक दिव्यादिव्य कहलाता है।

अभीष्ट रूपकों प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका, रत्नावली, तथा तापसवत्सराजचरितम् में सभी पात्र लौकिक अर्थात मानव हैं। अतः ये रूपक 'मर्त्य' कोटि से सम्बन्धित हैं। रत्नावली के ऐन्द्रियजालिक प्रसंग में कुछ अतिमानवीय तत्व मिलते हैं किन्तु इन्हें दिव्य नहीं कहा जा सकता।

प्ररोचना :— रूपक या रूपककार आदि की महिमा के संकीर्तन द्वारा सामाजिकों की मनोरंजनात्मक प्रवृत्ति को, प्रस्तुत रूपक की ओर आकृष्ट किया जाना ही 'प्ररोचना' है।[4] प्ररोचना में कवि, रूपक का अथवा अपना परिचय देता है जिसमें वह अपने नाम के साथ—साथ अपने वंश, गोत्र माता पिता तथा निवास स्थान का उल्लेख करता है। 'प्ररोचना' प्रस्तावना का पूर्व भाग है।[5]

भास प्रणीत प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तम् में प्ररोचना का अभाव है। हर्ष की प्रियदर्शिका व रत्नावली तथा अंनंगहर्ष के तापसवत्सराज में प्ररोचना प्राप्त होती है जो इस प्रकार है—

प्रियदर्शिका में प्ररोचना :—

सूत्रधारः (परिक्रम्य) अद्याहं वसन्तोसवे सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्री हर्ष देवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तः। यथा अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालङ्कृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृतेत्यस्माभिः श्रोतपरम्परयां श्रुता न तु प्रयोगे दृष्टा। तत्तस्यैव राज्ञः सर्वजनहृदयाहलादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्धया यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्या इतिं। तदयावन्नैपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं सम्पादियामि

1— दशरूपकम्   श्री निवासशास्त्री   1 : 23
2— ''   ''   1: 23
3— ''   ''   1: 23
4— साहित्यदर्पण   6 : 30
5— दशरूपक, चौखम्बाविद्याभवन वाराणसी 1 : 16

(परितोऽवलोक्य) आवर्जित सामाजिक मनांसि इति में निश्चयः। कुतः— श्री हर्षो निपुणः कविः परिषदत्येषा गुणग्राहिणी, लोके हारि च वत्सराज चरितं नाटये च दक्षा वयम् वस्तवेकैकपीह वांछितफल प्रांप्तेः पदं किं पुन,— र्मदभाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानाम् गणः।।

रत्नावली में प्ररोचना :—

सूत्रधारः— अलमितिविस्तरेण। अद्याहं वसन्तोत्सवे सबहुमानमाहूय नाना दिग्देशागतेन, राज्ञः श्री हर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहे नोक्तो यथा— अस्मत्सवामिना श्री हर्ष देवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता। सा चास्माभिः श्रोतः परम्परया श्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा। तत्तस्यैव राज्ञः सकलजनहृदयाह्लादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्धया यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्येति। तद्यावदिदानीं नेपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं सम्पादयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अये आवर्जितानि सकल सामाजिकानां मनांसीति मे निश्चयः। कुतः

श्री हर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोकेहारि च वत्सराज चरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।
वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छित फलप्राप्तेः पदं किं पुन—
र्मदभाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।।

तापसवत्सराजचरितम में प्ररोचना :—

आर्ये अथ किम—ननु तस्यैव सकलनरेन्द्रचन्द्रमसः श्री नरेन्द्रबर्धनसुनोः अनङ्गहर्षापरनाम्नः श्री मातृराजस्यकृतौ। स च कवि

सद्वृत्तानुगतां गतो गुणवतामारधनेऽनुक्षणं
कर्तुं याञ्चति सर्वदा प्रणयिनां प्राणैरपि प्रीणनम्।
मात्सर्येण विनाशकृतः परकृती श्रृण्वम् बहयुच्च
कैरानन्दाश्रुजलप्लवाप्लुतमुखो रोमांचपीनां तनुम्।।

स च किल कविरेवमुक्तवान्– मयाहि
न कवित्वाभिमानेन न चाप्यन्येन हेतुना
रचितं नाटकमिदं स्वगोष्ठीभावितात्मना
पदवाक्यप्रमाणेषु सर्वभाषाविनिश्चये
अंगविध्नासु सर्वासु परं प्रावीण्यमागता।।

प्रस्तावना :– रूपको की प्रस्तावना वस्तुतः उनका आमुख होता है। इसमें पारिपार्श्विक, नटी अथवा विदूषक का किसी व्यक्तिगत विषय पर' सूत्रधार के साथ संवाद होता है ज़ो अप्रत्यक्ष रूप से नाटक के विषय में संकेत करता है।[1]

प्रस्तावन के उद्घात्यक, कथोद्धात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक और अवगलित ये पाँच प्रकार होते है।[2] भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासदत्तम हर्ष की प्रियदर्शिका व रत्नावली तथा मायूराजकृत तापसवत्सराज चरित की प्रस्तावना इस प्रकार है–

प्रियदर्शिका की प्रस्तावना में केवल एक ही पात्र सूत्रधार का प्रयोग होता है तथा वह स्वयं ही कोई बात कहता है जिसका कोई उत्तर देने वाला नहीं है। इसको 'प्रयोगातिशय[3] के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

रत्नावली की प्रस्तावना को कथोद्धात [4]के अन्तर्गत रखा जा सकता है, क्योंकि रत्नावली में यौगन्धरायण, सूत्रधार के वाक्य को लेकर प्रवेश करता है। इसी प्रकार तापसवत्सराज चरितम् की प्रस्तावना कथोद्धात' के अर्न्तगत रखी जा सकती है।

इसके विपरीत भास के समय में 'स्थापना' का प्रयोग होता था इसलिए कालिदास आदि परवर्ती नाटककारों के सूत्रधार का प्रयोग, इनके नाटकों में नहीं पाया जाता है। सूत्रधार ही नाटक के प्रारम्भ में नटी या अपने सेवको से वार्तालाप करता हैं।

1– साहित्यदर्पण– डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 31 – 32
2– साहित्यदर्पण " " 6 : 33
3– 'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत प्रयोगतिशयस्तदा।।'
साहित्यदर्पण– डॉ सत्यप्रतसिंह– 6: 36
4– 'सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत्प्रात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्वातः स उच्यते।।'
साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 35

नाटककार के वंशनामादि का वर्णन करता है अथवा अभिनयकालीन ऋतु आदि का निर्देश करता है। इसके यह प्रतीत होता है कि भास के समय में नाट्यकला अपने प्रारम्भिक रूप में थी। उसका वैसा विकास नहीं हुआ था जैसा कि कालिदास या अन्य परवर्ती नाटककारों के समय में हुआ।

सूच्य– वस्तु निबन्धन की दृष्टि सें सम्पूर्ण कथा वस्तु को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– सूच्य तथा दृश्य व श्रव्य। उनमें से कथा को अविच्छिन्न रखने वाला इतिवृत्त का वह अंश जो नीरस हो, अथवा रंगमंच पर जिसे दिखाना सम्भव न हो, किन्तु वह अंश कथानक को अविच्छिन्न बनाये रखने हेतु सर्वक्षा अनुपेक्षणीय हो, वह सूच्य अंश कहलाता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में किसी भी मृत्यु युद्ध आदि का मंच पर प्रदर्शन सर्वथा वर्जित है। अतः इस प्रकार के अंशो को प्रदर्शित न करके इनकी, इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपको के माध्यम से सचूना मात्र दी जाती है। ये अर्थोपेक्षपक पाँच प्रकार के होते हे।[1]

1– विष्कम्भकः[2] – एक या दो पात्रों द्वारा भूत और भविष्य के कथांशो का सूचक 'विष्कम्भक' कहलाता है। यह शुद्ध और संकीर्ण भेद से दो प्रकार का होता है। शुद्ध विष्कम्भक में एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा कथांशो की सूचना दी जाती है जबकि मध्यम तथा अधम पात्रों द्वारा सूचित यह अंश संकीर्ण कहलाता है।

2– प्रवेशक[3] :– एक या अनेक अधम पात्रों द्वारा भूत और भविष्य के कथांसो की सूचना देने वाला यह अर्थोपक्षेपक 'प्रवेशक' कहलाता है। इसे दो अंको के बीच में प्रयुक्त किया जाता है।

3– चूलिका[4] :– जब नेपश्य के भीतर स्थित पात्रों द्वारा किसी बात की सूचना दी जाती है तो वह चूलिका कहलाता है।

4– अंकास्य[5] :– पूर्व अंक के अन्त में स्थित पात्रों द्वारा असम्बद्ध अग्रिम अंक

1– दशरूपकम् – श्री निवास शास्त्री 1 : 115
2– " " " 1 : 116 – 117
3– दशरूपकम् व्या० श्री निवास शास्त्री 1 : 118
4– दशरूपकम् व्या० श्री निवास शास्त्री 1 : 119
5– " " " 1 : 120

प्रारम्भ की सूचना देने वाला भाग अंकास्य कहलाता है।

5– अंकावतारः[1]– जहाँ पूर्व अंक में स्थित पात्रों द्वारा सूचित किया गया अंश, पूर्व अंक की कथा का विच्छेद किये बिना ही अग्रिम अंक में अवतरित हो जाता है, वह अर्थोपक्षेपक 'अंकावतार' कहलाता है।

रूपक रसाश्रित होते है। अतः उनमें नीरसता का कहीं भी विधान नही किया जाना चाहिए। अर्थोपक्षेपक उन बातों के वर्णन का भी प्रयोजन सिद्ध करते है जिनका रंगमंच पर उपस्थापन नाट्यरीति के अनुसार वर्जित है।[2] प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय–प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासदत्तम्, प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम में भी इन अर्थोपक्षेपकों का आश्रय ग्रहण किया गया है, जो दृष्टव्य है–

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में अर्थोपक्षेपकः

विष्कम्भक :– प्रतिज्ञायौगन्धरायण के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में कञ्चुकी द्वारा आभीरक से कही गयी बात से सूचित होता है कि वासवदत्ता के विवाह के प्रस्ताव हेतु उत्तम गोत्र वाले अनेक दूत भेजे है। राजाओं ने महासेन के पास अपने दूत भेजे है परन्तु वत्सराज ने अभी तक अपना दूत नही भेजा है। महल का अन्तःपुर के गुप्तचरों से युक्त होने के माध्यम से राजा के आने की सूचना दी जाती है।
यहाँ मध्यम पात्र द्वारा सूचना दी गयी है अतः यह विष्कम्भक है।[3]

प्रवेशक[4] :– चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में भट तथा गात्र सेवक के संवाद से यह सूचित होता है कि यौगन्धरायण ने अपने गुप्तचरो को उज्जयिनी के अनेक स्थानो पर नियुक्त कर रखा है। वत्सराज उदयन भद्रवती हस्तिनी व वासवदत्ता को लेकर भाग गया है तथा भयानक युद्ध के पश्चात यौगन्धरायण बन्दी बना लिया गया है। यहाँ उदयन का निष्क्रमण भूत तथा यौगन्धरायण का बन्दी बनाया जाना भविष्य के कथांशो का सूचक

1– दशरूपकम् व्या0 श्री निवास शास्त्री 1 : 121
2– संस्कृत नाटक ए0बी0 कीथ अनु0 उदयभानु सिंह पृ0सं0 322
3– प्रतिज्ञायोंगन्धरायणम – द्वितीय अंक का प्रारम्भ
4– ” ” चतुर्थ अंक का प्रारम्भ

है। भट तथा गात्रसेवक दोनो ही पात्र अधम श्रेणी के है। तथा अनुदात्त वचनों का प्रयोग करते है अतः यहाँ 'प्रवेशक' है।

चूलिका :– प्रथम अंक में उदयन के बन्दी बनाये जाने के वृत्तान्त से यौगन्धरायण राज माता को अवगत कराने हेतु यौगन्धरायण विजया को भेजता है। तदन्तर नेपथ्य में 'हा हा भट्टा'[1] का विलाप सुनाई देता है। इसी प्रकार तृतीय अंक के प्रारम्भ में मो मो ह ह हं[2] नेपथ्य के भीतर से सुनाई देता है। अतः ये दोनो प्रसंग चूलिका है।

स्वप्नवासवदत्तम में अर्थोपक्षेपक

विष्कम्भक :– षष्ठ अंक के प्रारम्भ में कञ्चुकी और प्रतिहारी विजया के संवाद से, महासेन के पास से रैम्भ, कञ्चुकी तथा महारानी अंगारवती द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा का वत्सराज के पास आना सूचित होता है। मध्यम तथा अधम पात्रों द्वारा सूचित होने से यह 'मिश्र विष्कम्भक' है।[3]

प्रवेशक – द्वितीय अंक के प्रारम्भ में चेटी के कथन से राजकुमारी पद्मावती का माधवीकुंज के पास कन्दुक–क्रीडा की सूचना मिलती है।[4]

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में विदूषक के कथन से उदयन का पद्मावती के साथ विवाह सम्पन्न हो जाना सूचित है।[5]

पंचम अंक के प्रारम्भ में पद्मनिका तथा मधुरिका के संवाद से पद्मावती का शिरोवेदना से पीड़ित होना सूचित होता है।[6]

उक्त सभी सूच्य प्रसंग 'प्रवेशक' के अन्तर्गत आते है।

चूलिका :– प्रथम अंक के प्रारम्भ में नेपथ्य मं 'उस्सरह' अय्या! 'उस्सरह!' ध्वनि का सुनाई देना, पद्मावती का तपोवन में आना सूचित करता है। यहाँ पर 'चूलिका' अर्थोपक्षेपक है।[7]

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डा0 गंगासागर राय पृष्ठ संख्या – 36
2– " " " तृतीय अंक पृष्ठ सं0 – 76
3– स्वप्नवासदत्तम् षष्ठ अंक का प्रारम्भ
4– स्वप्नवासदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 55–56
5– " " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 80– 85
6– " " " पंचम अंक पृष्ठ 128–133
7– " " " प्रथम अंक का प्रारम्भ

प्रियदर्शिका में अर्थोपक्षेपकः

विष्कम्भकः– प्रियदर्शिका के प्रथम अंक के प्रारम्भ में दृढ़ वर्मा के कञ्चुकी के कथनों द्वारा विन्ध्यकेतु के वध, लुटेरो द्वारा उनके राज्य को जलाकर नष्ट करना तथा उदयन का उज्जयिनी से कौशाम्बी वापस लौटने की सूचना मिलती है। युद्ध आदि का मंचन शास्त्र निषिद्ध है। मध्यम पात्र द्वारा सूचित यह अंश 'शुद्ध विष्कम्भक' है।[1]

प्रवेशक :– प्रियदर्शिका में तृतीय अंक में मनोरमा द्वारा भावी गर्भनाटक तथा अरण्यका की विरह वेदना की सूचना मिलती है।[2]

चतुर्थ अंक में मनोरमा तथा काञ्चनमाला के वार्तालाप से अरण्यका द्वारा आत्महत्या की योजना तथा वासवदत्ता की माता अंगारवती द्वारा उसे पत्र प्रेषण की सूचना मिलती है।[3] अधम पात्रों के संबन्ध से सूच्य सन्दर्भ प्रवेशक है।

चूलिका :– जवनिका के भीतर स्थित पात्रों द्वारा दी गयी सूचना चूलिका होती है जैसे :– ने पथ्ये वैतालिकः – लीलामज्जन ....अलङ्.कृता स्नानभूः।।[4]

रत्नावली में अर्थोपक्षेपकः

विष्कम्भक :– रत्नावली में प्रस्तावना के पश्चात यौगन्धरायण के कथन द्वारा सूचित है कि सिद्ध पुरूष के कथन पर विश्वास करके सिंहल द्वीप से लायी जाती हुयी सिंहल नरेश की पुत्री समुद्र में नौका डूब जाने के बाद भी बच गयी तथा वह वासवदत्ता को सौंप दी गयी है। कंचुकी बाभ्रण्य तथा सिंहल के मंत्री वसुभूति के बच जाने की सूचना के साथ–साथ राजा का मदनमहोदत्सव देखने के लिए राजाप्रसाद पर जाने की भी सूचना मिलती है। अमात्य मध्यम श्रेणी का पात्र है अतः यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है।[5]

प्रवेशक :– रत्नावली के द्वितीय, तृतीय तथा चतूर्थ अंको में प्रवेशक का विधान किया गया है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में सुसंगता तथा निपुणिका नामक चोटियों का संवाद

1– प्रियदर्शिका रामचन्द्रमिश्र प्रथम अंक पृष्ठ – 8
2– '' '' तृतीय अंक पृष्ठ – 41
3– '' '' चतुर्थ अंक पृष्ठ – 80–82
4– '' '' 1 : 11
5– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री प्रथम अक पृष्ठ 13–18

ही 'प्रवेशक' है। निपुणिका असमय में ही नवमलिका को पुष्पित करने वाले राजा की सूचना वासवदत्ता को देने हेतु जाती है तथा सुसंगता, सारिका युक्त पिंजड़े को लेकर सागरिका की खोज में कदली गृह जाती है।[1]

तृतीय अंक के प्रारम्भ में काञ्चनमाला तथा मदनिका के वार्तालाप से विदूषक व सुसंगता की उस गुप्त योजना की सूचना मिलती है जिसमें वेष विपर्यय द्वारा सागरिका उदयन से अभिसार हेतु गमन करेंगी। माधवीलतामण्डप में उदयन सागरिका के समागम की सूचना भी यहीं मिलती है।[2]

रत्नावली में तीसरा प्रवेशक चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में है। सुसंगता तथा विदूषक का संवाद यह सूचित करता है कि वासवदत्ता द्वारा सागरिका गायब कर दी गयी। सागरिका ने अपने पिता द्वारा दी गई रत्नमाला को किसी ब्राह्मण को देने को कहा है।[3]

चूलिका :– रत्नावली के प्रथम अंक में नेपथ्य के कोलाहल से राजा के मदनमहोत्सव जाने की सूचना मिलती है।[4]

द्वितीय अंक में दुष्टवान् कृत उपद्रव[5] तथा चतुर्थ अंक में ऐन्द्रिय जालिक के प्रभाव से अन्तःपुर में अग्नि–प्रज्जवलन की सूचना नेपथ्य के भीतर स्थित पात्रों द्वारा ही दी जाती है।[6]

अंकावतार – शास्त्रकारों के अभिमतानुसार सभी अंको के बीजभूत अर्थ का उल्लेख जिस अंक में हो उसे अंकावतार कहते है। रत्नावली में 'वरेअभिलाषेण भवितव्यम्'[7] द्वारा समस्त अंको का बीज स्वरूप अनुराग रूप अर्थ प्रदर्शित किया गया है। अस्तु रत्नावली का प्रथम अंकावतार माना जाता है।

1– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री प्रथम अक पृष्ठ 54–57
2– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री– तृतीय अंक पृष्ठ 123–128
3– ,, ,, ,, चतुर्थ अंक पृष्ठ 176–183
4– ,, ,, ,, प्रथम अंक पृष्ठ 16 – 17
5– रत्नावली – 2 : 2 – 3
6– रत्नावली – 4 : 14 : 15
7– रत्नावली व्या0 डा0 राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ –64

तापसवत्सराज चरितम् में अर्थोपक्षेपक

विष्कम्भक – प्रथम अंक प्रारम्भ में विष्कम्भक द्वारा यह सूचित किया जाता है कि पाञ्चाल नरेश आरूणि वत्सराज पर आक्रमण की योजना कर चुका है। वत्सराज उदयन निश्चित होकर भोग विलास में रत है किन्तु यौगन्धरायण इस विपत्ति के प्रति सचेष्ट है।[1]

तृतीय अंक के प्रारम्भ में यह सूचित होता है कि प्रयाग में रूमण्वान के शिष्य लामकायन द्वारा प्राणत्याग की कामना से निवृत्त कराया गया उदयन राजगृह चला गया हैं। परिव्रजिका सांस्कृत्यायनी द्वारा उदयन की प्रतिकृति दिखाकर पद्मावती के हृदय को उदयन में अतिशय अनुरक्ति की सूचना भी यहीं पर प्राप्त होती है। जो कि विष्कम्भक नाम अर्थोपक्षेपक है।[2]

प्रवेशक :– तापसवत्सराज चरितं के षष्ठ अंक के प्रारम्भ में सूचित होता है कि ब्राह्मणी के वेश में पद्मावती के संरक्षण में रखी गयी वासवदत्ता को उसका भाई यौगन्धरायण ले गया है तथा उदयन प्रयाग पहुँच गया है।[3] अधम पात्रों द्वारा सूच्य, ये सूच्य अंश प्रवेशक है।

अर्थप्रकृतियाँ – प्रयोजन प्राप्ति के उपाय को अर्थप्रकृति कहते है ये बीज, बिन्दु पताका, प्रकरी तथा कार्य पाँच प्रकार की होती है।

बीज बिन्दु पताकारन्य प्रकरी कार्य लक्षणः।
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिता।।[4]

बीजः–[5] मुख्य फल की प्राप्ति का प्रमुख हेतु बीज कहलाता है। यह रूपक मे आरम्भ से अन्त तक उपक्षिप्त रहता है तथा उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है।

बिन्दुः–[6] रूपक संविधान मे आवश्यक कार्यजन्य व्यवधान के निवारणार्थ उपायानुसन्धान की योजना ही बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है।

1– तापसवत्सराजचरितम् प्रथम अंक पृष्ठ 3 – 7
2– तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 60 – 67
3– तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 191– 192
4– दशरूपकम् व्या0 श्री निवास शास्त्री 1 : 27
5– साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 65
6– " " " 6 : 66

पताकाः—[1] वह प्रासंगिक इतिवृत्त जो व्यापक तथा मुख्य फलसिद्वि का सहायक हो 'पताका' अर्थप्रकृति है।

प्रकरीः—[2] प्रकरी वह इतिवृत्त विशेष है जो स्वार्थ निरपेक्ष रहा करता है और एक मात्र अधिकारिक इतिवृत्त के लिए ही नियुक्त किया जाता है।

कार्यः—[3] फलप्रारित के अधिकारी व्यक्ति का व्यापार ही कार्य नामक अर्थ प्रकति है। प्रस्तुत शोध के विषय प्रति सायौगधराय स्वानवासवदत्तम प्रियदर्शिका ,रत्नावली तथा तापसवत्सराज में इन अर्थ प्रकृतियों का विवरण प्रस्तुत है—

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में अर्थ प्रकृतियाँः

बीजः— प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रथम अंक मे स्थापना के अन्तर्गत नटी —सूत्रध ार का संवाद उदयन के अनिष्ट को सूचित करता है—

> अद्य मया स्वप्ने ज्ञाति कुलस्याास्वाय्यमिव
> दृष्टम् ! तदिच्छाभ्यार्येण कुशल विज्ञान
> निमित्तं कञ्चित् पुरूषं प्रेषयितुम।[4]

इसी में इतिवृत्त का बीज गर्भित है। दूत प्रेषण के लिए उत्सुक यौगन्धरायण प्रतिसार आदि साधनों द्वारा अंनिष्ट निवारणार्थ तत्पर है। अतः इस स्थान पर बीज नामक अर्थप्रकृति है।

बिन्दु — प्रथम अंक में प्रद्योत द्वारा हृदय नीति से उदयन के अपहरण की घटना के प्रतिकार हेतु यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है 'यदिशत्रुबलग्रस्तोराहुणा'[5] प्रतिज्ञा की यह घटना सम्पूर्ण कथावृत्त में फैल जाती है। तथा कथा वृत्त को अविच्छिन्न बनाने में समर्थ होती है। अतः यहां पर 'बिन्दु' नामक प्रकृति है।

पाताका —[6] पताका आधिकारिक वृत्त का सहायक होता हुआ स्वयं भी अस्तित्व

1— साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ — 400
2— साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 68
3— " " " 6 : 69
4— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ — 4
5— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1 : 16
6— " " प्रथम अंक

रखता है। प्रतिज्ञायौन्धरायण में 'कृतक हस्तियोग' नामक वृत्त का नायक प्रद्योत है। इसमें प्रद्योत का वासवदत्ता के विवाह हेतु चिन्तित होना तथा कृत्रिम हस्तियोजना से संबन्धित संवाद कथानक में बहुत दूर तक चलता है। और मुख्य फल प्राप्ति में सहायक भी है। यह उप कथावृत्त आधिकारिक इतिवृत्त की फलप्राप्ति में सहायक होती है। अतः यहां 'पताका' नामक अर्थप्रकृति का सन्निवेश है।

प्रकरी–[1] नाटक के तृतीय अंक में यौगनधरायण अपने संहायको के साथ वेषविपर्यय द्वारा उज्जयिनी में उदयन को बन्धनमुक्त कराने के लिए कृतसंकल्प तथा तत्पर है। वह अपनी सुनियोजित योजनाओ के द्वारा वत्सराज को बन्धन मुक्त कराने में सफल भी हो जाता है। यहाँ पर 'प्रकरी' नामक अर्थप्रकति है क्योंकि इस वृत्त का कोई पृथक फल नहीं होता अपितु वह आधिकारिक वृत्त के फल प्राप्ति में सहायक है।

कार्य – प्रतिज्ञायौन्घरायण में यौगन्धरायण द्वारा उदयन बंन्धन मुक्ति हेतु किये जाने वाले समस्त उपाय ही 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति है।

स्वप्नवासदत्तं में अर्थप्रकृतियाँ–

बीज :– स्वप्नवासदत्तम् के प्रथम अंक में तपोवन में यौगन्धरायणम द्वारा वासवदत्ता को पद्मावती के सरंक्षण में देने के उपरान्त ब्रह्मचारी द्वारा उदयन की संतप्त दशा के वर्णन से पत्नी के प्रति उसके प्रगाढ़ प्रेम की सूचना तथा तापसी व चेटी का यह अतिसंक्षिप्त संवाद –

तापसी – स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेना प्यनेनैवं प्रशस्यते।

चेटी – भतृदारिके! किन्तु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?[2] ही पद्मावती के ह्रदय में प्रेम उत्पन्न करता है। यह प्रेमारोपण कथानक का बीजस्वरूप है जो इतिवृत्त में उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करता है।

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् प्रथम अंक

2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ– 48–49

बिन्दु :— पद्मावती के विवाह के कारण वत्सराज्य की पुनः प्राप्ति रूप मुख्य फल में व्यवधान आने पर पंचम अंक के अन्त में दर्शक के सन्देश[1] तथा राजा के अत्यन्त उत्साह से युद्ध हेतु गमन की सूचना कञ्चुकी के माध्यम से होती है। यह अंश मुख्य कथा को अविच्छिन्न बनाने में सहायक है अतः यहाँ पर बिन्दु अर्थप्रकृति है।

पताका :— स्वप्नवासवदत्तम् में वासवदत्ता की लावणक दाह में मृत्यु के वृत्तान्त का फल उदयन पद्मावती का विवाह हैं। यह कथा इतिवृत्त में दूर तक चलती है तथा कथानक के मुख्य फल वत्सराज्य की पुनः प्राप्ति में सहायक है अतः यह अंश 'पताका' है।

प्रकरी— स्वप्नवासवदत्तम् में 'प्रकरी' का अभाव है।

कार्य— राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु नायिकादि द्वारा किये जाने वाले लावणकदाह —प्रवाद, वासवदत्ता न्यासी करण, पद्मावती विवाह, युद्ध आदि समस्त व्यापार 'कार्य' अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आते हैं।

प्रियदर्शिका में अर्थप्रकृतियाँ—

बीज— प्रियदर्शिका के प्रथम अंक में प्रस्तावनापरान्त अंगनरेश से कञ्चुकी का कथन— यथाकथंचिदेना वत्सराजायोपनीय स्वामिनन्तनृणं करिष्यामि'।[2] मुख्य फल के बीज भूत रूप में सन्निविष्ट हुआ है।

बिन्दुः— इस नाटिका में उदयन तथा विदूषक वासवदत्ता से मिलने हेतु धारागृहोद्यान जाने को प्रवृत्त होते है। यह गमन क्रिया प्रियदर्शिका प्राप्ति रूप मुख्य फल प्राप्ति में व्यवधान स्वरूप प्रतीत होती है। किन्तु पुष्प चयन करती हुयी अरण्यका को विदूषक द्वारा उद्यान देवता का संबोधन उदयन के मन में प्रियदर्शिका दर्शनोत्कण्ठा[3] का जनक होता है तथा मुख्य कथा अविच्छिन्न होकर पुनः प्रवृत्त हो जाती है। अतः यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है।

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 गंगासागर राय पंचम अंक पृष्ठ— 163—165
2— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ— 7
3— प्रियदर्शिका " " द्वितीय अंक पृष्ठ— 29

पताका :— प्रियदर्शिका में पताका का अभाव है।

प्रकरी[1] :— प्रियदर्शिका में विजयसेन का वृतान्त 'प्रकरी' के रूप में निबद्ध है। प्रथम अंक में विन्ध्यकेतु के विनाश के उपरान्त प्रियदर्शिका का वत्सराज को सौंपना तथा प्राप्त करना 'प्रकरी' है। जो मुख्य वृत्त के प्रियदर्शिका प्राप्ति फल सिद्धि में सहायक है।

कार्य :— इस नाटिका मे उदयन—प्रियदर्शिका समागम हेतु गर्भाक की योजना तथा उदयन का वासवदत्ता को अनेक प्रकार से प्रसन्न करना चतुर्थ अंक में उदयन द्वारा दृढ़ वर्मा की सहायता के प्रसंग से वासवदत्ता को अवगत करानां आदि प्रियदर्शिका प्राप्ति रूप फलसिद्धि हेतु किये गये समस्त व्यापार कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

रत्नावली में अर्थ प्रकृतियाँ :—

बीज :— रत्नावली के प्रारम्भ में भाग्य की अनुकूलता से युक्त यौगन्धरायण का यह कथन— एवमेतत् ! कः सन्देहः

द्वीपादन्यस्मादीति मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्त्यात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभि मुखीभूतः।।

अन्यथा क्व ....

प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतो,
देवेनेत्थं दत्तहस्तावलम्बे।
सिद्धेभ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि
स्वेच्छाचारी भीतः एवास्मि भर्तृः।।[2]

ही इतिवृत्त का बीज स्वरूप है।

बिन्दू — इस नाटिका में इतिवृत्त का फ़ल उदयन रत्नावली समागम है। कामदेव पूजन मुख्य कथा में व्यवधान डालता है किन्तु इसी समयश चूलिका द्वारा0 रत्नावली को उदयन का ज्ञान होता है और उसके हृदय में प्रेम का प्रथम प्रस्फुटन यहीं पर होता है। यही बिन्दु का उपक्षेप है। रत्नावली का यह कथन "कथमयं स राजा

1— (अ) प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ —12
(ब) " " " चतुर्थ अंक पृष्ठ— 94
3— रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 13— 16

उदयनो यस्याहं दत्ता तातेन''[1] उसके प्रेमाकुरण को परिपुष्ट करता है।

पताका :– रत्नावली में पताका का आभाव है।

प्रकरी – चतुर्थ अंक में विजयवर्मा द्वारा रूमण्वान की, कोशल–विजय का वर्णन 'प्रकरी' के अन्तर्गत आता है।[2]

कार्य :– सांगरिका के अभिसरण की योजना इन्द्रजालिक का प्रयोग आदि व्यापार मुख्य कथा की प्राप्ति हेतु उपाय स्वरूप कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

कार्यावस्थाएं :– रूपक संविधान में कार्यावस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की, आरम्भ, यत्न प्रात्याशा नियताप्ति और फलागम पाँच अवस्थाएं होती है। –

अवस्थाः पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि :।
आरम्भ यत्नप्राप्याशानियताप्ति फलागमः।[3]

आरम्भ :– प्रचुरफल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र होना आरम्भ कहलाता है।[4]

यत्न :– फलप्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही 'प्रयत्न' है।[5]

प्राप्त्याशाः– उपाय के होने तथा विघ्न की आशंका से फलप्राप्ति का एकान्ततः निश्चय न होना 'प्राप्त्याशा' है।[6]

नियताप्ति :– विघ्नों के हट जाने पर फल प्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।[7]

फलागम :– समग्र फल लाभ की अवस्था की 'फलागम' कार्यावस्था है।[8]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कार्यावस्थाएं :–

1–आरम्भ– हंसक द्वारा उदयन के नागवन जाने एवं छलपूर्वक प्रद्योत सैनिको द्वारा

1– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ –51
2– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ –192–197
3– दशरूपक व्या श्री निवास शास्त्री 1 : 28
4– " " 1 : 29
5– " " 1 : 30
6– " " 1 : 31
7– " " 1 : 32
8– साहित्यदर्पण 6 : 73

बन्दी बना लिये जाने का समाचार सुनकर यौगन्धरायण की–'यदिशत्रुबलग्रस्त्रा'[1]– प्रतिज्ञा ही नाटक में 'आरम्भ' कार्यावस्था है।

यत्नः – वत्सराज उदयन को बन्धनमुक्त कराने हेतु यौगन्धरायण अपने सहयोगियों के साथ वेश बदलकर उज्जयिनी में विभिन्न प्रकार के उद्योग करते है। उनके द्वारा किये गये समस्त उद्यम ही 'यत्न' नामक कार्यावस्था है।

प्राप्त्याशा – शिविका में बैठकर जाती हुयी वासवदत्ता को देखकर बन्दी उदयन के कामासक्त होने की आशंका करता हुआ यौगन्धरायण यह कहता है– ''न खलुतां प्रति समुत्पन्नाभिलाषः स्वामी ?[2] यहाँ पर फल प्राप्ति में उदयन का वासवदत्तानुराग विघ्न स्वरूप है। अतः उदयन की मुक्ति का एकान्ततः निश्चय न होने से 'प्राप्त्यशा' नामक कार्यावस्था है।

नियताप्ति : – नाटक के तृतीय अंक में विदूषक, यौगन्धरायण से, उदयन की वासवदत्ता में आसक्ति हो जाने के कारण उदयन मुक्ति के प्रयास को असफल हो जाने की आशंका करता है। यौगन्धरायण व विदूषक संलाप में विदूषक कहता है। कि यदि आप अपना कार्य सिद्ध करना चाहते है तो कारागार से राजा का एवं अन्तःपुर से वासवदत्ता का अपहरण करें– भवान् बन्धनाद्राजानमन्तः''[3] यहाँ पर नियताप्ति कार्यावस्था है।

फलागमः[4]– चतुर्थ अंक में उदयन वासवदत्ता के अपहरण के पश्चात युद्ध में बन्दी बनाये गये यौगन्धरायण को ज्ञात होता है कि चित्रफलकस्थ उदयन वासवदत्ता का रीतिपूर्वक विवाह सम्पन्न करा दिया गया है। यहाँ पर यौगन्धरायण को समग्र फल की प्राप्ति होती है।

स्वप्नवासवदत्तमं में कार्यावस्थाएंः

आरम्भ – स्वप्नवासवदत्तं के प्रथम अंक में कञ्चकी के माध्यम से पद्मावती का

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम – 1 : 16

2– प्रतिज्ञायौगन्धरायम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 97

3– प्रतिज्ञायौगनधरायम् तृतीय अंक पृष्ठ 101

4– '' '' 4 : 24

परिचय हो जाने पर यौगन्धरायण का यह कथन "भर्तृदाराभिलषित्वादस्याः"[1] पद्मावती पर उसकी आत्मीयता घोषित करता है। यही आरम्भावस्था है।

यत्नः— पद्मावती उदयन के परिणय परिणिति हेतु वासवदत्ता का न्यासीकरण तथा राज्य की पुनः प्राप्ति हेतु किये गये समस्त उद्योग ही यत्न है।

नियताप्तिः — पंचम अंक में कञ्चुकी उदयन को मगधनरेश दर्शक का सन्देश कहता है। जिसमें कहा गया है। कि महामंत्री रूमण्वान, बहुत बड़ी सेना के साथ आरूणि को परास्त करने हेतु चल दिये। हाथी घोड़े व पैदल सैनिक भी युद्ध के लिए तैयार है। शत्रु सेना—विनाश के लिए अभीष्ट समस्त उपाय कर लिये गये है अतः अब आपको सचेष्ट हो जाना चाहिए। यह सुनकर उदयन पराक्रमपूर्वक युद्ध करने का निश्चय करता है— 'उपेत्य नागेन्द्र तीर्णे।[2] यही 'नियताप्ति' है।

फलागम्— षष्ट अंक में उदयन को राज्य की पुनः प्राप्ति के साथ—साथ वासवदत्ता[3] सुखद पुनर्मिलन संप्राप्त होना ही 'फलागम' है।

प्रियदर्शिका में कार्यावस्थाएं :—

आरम्भ :— दृढ़ वर्मा के कञ्चुकी की राजकन्या 'प्रियदर्शिका' को वत्सराज उदयन के पास पहुँचाने की उत्सुकता ही आरम्भ नामक कार्यावस्था है।[4]

यत्नः— उद्यान में पुष्पचयनरत प्रियदर्शिका को देखकर विदूषक का उद्यान देवता कहकर उदयन में प्रियदर्शिका—दर्शनोत्कण्ठा उत्पन्न करना तथा उदयन द्वारा दर्शनोपरान्त भ्रमर से पीड़ित प्रियदर्शिका की रक्षा करना[5] आदि उद्यम ही 'प्रयत्नावस्था' है।

प्राप्त्याशा :— नाटिका के तृतीय अंक में विदूषक व मनोरमा, अरण्यका व उदयन के समागम का उपाय सोचते है। उन्हे समागम का उपाय प्राप्त है किन्तु वासवदत्ता के अचानक आ जाने की आशंका से युक्त है। मनोरमा का यह कथन—चिरयति खलु

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1 : 7
2— " " 5 : 13
3— " " षष्ट अंक
4— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ— 6—7
5— प्रियदर्शिका 2 : 3

महाराजः किं न कथितं वसन्तकेन। अथवा देव्या विभेति।[1] आशंका व्यक्त करता है। उपाय व अपाय की आशंका से युक्त यह स्थल 'प्राप्त्याशा' है।

नियताप्तिः— क्रोधित वासवदत्ता अरण्यका को बन्दी बना लेती है। अरण्यका का रूपविपासु उदयन विदूषक से समस्या समाधान हेतु परामर्श करता है। तथा देवीप्रसाधन को ही एकमात्र उपाय बताता है।[2] यहाँ पर देवी प्रसादनोपरान्त फल की प्राप्ति का एकान्ततः निश्चय हो जाता है। अतः नियताप्ति कार्यावस्था है।

फलागमः— नाटिका के चतुर्थ अंक में उदयन का प्रियदर्शिका से विवाह सम्पन्न हो जाता है और उसे प्रियदर्शिका रूपफल की समग्र प्राप्ति होती है। यहाँ फलागम कार्यावस्था है।

रत्नावली में कार्यावस्थाएं :—

आरम्भ —रत्नावली में यौगन्धरायण का यह कथन – 'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतो'[3] नाटिका की आरम्भावस्था है।

यन्त :— द्वितीय अंक में सागरिका द्वारा चित्र बनाना उदयन समागम के उपाय है – तथापि नास्ति तस्य जनन्यान्यो दर्शनोपाय इति यथा तथा लिख्यैन प्रेक्षिष्यें'[4] अतः यही यत्नावस्था है।

प्राप्त्याशा – रत्नावली के तृतीय अंक में वेश परिवर्तन करके अभिसरण आदि उपाय होने पर वासवदत्ता रूपी विघ्न की आशंका 'भो एवं न्विदं यद्यकाल वातावली भूत्वा नायाति देवी। वासवदत्ता'[5] विदूषक के इस वचन से प्रदर्शित की गयी है। उपाय– अपाय से युक्त यह स्थल प्राप्त्याशा है।

नियताप्तिः— रत्नावली के तृतीय अंक में विदूषक के "साअरिआ उण दुक्करं

1– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ– 58

2– 'तद्यावदिदानीं शयनींय गत्वा देव्याः प्रसादनोपाय चिन्तयामि'
प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ– 78

3– रत्नावली 1 : 7

4– रत्नावली व्य0 डा0 राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ– 59

5– रत्नावली व्या0 डा0 राजेश्वर शास्त्री तृतीय अंक पृष्ठ–169

जीविस्सदि वचन से लेकर देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमन्योपायं पश्यामि।[1] इस उक्ति तक अंश में वासवदत्ता रूपी विघ्न के प्रसादन द्वारा निवारण से फल प्राप्ति का एकान्ततः निश्चय होना सूचित होता है। अतएवं यहाँ नियताप्ति कार्यावस्था है।

फलागम – रत्नावली में सागरिका लाभ द्वारा चक्रवार्तित्व प्राप्ति की सूचना – अज्जउत्त पडिच्छ एदं से लेकर यौगन्धरायण की उक्ति – इदानी सफल परिश्रमोऽस्मि संवृत्तः[2] तक भाग मे मिलती है अतः यह कार्य की फलागम अवस्था है।

रूपक में सन्धि एवं सन्ध्यङ.ग योजना

धनंजय के अनुसार किसी रूपक में कई कथांश होते है और उनके अपने–अपने प्रयोजन भी भिन्न होते है, किन्तु वे इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन से समन्वित होते है और किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ थी उनका सम्बन्ध हुआ करता है। यही सम्बन्ध सन्धि कहलाता है।[3] मुख्य, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और उपसंहृति नाम से ये सन्धियां पांच प्रकार की होती है।[4]

मुख सन्धि :–[5] जहाँ अनेक प्रकार प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है वह मुख सन्धि कहलाती है। बीज और आरम्भ के समन्वय से इसके बारह अंग होते है उपक्षेप परिकर परिन्यास विलोभन युक्ति प्राप्ति समाधान विधान ,परिभ्भावना उदभेद और करण।

प्रतिमुख सन्धिः–[6]मुख सन्धि में निर्दिष्ट बीज का कुछ लक्ष्य रूप में कुछ अलक्ष्य

1– रत्नावली व्या0 डा0 राजेश्वर शास्त्री तृतीय अंक पृष्ठ–163
2– रत्नावली व्या0 डा0 राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ– 236
3– दशरूपकम व्या0 श्री निवास शास्त्री प्रथम प्रकाश पृष्ठ–25
4– " मुख प्रतिमुखे गर्भ : सावमर्शोपसंहृति :
दशरूपक व्या0 श्री निवास शास्त्री 1 : 35
5– (अ) साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यवृत सिंह 6 : 76
(ब) दशरूपक व्या0 श्री निवास शास्त्री 1 : 36–38
6– (अ) " " " 1 : 51
(ब) साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 77

रूप में प्रकट होना ही प्रतिमूख सन्धि है। प्रतिमुख सन्धि के 13 अंग होते हैं–विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मधुति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा पर्णसंहार।

गर्भ सन्धिः–[1] जहाँ दिखायी देकर खोये गये बीज का बार–बार अन्वेषण किया जाता है वह गर्भ सन्धि होती है। इसमे पताका नामक अर्थप्रकृति कहीं होती है। कहीं नही होती है। किन्तु प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होती है। इसके बारह अंग होते है। अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, संभ्रम और आक्षेप।

अवमर्श सन्धि–[2] जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से फल प्राप्ति के विषय में विमर्श किया जाता है तथा जहाँ यह फल होना चाहिए, इस प्रकार अवश्यंभावी फल प्राप्ति का निश्चय कर लिया जातां है। अवमर्श सन्धि कहलाती है। अपवाद, संकेत, विद्रव, द्रवशक्ति, द्युति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान नामक इसके तेरह अंग होते है।

निर्वहण सन्धिः–[3] इतिवृत्त का अन्तिम भाग निर्वहण सन्धि है। इसमें पंचम कार्यावस्था फलागम तथा कार्य नामक व्यापार नामक अर्थप्रकृति के साथ संबध होता है इस प्रकार बीज की फल रूप में परिणित हो जाती है। इसके 14 अंग होते है–सन्धि, विवोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, अगूहन, पूर्वभाव, उपसंहार और प्रशस्ति।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में सन्धियाँ तथा सन्ध्यङ्ग

मुख सन्धिः–[4] प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में स्थापना में नटी व सूत्रधार का संवाद उदयन का अशुभ संसूचक है। भावी विपत्ति से अवगत कराने के लिए यौगन्धरायण

1– (अ) दशरूपकम् व्या0 श्री निवासशास्त्री 1 : 66
(ब) साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह 6 : 78
2– (अ) दशरूपकम् व्या0 श्री निवास शास्त्री– 1 : 81
(ब) साहित्यदर्पण व्या0 सत्यव्रत सिंह 6 : 79
3– (अ) दशरूपकम्– व्या0 श्री निवासशास्त्री – 1 : 96
(ब) साहित्यदर्पण –व्या0 डॉ सत्यव्रत सिंह 6 '80
4– प्रतिज्ञायौगन्धरायण प्रथम अंक

सालक को उदयन के पास भेजना चाहता है। परन्तु तभी हंसक उदयन के नागवन जाने की, तथा प्रद्योत द्वारा छल से बन्दी बना लिये जाने की सूचना देता है। यौगन्धरायण अपने स्वामी वत्सराज को बन्धन मुक्त कराने की प्रतिज्ञा करता है। कथानक के इस अंश में गर्भ सन्धि अन्तर्निहित है क्योकि यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा ही उदयन की मुक्ति तथा वासवदत्ता समागम का प्रयोजन सिद्ध करती है। इस प्रयोजन की सिद्धि में यह बीज भूत प्रतिज्ञा ही विभिन्न रसों की निष्पत्ति कराती है।

मुख सन्ध्यङ्ग :—

उपक्षेप :— नाटक में उदयन् के बन्दी बनाये जाने की सूचना से पूर्व यौगन्धरायण सालक से ये भी बुद्धि संबंधी विमर्श करता है कि जो कर्म क्लेशसाध्य हो वह उसे सौंप देना चाहिए जो या तो स्निगध हो या सत्कारों के गुणों को जानता हो उन दोनो मे से किसी एक पर कार्य का भार सौंप देने से नियोक्ता के भाग्य अथवा दुर्भाग्य पर उस कार्य की कुशलता का असफल होना या सफल होना निर्भर है।[1] यहाँ राजा को बन्धन मुक्त कराने के लिए किये जाने वाले यौगन्धरायण के उद्योग की सफलता का हेतु उदयन का भाग्य अथवा दुर्भाग्य बताया गया। यह बीज स्वरूप उपक्षेप है।

2— परिकर :— यौगन्धरायण के सालक से प्रद्योत के कपट की सूचना तथा उदयन के बुद्धि के विषय में सन्दिहान प्रतीत होने से बीज न्यास की पुष्टि हुयी है अतः 'एतदपि स्वामिनं छलयितु कामः' में परिकर मुखसन्ध्यङ्ग है।

3—परिन्यास :— हंसक द्वारा उदयन के बन्दी बनाये जाने का समाचार जानकर यौगन्धरायण उस समाचार की पुष्टि करता है। अतः "यथा नरस्य.......प्रियं अप्रियं वा"[2] में परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

4— युक्ति :— 'यौगन्धरायणं प्रेक्षस्वेति'[3] हंसक द्वारा राजा के इस कथन को सुनकर यौगन्धरायण का प्रद्योत्त को पराजित करके अपने स्वामी को पुनः राजपद पर समासीन

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायण— 1 : 3
2— प्रतिज्ञायौगन्धरायण— 1 : 5
1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ—34

कराने का प्रयोजन निर्धारित करना ही युक्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

5– समाधान :– वस्तुतः बीज का पुनर्न्यास ही समाधान है। 'यदि शत्रु बलग्रस्त्रो'[1] इत्यादि में समाधान सन्ध्यङ्ग है।

6–परिभावना :– कुतुहल पूर्ण वचन का विन्यास ही परिभावना है। यौगन्धरायण द्वारा 'पुरूषान्तरितंमा द्रक्ष्यति स्वामी'[2] कथन में कौतुहल प्रकट होता है। अतः यहाँ परिभावना है।

7– विधान :– वत्सराज के गृहीत होने के समाचार से "हा हा भर्तः"[3] का कोलाहल विधान है।

8– विलोभन :– गुणों का वर्णन विलोभन कहलाता है। प्रतीहारी द्वारा कहा गया राजमाता के सन्देश में यौगन्धरायण के गुणों का संकीर्तन है अतः यहाँ विलोभन है।[4]

9– करणः– प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना करण कहलाता है। यौगन्धरायण का वस्त्र द्वारा वेश बदलना ही करण है।[5]

10– उद्भेद :– यौगन्धरायण का काष्ठादग्निर्जायते इत्यादि कथन उद्भेद है।[6]

11– प्राप्ति :– "दिष्टया ! शरीरं धर्षितं न तेजः"[7] यौगन्धरायण के इस कथन में प्राप्ति सन्ध्यङ्ग है।

12– भेदः– 'रिपुनगरे वाबन्धने"[8] में भेद नामक सन्ध्यङ्ग है।

प्रतिमुख सन्धिः– "यौगन्धरायण उन्मत्त सदृशो वेषो मोचयिष्यति राजानः"[9] इस कथन के द्वारा नष्ट हुए बीज का अन्वेषण करता है। अतः यहाँ पर प्रतिमुख सन्धि का सिन्निवेश है क्योंकि इस सन्धि का मुख्य विषय कुछ लक्ष्य रूप में कुछ अलक्ष्य रूप

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्– 1 : 16
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्– 1 : 14
3– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्– व्या0 डॉ0 गंगासागर राय– प्रथम अंक पृष्ठ 36
4– " " प्रथम अंक पृष्ठ 37
5– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् – व्या0 गंगासागरराय प्रथम अंक पृष्ठ 1 : 17
6 " " 1 : 18
7– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्– व्या0 गंगासागरराय प्रथम अंक पृष्ठ 25
8– " 1 : 14
9– " 1 : 17

में बीज का प्रकटन है।

प्रतिमुख सन्ध्यङ्ग–

परिसर्प :– यौगन्धरायण राजा को मुक्त कराने लिए धारण किये हुए साधु के वेश का तथा अपने को गुप्त रूप में रखने का वर्णन करके नष्ट हुए बीज का अन्वेषण करता है। अतः यहाँ परिसर्प नामक सन्ध्यङ्ग है।[1]

प्रगमन :– द्वितीय अंक में राजा प्रद्योत तथा कंचुकी का उदयन के बन्दी होने के समाचार का वार्तालाप प्रगमन के अन्तर्गत आता है।

पुष्प– वत्सराज उदयन को बन्दी बनाने के उपरान्त राजा प्रद्योत का यह कथन–'वत्सराज दर्शने कश्चिन्नोत्सारयितत्य' [2] विशेषता युक्त होने से पुष्प नामक प्रतिमुख–संन्ध्यङ्ग है।

उपन्यास – प्रद्योत उदयन की सुख सुविधा हेतु कंचुकी को ''कालसंवादिना स्तवेनार्च्यः''[3] कहकर हर्ष–प्रदर्शन करता है। यह उपन्यास नाम सन्ध्यङ्ग है।

वज्र– राजा प्रद्योत महारानी से उदयन के विषय में ''दर्पत्येनं''[4] इत्यादि कहता है। इन वाक्यों से उदयन का संगीत विद्या का ज्ञान आदि के सन्दर्भ में प्रद्योत का रोष प्रकट होता है।

नर्म– तृतीय अंक में विदूषक का मोदक संबन्धी हास–परिहास युक्त वचन ही नर्म नामक सन्ध्यङ है।

गर्भसन्धि :– प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तृतीय अंक के प्रारम्भ में उदयन के गृहीत हो जाने पर बीज के नष्ट हो जाने पर विदूषक तथा यौगन्धरायण उसको खोजने मे तत्पर है। अतः यहाँ गर्भ सन्धि है।

गर्भ सन्ध्यङ्ग –

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1 : 17
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्– व्या0 डॉ0 गंगासागरराय द्वितीय अंक पृष्ठ 60
3– '' '' '' द्वितीय अंक पृष्ठ 67
4– '' '' '' द्वितीय अंक पृष्ठ 62

अभूताहरणः— छल पूर्वक कार्य ही अभूताहरण है। तृतीय अंक मे विदूषक डिण्डिक तथा यौगन्धरायण उन्मत्तक वेश मे अपने प्राप्तव्य का प्रयत्न करते है। यहाँ अभूताहरण नामक सन्ध्यङ्ग है।

मार्ग :— विदूषक से यौगन्धरायण राजा उदयन की श्रृंखलाओं की ध्वनि की तुलना पूजा के समय के घण्टों के साथ करता है तथा अगले दिन के लिए हांथी के द्वारा नगर निर्गमन की बेला की स्मृति दिलाने में वस्तु स्थिति का कथन किये जाने से यहाँ मार्ग नामक सन्ध्यङ्ग है।[1]

संग्रहक— शिवक नामक परिरक्षक को प्रसन्न करने सम्बन्धी विदूषक व यौगन्धरायण की वार्ता, संग्रहक नामक संन्ध्यङ्ग है।[2]

रूपम्— विदूषक का यौगन्धरायण के साथ उदयन को मुक्त कराने के प्रयत्न में तर्क—वितर्क मय वाक्य रूपम सन्ध्यङ्ग की कोटि में आते है।

अधिबलम्— विदूषक का यौगन्धरायण का वासवदत्ता विषयक प्रेम वार्ता का भाव जान लेना अधिबलम है।[3]

तोटक — राजा उदयन की प्रेमविषयक वार्ता पर यौगन्धरायण द्वारा कटाक्ष करना, तोटक नामक सन्ध्यङ्ग के अन्तर्गत आता है।

आक्षेप — वसन्तक वत्सराज उदयन का समाचार यौगन्धरायण से कह रहा है जिसमें उदयन की मुक्ति की चिन्ता व्यक्त की गयी है। यह नाटक का 'बीज' है जिसके उद्भेद के कारण यहाँ आक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।[4]

अवमर्श सन्धि :— यौगन्धरायण, उदयन के असमय रागलिप्त हो जाने की, विदूषक से आलोचना करता है। तथा फलप्राप्ति के विषय में संदिग्धता व्यक्त करता है और अन्त में वासवदत्ता सहित, उदयन को मुक्त कराने की प्रतिज्ञा करता है। यहाँ पर 'अवमर्श' सन्धि है।

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या० डॉ० गंगासागरराय — तृतीय अंक पृष्ठ 91—94

2— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या० डॉ० गंगासागरराय — तृतीय अंक पृष्ठ 96

3— 'न खलु तां प्रति समुत्पन्नाभिलाषः स्वामी'

4— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या० डॉ० गंगासागरराय — तृतीय अंक पृष्ठ 98

अवमर्श सन्ध्यङ्ग :—

अपवाद :— यौगन्धरायण द्वारा राजा के दोषों का आख्यान अपवाद के अन्तर्गत आता है।

प्ररोचना :— तृतीय अंक में विदूषक द्वारा भावी घटनाओं को सिद्ध पुरूष की भाँति कहना, प्ररोचना नामक सन्ध्यङ्ग है।[1]

व्यवसाय— यौगन्धरायण का सुभद्रामिव गाण्डीवी ....नास्मि यौगन्धरायण्म्[2] कहना जिससे उसका शौर्य प्रकट होता है। यहाँ पर 'व्यवसाय' नामक सन्धङ्.ग है। द्वारा राजा तथा वासवदत्ता को हरने की पुनः प्रतिज्ञा, उसकी आत्मश्लाधा का परिचायक है। यह विकल्थना नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत आता हैं।

विकत्थना — यौगन्धरायण द्वारा राजा तथा वासवदत्ता को हरने की पुनः प्रतिज्ञा उसकी आत्मश्लाघ का परिचायक है। यह विकत्थना नामक सन्ध्यङंग के अन्तर्गत आता है।

आदानमः— नाटक का "अरिसंघातः स्वकार्यमनुष्ठीयताम" अर्थात शत्रुओं का नाश हो और हम अपने कार्य को करे, इस प्रकार का कथन, नाटक की कथावस्तु को संग्रहीत करते हुए लक्ष्य की ओर अग्रसर होने से यहाँ आदानम नामक सन्ध्यंग है।

5—निर्वहण सन्धिः— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् के चतुर्थ अंक मे भट—गात्रसेवक का वार्तालाप कथावस्तु को एक अर्थ के लिए एकत्र करता है। अतः यहाँ निर्वहण सन्धि है।

निर्वहण सन्ध्यङ्.ग—

सन्धिः— भट द्वारा उदयेन के वासवदत्ता को लेकर निकल जाने की सूचना प्राप्त होती है। वस्तुतः इस कथन से बीज की उदभावना होती है। अतः यहाँ सन्धि नामक सन्ध यंग है।

विबोध— यौगन्घरायण का उद्देश्य पूर्ति हेंतु प्रयत्न शील होना विबोध नामक सन्ध्यङग है।

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या० डॉ० गंगासागरराय — तृतीय अंक पृष्ठ 101
2— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् — 3 : 8 — 9

ग्रथन— नाटक कार द्वारा यौगन्धरायण को छल द्वारा राजा उदयन के बन्दी बनाये जाने की बात पुनः स्मरण कराना, तथा 'पहले छल के प्रतिकार मे दूसरा छल उचित होगा' इस प्रकार उसके मुख से कहलाकर कथावस्तु को समाहित करना कि अतिशीघ्र उसकी प्रतिकार किया सम्भव है यहाँ पर ग्रथन नामक सन्ध्यङ्ग है।

भाषणः— भरतरोहतक तथा यौगन्धरायण का परस्पर "दिष्ट्या भवान् दृश्यते"[1] कथन भाषण सन्ध्यङ्ग के अन्तर्गत आता है।

कृति :— वासवदत्ता सहित उदयन मुक्ति रूपी इच्छित फल की प्राप्ति पर यौगन्धरायण का सन्तोष पूर्वक यह कहना—"नीतेरत्ने भाजने को निरोधः"[2] कृति नामक सन्ध्यङ्ग के अन्तर्गत आता है।

प्रसाद — मरण व्यवसाय के लिए उद्यत रानी अङ्गारवती को महासेन का यह कथन "किमिदानीं हर्षकाले सन्तप्यसे"[3] प्रसाद नामक सन्ध्यङ्ग के अन्तर्गत आता है।

प्रशस्ति— नाटक के अन्त में भरत वाक्य[4] में कवि द्वारा शत्रुओं द्वारा किये जा रहे कपट व्यवहार की शान्ति तथा राजसिंह के सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर शासन करने की कामना, प्रशस्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

स्वप्नवासवदत्तं में सन्धियाँ एवं सन्ध्यङ्ग :—

1—मुख सन्धि— 'स्वप्नवासवदत्तं में वत्सराज के पद्मावती प्राप्ति हेतु यौगन्धरायण का प्रयत्न ही बीज है, जिस पर अपहृत राज्य की प्राप्ति सम्भव है। ब्रह्मचारी द्वारा उदयन के गुणो में प्राप्त करने की अभिलाषा जाग्रत कराने में सफल होता है।

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— व्या0 डॉ0 गंगासागरराय – चतुर्थ अंक पृष्ठ 128
2— " " " 4 : 11
3— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 138
4— " " " 4 : 25

मुख सन्ध्यङ्गाः–

परिकर– 'श्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः'[1] से सुवषित बीज की प्राप्ति में यौगन्धरायण वासवदत्ता को कष्ट सहने की क्षमता प्रदान करता है कि वासवदत्ता पुनः स्वामी क विजय प्राप्त करने पर श्लाघ्य पद प्राप्त करेगी। यहाँ पर बीजन्यास की बहुलता होने के कारण परिकर सन्ध्यङ्ग है।

परिन्यास– "चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति"[2] से बीज की निष्पत्ति होती है। बीज न्यास की परिपक्व दशा होने से यहाँ परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

विलोभन– ब्रह्मचारी द्वारा पद्मावती के सम्मुख राजा उदयन के अपनी पत्नी के प्रेम आदि गुणों का वर्णन, विलोभन सन्ध्यङ्ग है।

विधान– बह्मचारी के मुख से राजा उदयन की दशा का वर्णन सुनकर वासवदत्ता का दुखी होना विधान सन्ध्यङ्ग है।

प्रतिमुख सन्ध्यङ्ग–

विलास– "सर्वजन मनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नामं।[3] में विलास सन्ध्यङ्ग है।

नर्म– क्रीड़ा से रक्तिम आभा से युक्त पद्मावती की देखकर वासवदत्ता का' अभित इव तेऽद्य वरमखं 'पश्यामि'[4] कहना नर्म सन्ध्यङ्ग है।

वज्र– चेर्टी का कथन 'सपत्नीमर्दनं नाम'[5] वज्र सन्ध्यङ्ग है।

गर्भ सन्धिः– स्वप्नवासवदत्तं में "अनतिक्रमणीयों हि विधिः" से गर्भ सन्धि का आभास होता है।

गर्भ सन्ध्यङ्ग –

अनुमान– "पदाक्रान्तानि पुष्पाणि चोष्मचेदं शिलातलम्। नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गताः"

रूप– पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।

1– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 4
2– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 4
3– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 65
4– " " " द्वितीय अंक पृष्ठ 59
5– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 77

वासवदत्ता न तु तावन्में मनोहरति।।[1] सुनकर वासवदत्ता के मन में पुनः मिलन की आशा ही 'रूप' है।

आक्षेप— गर्भ के बीज का प्रकटन ही आक्षेप है। चतुर्थ अंक में 'मगधराज के गुणों का आख्यान राज्य प्राप्ति रूपी बीज विशेष रूप से प्रकट होता है।

4—अवमर्श सन्धिः— पंचम अंक की समाप्ति पर कंचुकी द्वारा मंत्री रूमण्वान के राजा आरूणि पर चढाई का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ राज्य प्राप्ति का लोभ होने से अवमर्श सन्धि है।

अवमर्श सन्ध्यड्.ग :—

अपवाद :— राजा उदयन द्वारा तमारूणि दारूणकर्मदक्षम्[2] कहना अपवाद नामक सन्ध्यडगं है।

शक्ति :— पंचम अंक के अन्त में कन्चुकी द्वारा उदयन शत्रु विनाश की सूचना देना[3] शक्ति है।

प्रसंग :— षष्ठ अक के प्रारम्भ में कंचुकी रैभ्य के आने पर राजा का उसके तथा वासवदत्ता के माता पिता के प्रति सम्मान प्रकट करना प्रसंग है।

प्ररोचना :— कञ्चुकी द्वारा " कि नाम देव"[4] कहना प्ररोचना है।

आदान :— 'दिष्ट्या परैपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतम्[5] द्वारा कथा को समाप्ति की ओर ले जाना आदान है।

5— निवर्हण सन्धि :— नाटक की मुख्य कथा वासवदत्ता विषयक वार्ता जो अभी तक इधर—इधर बिखरी थी उसे केन्द्रीभूत करता हुआ उदयन का यह कथन

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च में प्रिया।
कथं स न मया शक्या स्मर्तुं देहान्त रेष्वापि।।[6]

निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत आता है।

1— स्वप्नवासवदत्तम 4 : 4
2— स्वप्नवासवदत्तम् 5 : 13
3— स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय पंचम अंक पृष्ठ 163
4— " " 6 : 5
5— स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठं अंक पृष्ठ 186—187
4— स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 11

निवर्हण सन्ध्यङ्ग–

विबोध– चित्रफलक में स्थित वासवदत्ता तथा अवन्तिका वेशधारी वासदत्ता की रुप मे समानता होने से पदमावती अवन्तिका के वासदत्ता होने की आशका करती है।[1] यहां विबोध नामक सान्ध्यङग है।

कृति– षष्ठ अंक मे योगन्धरायण के क्षमा मांगने पर उदयन उसे प्रसन्न करने के लिये कहता है कि हम तुम्हारे प्रयत्नो द्वारा ही सफल हुए है।

प्रशस्ति– इमां राजसिंह————————प्रशास्तु नः।[2] मे प्रशस्ति सान्यङग है।

प्रियदर्शिका में सन्धियाँ–

1–मुख सन्धि– प्रियदर्शिका मे प्रथम अंक से लेकर द्वितीय अंक के छठे श्लोक तक मुख सन्धि है।

2–प्रतिमुख सन्धि –मुख सन्धि मे वपित अनुराग रुप बीज का चेटी तथा अरण्यका के वार्तालाप से उदघाटन होता है तथा भ्रमर निवारण के उपलक्ष्य मे अरण्यका विदूषक के वचनो से राजा का परिज्ञान करती है।[3] इस अंश मे प्रतिमुख सन्धि है।

3– गर्भ सन्धि– रंगमच पर अभिनय के व्याज से अरण्यका व उदयन के सम्मिलन की योजना बनती है परन्तु वह मनोरमा के" चिरयति खलु महाराज कि न कथित वसन्तकेन अथवा देव्या विभेति"।[4] जैसे कथनो से भंग सी हो जाती है। पुन; अभिनय क्रम मे जो समागम की आशा होती है वह अभिनय के रहस्योदघाटन के परिणाम स्वरूप वासवदत्ता के क्रोध रूप विघ्न के प्रतिकर के लिए उपाय का अनुसन्धान होता है कि "दिव्या प्रसादं मुक्त्वा नान्यः मोक्षणाभ्युपायः"[5] अतः यहाँ गर्भ सन्धि हैं।

1– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ् अक पृष्ठ 198
2– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 18
3– 'प्रियदर्शिका व्या0 रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृष्ठ 36
4– प्रियदर्शिका व्या0 रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 58
5– " " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 86

4— **विमर्श सन्धि** — कलिंग राज के विनाश तथा दृढ़वर्मा के अभ्युदय को सुनकर वासवदत्ता की प्रसन्नता से अरण्यका की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है किन्तु अरण्यका का विषपान रूप विघ्न आ जाने के कारण राजा को अरण्यका प्राप्ति सन्देहास्पद प्रतीत होना विमर्श सन्धि हैं

5— **निर्वहण सन्धि** — प्रियदर्शिका में दृढ़वर्मा के कञ्चुकी प्रियदर्शिका तथा विदूषक के कार्यो आदि के कार्यो का वत्सराज के एक ही कार्य प्रियदर्शिका का समागम के लिए समाहार होता है। यही निर्वहण सन्धि है।

रत्नावली में सन्धियाँ तथा सन्ध्यङ्ग —

1— **मुख सन्धि** — रत्नावली में विष्कम्भक में यौगन्धरायण के 'एवमेतत्। कः सन्देहः से लेकर द्वितीय अंक के कदलीगृह से चित्रफलक व लेखन सामग्री लेकर गयी हुयी सागरिका के चित्र बनाकर वत्सराज के दर्शन के प्रयत्न से पूर्व तक मुख सन्धि है।

2— **प्रतिमुख सन्धि** :— द्वितीय अंक में सागरिका के "ता जावण को विइह आअच्छदि ताव आलेक्अ समप्पिदं तं अहिमदं जणं पेक्खिम जहासमीहिदं करिस्सम्।'[1] इस कथन से लेकर अंक की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि है।

3— **गर्भ सन्धि** — तृतीय अंक मे वेष निपर्यय द्वारा कुछ समय के लिए सांगरिका प्राप्ति सम्भव होती है, किन्तु अचानक वासवदत्ता के आने और सागरिका व वसन्तक के पकड़े जाने से उसमें व्यवधान उत्पन्न हुआ। यहीं पर राजा देवी प्रसादन द्वारा फिर अपाय निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है। अतः इस अंक में गर्भ सन्धि है।

4— **विमर्श सन्धि** — चतुर्थ अंक में ऐन्द्रजालिक द्वारा प्रकट कृत्रिम अग्नि से अन्तःपुरदाह तक विमर्श सन्धि हो गयी क्योंकि अन्तःपुर में अग्निदाह से वासवदत्ता के हृदय में सागरिका के प्रति स्नेह जागृत हो गया और वह राजा से सागरिका की रक्षा के लिए कहती है— 'एसा क्खु मए णिगिधणाए इध नि अडेण संजमिदा सा आरिआ विवज्जदि। ता तं परित्ताअदु अज्जउत्तो।'[2] इससे देवी रूपी अपाय के अभाव से फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है।

1— रत्नावली व्या० डॉ० राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ 58
2— रत्नावली व्या० डॉ० राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ 217

5— निर्वहरण सन्धि :— चतुर्थ अंक के शेष भाग में निर्वहण सन्धि है।

रूपकों में नाट्यालंकारों की योजना

नाम से स्पष्ट है कि नाट्यलंकार नाट्य के सौन्दर्या— धायक तत्व है। भरत मुनि ने नाटशाव्र के 16 वे अध्याय मे नाटयलंकारो की चर्चा की है तथा नाट्यालंकारो की संख्या 36 निरूपित की है। आचार्य विश्वनाथ ने 33 नाट्यालंकारो[1] का लक्षण किया है। जो इस प्रकार है—

1— आशी 2— आक्रान्दन 3— कपट 4— अक्षमा 5— गर्व
6— उद्यम 7— आश्रय 8— उत्प्रासन 9— आंकाक्षा 10— क्षोभ
11—पश्चात्ताप 12— उपपत्ति 13— आशंसा 14— अध्वसाय 15—विसर्प
16— उल्लेख 17— उत्तेजन 18— परीवाद 19— नीति 20— अर्थविशेषण
21— प्रोत्साहन 22— साहाय्य 23— अभिमान 24— अनुवर्तन 25— उत्कीर्तन
26— याञचा 27— परिहार 28— निवेदन 29— प्रवर्त्तन 30— आख्यान
31— युक्ति 32— प्रहर्ष 33— उपदेशन

इन नाट्यालंकारों का प्रयोग समीक्ष्यग्रन्थों प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम, स्वप्नवासदत्तम्, प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवत्सराज चरितम् में भी हुआ है। इन अलंकारों की निरूपण समीक्षा अलग—अलग कृतियों में करने के बजाय सभी कृतियों की एक साथ समीक्षा की जा रही है।

आशी[2]— इष्टजन की आशंसा अथवा अभ्युदय कामना करना आशी है। स्वप्नवासदत्तम् में तापसी द्वारा पद्मावती को दिया गया आर्शीवाद 'जाते, तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व।[3] आशी नामक नाट्यालंकार है।

आक्रन्द[4]— शोकादि के आवेग के कारण प्रलाप आदि के वर्णन में आक्रान्द नाट्यालंकार होता है। जैसे स्वप्नवासदत्तम् में ब्रह्मचारी द्वारा वासवदत्ता के

1— साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ अध्याय 195—198
2— 'आशीरिष्टजनाशंसा' साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 490
3— स्वप्नवासदत्तम, व्या0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 52
4— 'अक्रान्दाः प्रलीपतं शुचौ' साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 490

शोकसंतप्त उदयन की विरह दशा का वर्णन[1] तथा तापसवत्सराज चरितम् में वासवदत्ता के जलकर मर जाने की सूचना पर उदयन के करूण विलाप[2] का वर्णन आक्रान्द नामक नाट्यलंकार है।

कपट[3] – प्रतिज्ञा यौगान्धरायणम् में तृतीय अंक में यौगन्धरायणं का उन्मत्तक, रूमष्वान, का श्रमणक वेषधारण कर फलप्राप्ति हेतु विविध प्रयत्न करना 'कपट' नाट्यालंकार है।

उद्यमः–[4]कार्यारम्भ का वर्णन करना उद्यम है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यौगन्धरायण का यह कथन–'प्रद्वेषो बहुमानो'[5] उधम नामक नाट्यालकांर के अन्तर्गत आता है।

गर्वः–[6]अभिमान पूर्वक किसी वचन का उपनिबन्धन करना ही गर्व है। स्वप्नवासवदत्तम् में वासदत्ता का यह कथन–'अहमपि नामोंत्सारयित्वा भवामीति'[7] गर्व के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अक्षमाः–[8] रंचमात्र भी अनादर की असहशीलता का वर्णन अक्षमां नाट्यालंकार है। स्वप्नवासवदत्तम् मे उत्सारण क्रिया के सन्दर्भ में वासदत्ता का यह कथन–'आर्य तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति,यथायं पुरिभवः[9] अनादर के प्रति असहनशीलता का ही परिचायक 'अक्षमा नाट्यालंकार है।

आकांक्षाः–[10]किसी वस्तु की मनोहरता के कारण उसकी लालसा का वर्णन 'आकांक्षा'नामक नाट्यलंकार के अंन्तर्गत आता है प्रियदर्शिका मे अरण्यका को देखकर

1– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 40–43
2– प्रियवासदत्ते (क) दृष्टामृतवर्षिणी ....दहनस्तस्येदमाचेष्टितम।। तापसवत्सराज 2 : 9
(ख) उत्कम्पिनी ....न वीक्षितासि । तापसवत्सराजचरितम् 2 : 16
3– साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 491
4– 'कार्यस्यारम्भ उद्यम': साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 492
5– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् – 1 : 7
6– 'गर्वाऽवलेपजं वाक्यं' – साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 492
7– स्वप्नवासवदत्तम् – डॉ0 गगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ – 8
8– 'अक्षमा सा परिभवः स्वल्पोअपि न विसहाते'
साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यब्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 492
9– स्वप्नवासवदत्तम् डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ – 8
10– साहित्यदर्पण व्या0 डा0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ – 493

राजा का यह कथन कि वह धन्य है जो इस शरीर के स्पर्श से होने वाले सुख का पात्र होगा।[1] आकांक्षा नामक नाट्यालकंार है।

क्षोभ [2]— अधिक्षेपार्थ वचन का उपन्यास ही क्षोभ है। स्वप्नवासदत्तम् में उत्सारण क्रिया के प्रति वासवदत्ता का कथन 'क्षोभ' नाट्यालंकार है।

नीति [3]— शास्त्रानुसरण का वर्णन ही नीति नाट्यालकार है। स्वप्नवासदत्तम् में पद्मावती के वंशपरम्परा की नीति का वर्णन[4] इस नाट्यालंकार के अन्तर्गत आता है।

प्रोत्साहन[5]— प्रोत्साहन वह नाटृयालंकार है जिसे किसी को किसी कार्य सिद्धि की ओर प्रवृत्त करनें के लिए, उत्तसाहवर्धक वचन का विन्यास कहा गया है। प्रियदर्शिका में उदयन चरित नाटक के अभिनय के परिप्रेक्ष्य में अरण्यका के प्रति राजा का यह कथन प्रोत्साहन नामक नाट्यालंकार के अन्तर्गत आता है— साधु राजपुत्रि साधु। अहो गीतमहो वदित्रम। तथा हि—व्यक्तिर्व्यन्जनधातुना......सम्यक्त्रयो दर्शिताः।।[6]

अभिमान[7] — अभिमानसूचक वाक्य का प्रयोग ही अभिमान नाट्यालंकार है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में वत्सराज के गृहीत हो जाने पर महासेन का यह कथन –'एष समासः अद्यास्मि महासेनः[8] अभिमान नामक नाट्यालंकार है। रत्नावली में एन्द्रिजालिक का कथन[9] भी अभिमान के अन्तर्गत आता है।

अनुवर्तन[10] — विनयपूर्वक किसी के सत्कारादि का वर्णन ही अनुवर्तन नाट्यालंकार है। स्वप्नवासदत्तम् के षष्ठ अंक मूं धात्री द्वारा राजा से रानी अंगारवती का सन्देश कहना[11] अनुवर्तन है।

1— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृष्ठ 32
2— "अधिक्षेप वचःकारी क्षोभः प्रोक्तः स एव तु ! सा0 द0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परि0 पृष्ठ 493
3— 'नीति शास्त्रेण वर्तनम्'! साहित्यदर्पण सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 496
4— स्वप्नवासदत्तम् 1 : 6
5— 'प्रोत्साहनंस्यादुत्साहगिरा कस्यापि योजनम्'।
साहित्यदर्पण डॉ0 सत्यव्रत सिह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 497
6— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 66
7— 'अभिमानः स एव स्यातू। साहित्यदर्पण सत्यव्रत सिंह षष्ठ परि0 पृष्ठ 497
8— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डा0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 59
9— रत्नावली 4 : 7 — 8
10— 'प्रश्रयादनुवर्तनम्'— साहित्यदर्पण सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 498
11— स्वप्नवासदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 193

उत्कीर्तन[1] – भूतपूर्व कार्यो अथवा वृत्तान्तों का उपवर्णन करना उत्कीर्तन है। स्वप्नवासदत्तम् में राजा उदयन का महासेन के प्रति यह कथन – अहमवजितः.......नृपोऽत्र किं कारणम्।।[2] तथा वीणा को लक्ष्य करके राजा का यह कथन उत्कीर्तन नाट्यालंकार के अर्न्तगत आते है– श्रोणी समुद्वहन ....च संस्मतानि।।[3]

परिहार[4] – 'परिहार' वह नाट्यलंकार है जिसे किसी पूर्वकृत अनुचित कार्य के परिहार का वर्णन कहा गया है। स्वप्नवासदत्तम् के षष्ठ अंक में राजा उदयन का वासदवदत्ता के माता–पिता के प्रति किये गये अपने अनुचित कार्य़ 'के सन्दर्भ में यह कथन परिहार है– किं वक्ष्यतीति ह्रदयं ....इवास्मि भीतः।[5]

अथवा– यौगन्धरायण का यह कथन भी परिहार है–

यौगन्धरायणः– स्वामिन। देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी।[6]

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता का अरण्यका के प्रति यह कथन भी परिहार के अन्तर्गत आता है– 'किमिदानीं मयापराद्धमजानत्या – कुपिता नालपसि।

तत्प्रसीद। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ न खलु पुन रपरात्स्यामि।[7]

इसी प्रकार रत्नावली में उदयन् से राजा का यह कथन[8] भी परिहार है–

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो चुका है कि समीक्ष्य इन रचनाओं में नाट्यलंकारो का प्रचुरता से विन्यास हुआ है। अभीष्ट इन सभी रचनाओं में नाट्यालंकारो के विन्यास की समीक्षा यहाँ सम्भव नही है अस्तु कुछ नाट्यालंकारो को विन्यास कुछ रचनाओं में दिखा दिया गया है। वस्तुतः नाट्यालंकारो की दृष्टि से रचनांए अत्यन्त समृद्ध कही जा सकती है।

1– 'भूतकार्याख्यानमुत्कीर्तन मतम्'।
साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 498
2– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 8
3– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 2
4– 'परिहार इति प्रोक्तः कृतानुचितमार्जनम्'।
साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह षष्ठ परिच्छेद पृष्ठ 499
5– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 4
6– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0– डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 209
7– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 101
8– रत्नावली व्य0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ 230

रूपकों में वस्तु चयन की मूल प्रवृत्तियाँ

भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायणम व स्वप्नावदत्तम, हर्षकृत प्रियदर्शिका व रत्नावली तथा अनंगहर्ष कृत तापसवत्सराज चरितम् उदयन की प्रणय कथावृत्त पर आधारित रचनाएं है। इन सभी कृतियों का कथानक प्रख्यात व कवि कल्पित है। एक ही कथा को आधार बनाकर भास, हर्ष व अनंगहर्ष नाटकाकारों ने उपर्युक्त रूपकों की रचना की। आखिर क्या कारण है कि एक के बाद एक इन नाटककारों ने उदयन कथावृत्त को अपनी रचनाओं का आधार बनाया? इस वृत्त को चयन करने में उनकी मूल भावना क्या थी? उनकी मूल प्रवृत्तियां क्या थी ? किस प्रकार उन्होने अपनी कल्पना के प्रभाव व नाट्यनैपुण्य से इस वृत्त को नये–नये रूप में प्रस्तुत किया ? यह जानने के लिए इन कृतियों के कथावृत्त की तुलनात्मक समीक्षा अनिवार्य है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तम् में वस्तु चयन की मूल प्रवृत्तियाँ – भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासदत्तम् दोनो एक दूसरे के पूरक रूपक् है। दोनो का सम्मिलित कथानक एक विशालकाय नाटक की रचना में समर्थ है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् का कथानक स्वप्नवासदत्तम् के कथानक का पूर्वाद्ध कहा जा सकता है। स्वप्नवासवदत्तं प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् की उत्तरीवर्ती एवं भास की प्रौढ़ कृति है।

महाकवि भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायणम का कथानक राजनीतिक घटनाओं, विडम्बनाओं व घात– प्रतिघात की पृष्ठभूमि मे ग्रथित किया है जबकि स्वप्नवासवदत्तमः के कथानक में दाम्पत्य प्रेम व त्याग का उच्चतम आदर्श स्थापित किया गया है। वास्तव में स्वप्नवासदत्तम के कथावृत्त का सूत्रपात प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम के तृतीय अंक में हो जाता है। इसी लिए ही ये दोनों रुपक क्रमबद्ध रुप से सम्बद्ध है।

प्रतिज्ञायौगन्धराणम तथा स्वप्नवासवदत्तम दोनोंमेंकुछ समानताए है– इन दोनों ही नाटको में नायक– नायिका के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न होता है क्योकि दोनो में ही

घटनाओं का सूत्रधार व संचालक यौगन्धरायण ही है। दोनो के प्रमुख पात्रों में तथा नाटकगत कुछ स्थलों में समानता है। उदयन वासवदत्ता रूमण्वान वसन्तक आदि प्रमुख पात्र दोनों ही रूपको में समान है। दोनो रचनाओं के एक दूसरे से सम्बद्व होते हुए भी उनमे निहित मूल प्रवृत्तियाँ उनके भेदक धर्म है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में पुरूष पात्रों की प्रधानता नीति कुशलता तथा वीर रस की प्रधानता है जबकि स्वप्नवासवदत्तम में स्त्री पात्रों की तथा श्रृंगार रस की प्रधानता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम कूटनीति, षडयन्त्र, प्रतिज्ञा घात प्रतिघात तथा प्रतिशोध से पूर्ण रचना है जबकि स्वप्नवासवदत्तम में प्रेम सौहार्द सहानुभूति त्याग व संवेदनशीलता की प्रमुखता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में युगीय राजनीति का सफल चित्रण है जबकि स्वप्नवासवदत्तम में राजपरिवारों के अन्तःपुरीय वातावरण का। प्रतिज्ञायौगन्धराणयम जहां यौगन्धरायण जैसे अमात्य तथा राज– कर्मी के कर्तव्य और बलिदान के आदर्श को प्रतिष्ठापित करता है। वहीं स्वप्न वासवदत्तम में वासदत्ता जैसी कृत्तर्व्यपरायण पत्नी के आदर्शभूत त्याग का चूडान्त निदर्शन हुआ है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में समस्त नाटय विधान पर कूटनीतिज्ञ यौगन्धरायण का एकाधिकार रहने से सदा सर्वदा उसका ही स्वर सुनने तथा क्रिया– कलाप देखने पर भी वत्सराज का महत्व किसी भी प्रकार से न्यून नहीं प्रतीत होता जबकि स्वप्नवासवदत्तम में नायक उदयन सदा मन्च पर उपस्थित होते हुए भी निक्रिय सा प्रतीत होता है। वस्तुतः भास ने दोंनो कृतियों में जिन प्रवृत्तियाँ का समावेश किया है उन युगीन प्रवृत्तियों को इतिहास के परिप्रेक्ष्य मे भी सत्य सिद्ध किया जा सकता है।

स्वप्नवासदत्तम् की वैवाहिक घटना प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम की मुख्य कथा है। कुलीन, वीर, कलाप्रेमी उदयन अपने गुणों के कारण प्रसिद्ध तथा स्वाभिमान राजा था।[1] उसके गुणो पर उज्जयिनी नरेश प्रद्योत आकृष्ट था

1– स्वप्नवासवदत्तम् 2 : 3

तथा उसके साथ अपनी पुत्री वासदत्ता के विवाह का इच्छुक था। परन्तु कुलाभिमानी उदयन को प्रद्योत की अधीनता स्वीकार नहीं। उदयन के नीतिनिपुण मंत्रिमण्डल के भय से ही प्रद्योत ने उस पर सीधा आक्रमण न करके छल का प्रश्रय लिया। कौमुदी महोत्सव[1] वीणावासवदत्तम[2] तथा बाणभट्ट प्रणीत हर्ष चरितम् का षष्ठ उच्छवास इस घटना की पुष्टि करते हैं। नाटक की दूसरी घटना उदयन के युद्ध सम्बन्धी है। जिसमें शत्रु उदयन का बध करना चाहते है किन्तु शालंकायन[3] उसकी रक्षा करता है। यह घटना काल्पनिक तथा असम्बद्ध प्रतीत होती है। हंसक द्वारा संदेश भेजने की घटना भी ऐतिहासिक प्रमाण से शून्य है। भास ने हंसक द्वारा सन्देश की घटना को जिस प्रकार उपन्यस्त किया है उसका प्रयोजन यौगन्धरायण के महत्व को बढ़ाना प्रतीत होता है। द्वितीय अंक की घटनाओं का पूर्वभाग भी कल्पनानुस्यूत है। तृतीय व चतुर्थ अंक में यौग्न्धरायण की कूटनीति उज्जयिनी पर छा जाती है। कथा सरित्सागर में यौगन्धरायण की कूटनीति उज्जयिनी पर छा जाती है कथा सरित्सागर में यौगन्धरायण एक जादूगर के रूप में चित्रित है जबकि भास ने यौगन्धरायण को एक कुशल बुद्धिमान मन्त्री के रूप में चित्रित किया है।

कथासरित्सागर जैन तथा बौद्धकथाएं सभी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि उदयन वासवदत्ता के वीणाशिक्षक के रूप में उज्जयिनी में रहा। मेघदूत में प्रद्योत पुत्री के वत्सराज द्वारा अपहरण की घटना का उल्लेख हुआ है।[4] अपरहण के उपरान्त यौगन्धरायण के बन्दी होने तथा भरतरोहक के साथ इसके वाक्युद्ध की घटना भी ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित नही है किन्तु यह घटना स्वाभाविक प्रतीत होती है।

1– कौमुदीमहोत्सव 1 : 11
2– वीणावासवदत्तम् 2 : 5 – 7
3– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या० डॉ० गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 27
4 - 'प्रद्योतस्य प्रिय दुहितरं वत्सराजों जहेन्'
मेघदूतम – पूर्वमेघ श्लोक – 34

स्वप्नवासदत्तम के अनुसार उदयन के सन्दर्भ में सिद्धों द्वारा की गयी दो भविष्यवाणियों में से एक की सत्यता से आश्वस्त यौगन्धरायण दूसरी भविष्यवाणी के प्रति अशान्वित होकर पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराकर, मगधराज दर्शक की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, जिससे उदयन को अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति हो। तत्कालीन ऐतिहासिक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं उस समय राज्यों में परस्पर संघर्ष होते रहते थे तथा राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति हेतु वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे। नाटक में निर्दिष्ट सिद्धों की घटना पूर्णतः काल्पनिक है किन्तु यह स्वाभाविक है कि प्रधान अमात्य यौगन्धरायण ने रूमण्वान आदि मन्त्रियों से परामर्श करके अपहृत राज्य की वापसी के लिए दर्शक की सहायता को प्राप्त किया होगा। अतः यह घटना ऐतिहासिकता के सन्निकट है। कथासरित्सागर का यह उल्लेख कि पद्मावती दर्शक की पुत्री थी, भ्रामक है। भास के अनुसार पद्मावती मगध राज दर्शक की बहन है।[1] जिसकी प्राप्ति के लिए ही, वासवदत्ता गोपन हेतु लावणक दाह का प्रयोग किया गया।

भास प्रणीत स्वप्नवासदत्तम् में स्वप्न वाली घटना काल्पनिक है। किन्तु इस नाटकीय घटना की स्वभाविकता अद्वितीय है। पद्मावती के साथ विवाहोपरान्त उदयन मगध राज दर्शक की सहायता से आरूणि पर आक्रमण करता है यह बात तो इतिहास प्रसिद्ध है। किन्तु चित्रदर्शन द्वारा वासवदत्ता से सम्मिलन की घटना पूर्णतः काल्पनिक है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम तथा स्वप्नवासदत्तम् में वस्तु चयन की मूल प्रवृत्ति ऐतिहासिकता के अधिक निकट है। किन्तु नाटककार ने अपनी वैदुष्यपूर्ण कल्पना के व्याज से नाटकीयता में चारूत्व लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

प्रियदर्शिका तथा रत्नावली में वस्तु चयन की मूल प्रवृत्तियाँ

हर्ष कृत प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनो ही प्रणय नाटिकाएं हैं दोनो के कथावस्तु चयन में हर्ष की प्रवृत्ति समान रही, फलस्वरूप दोनो नाटिकाओं में पर्याप्त समानता है।

1– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 13

दोनों नाटिकाओं की कथावस्तु उदयन की प्रेम कथाओं पर आधारित है। दोनों नाटिकाओं में नायक राजा उदयन, ज्येष्ठा देवी से छिपकर प्रणय व्यापार में प्रवृत्त होता है। प्रियदर्शिका में विदूषक व मनोरमा तथा रत्नावली में विदूषक व सुसंगता नायक–नायिका समागम का उपाय करते है। दोनों में ही वासवदत्ता को नारी सुलभ ईर्ष्या से युक्त चित्रित किया गया है। दोनों नाटिकाओं की नायिकाएं प्रियदर्शिका और रत्नावली को तथा विदूषकों को ज्येष्ठा नायिका द्वारा बन्दी बनाया जाता है। दोनों में नायक उदयन नायिका के समागम रूपी फल प्राप्त करने के लिए देवी प्रसादन का उपाय सोचते है। दोनों नाटिकाओं की नायिकाएं प्रकरान्तर से ज्येष्ठा नायिका की भगिनी है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली के कथा विन्यास के साथ–साथ घटनाओं में भी पर्याप्त समानता है। दोनों ही नायिकाएं उदयन के समीप लायी जाती हुयी विपत्ति ग्रस्त हो जाती है। परन्तु सौभाग्य से दोनों जीवित रहती हैं। तथा उदयन के राज्य में प्रविष्ट होने में सफल रहती हैं। यानभंग के उपरान्त सागर से प्राप्त होने के कारण रत्नावली, सागरिका के नाम से तथा अरण्याधिपति विन्ध्यकेतु के यहाँ से प्राप्त होने के कारण प्रियदर्शिका अरण्यका के नाम से व्यवहृत होती है। तथा दोनों नाटिकाओं में वासवदत्ता, उदयन से अरण्यका व प्रियदर्शिका के प्राण रक्षा की प्रार्थना करती है। उदयन अरण्यका की विष-चिकित्सा द्वारा तथा सागरिका की अग्नि-परित्राण द्वारा रक्षा करता है।

यद्यपि इन दोनों नाटिकाओं में वस्तु साम्य व घटना साम्य है तथापि रत्नावली का कथा संविधान प्रियदर्शिका की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ है। हर्ष की नाटिकाओं में उदयन तथा वासवदत्ता के प्रणय व परिणय की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना का उपन्यास नही है बल्कि वे उदयन के अरण्यका व सागरिका के प्रणय वृत्त पर आधारित है जिनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध हैं। हां कथासरित्सागर में उल्लिखित बन्धुमती के कथानक से इनकी पर्याप्त समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि न सिर्फ कथासरित्सागर कें बन्धुमती कथानक से अपितु भास के पद्मावती चरित्र से भी प्रेरणा

लेकर हर्ष ने रत्नावली के कथा– कलेवर को अपनी कल्पना से नवीन रूप देने की प्रयास किया हैं

भास ने पद्मावती के विवाह के मूल में आरूणि द्वारा अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति की ऐतिहासिक घटना को कारण रूप में विन्यस्त किया हैं। जबकि हर्ष ने कथासरित्सागर के आधार पर पद्मावती विवाह द्वारा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति की घटना को ही रत्नावली के विवाह के रूप में उपन्यस्त किया हैं। यह घटना ऐतिहासिक नही है। लावणक दाह प्रवाद के फलस्वरूप उदयन का विवाह पद्मावती से सम्पन्न होता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हर्ष ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उदयन कथा में परिवर्धन तथा परिवर्तन किये हैं। जिससे वे इनकी ऐतिहासिकता को सुरक्षित नही रख पायें। वस्तुतः हर्ष की प्रवृत्ति कथावस्तु की ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखने के बजाय उसमें यथा संशोधन कर सामाजिको के समक्ष उसको नवीन कलेवर प्रस्तुत करने में रही हैं

तापसवत्सराजचरितम् में वस्तु चयन की मूल प्रवृत्ति :–

तापसवत्सराज, स्वप्नवासवदत्ता एवं कथा सरित्सागर की कथावस्तु की पारस्परिक तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है। कि तापसवत्सराज चरितम् की कथा स्वप्नवासवदत्तम् की अपेक्षा कथा सरित्सागर तथा 'वृहत्कथा मंजरी के अधिक निकट है ये दोनों ही ग्रन्थ अपने रूपान्तरित कथा संक्षेप को 'वृहत्कथा' पर ही पूर्णतः आधारित होने का दावा करते है। अतः यह मान लेना अनुचित न होगा कि अनङ्हर्ष ने वृहत्कथा से ही अपनी कथा के प्रमुख तत्वों को लिया है तथा अपनी कल्पना एवं मौलिक उद्भावनाओं से उसे प्रस्तुत रूप प्रदान किया हो।

अनंगहर्ष को प्रस्तुत नाटक लिखने की प्रेरणा 'स्वप्नवासवदत्तम्' से भले ही मिली हो किन्तु वह इसका कथा स्रोत नहीं हो सकता क्योंकि दोनों की घटनाओं में पर्याप्त अन्तर परिलाक्षित होता है। स्वप्नवासवदत्तम् में दोनों मन्त्रियों के अरितिक्त किसी अन्य को उनकी योजना का ज्ञान नहीं होता जबकि तापसवत्सराज में वासवदत्ता के पिता प्रद्योत को तथा कथा सरित्सागर मे उसके भाई गोपाल को अपने विश्वास में

लेकर ही मन्त्री वासवदत्ता के द्वारा ऐसा त्याग करवाने की योजना बनाते हैं। कथासरित्सागर तथा तापसवत्सराज के प्रमुख बिन्दुओं, घटनाओं की समानता का उल्लेख अध्याय के प्रारम्भ में किया जा चुका है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अनंगहर्ष ने इस कृति के कथानक के लिए भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् से प्रेरणा अवश्य ली किन्तु कथानक का आधार वृहत्कथा को बनाया तथा अपनी उर्वर कल्पना शक्ति एवं अद्भुत नाट्य नैपुण्य से उन्होनें नाटक में अनेक मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत की। कथानक के चयन में उन्होनें पूर्णतः अनुकरणात्मक प्रवृत्ति का अनुगमन नहीं किया।

****

तृतीय अध्याय

रूपकः पात्र संयोजन–

पात्रों के आभाव में नाटकों की संकल्पना शशकश्रृंग की स्थिति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। पात्रों का उत्कृष्ट संयोजन नाटक की सफलता का प्रमुख बिन्दु है। सफल नाटक अनेक पात्रों के उद्देश्यों की परिणिति है, अस्तु पात्रों की स्थिति एवं प्रकार का मूल्यांकन अनिवार्य हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में पात्रों के प्रकार के अतिरिक्त उनकी चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

(क) पात्र निर्णय के विभिन्न आधार –

1– प्रकृति के आधार पर :– भरतमुनि ने पात्रों की प्रकृति के आधार पर उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन वर्गो में विभाजित किया है–

उत्तम पात्र – उत्तम प्रकृति के पात्र सदा उदात्त व्यापारों में संलग्न होते हैं। गम्भीरता, धैर्य, उदारता आदि गुण उनमें सन्निहित होते हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् का यौगन्धरायण, उदयन, महासेन आदि उत्तम प्रकृति के पात्र हैं।

मध्यम पात्र – नायक की सहायता के लिए तत्पर रहने वाले ये पात्र आमात्य स्तर के होते हैं। यौगन्धरायण, रूमण्वान, भरतरोहक, विजयसेन आदि मध्यम प्रकृति के पात्र हैं।

अधम पात्र – अधमप्रकृति वाले पात्र की गति नीचे की ओर जाती है। उसका उठना, बैठना, बात करना एवं रहन–सहन सब निम्नकोटि का होता है।

2- अभिनेयता के आधार पर – अभिनेयता के आधार पर पात्रों के दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है –

दृश्यपात्र – रंगमंच पर प्रस्तुत होकर अपने आंगिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय से सामाजिक को रस चर्वणा कराने वाले दृश्यपात्र कहलाते हैं। जैसे–यौगन्धरायण, उदयन, पदमावती, प्रियदर्शिका आदि।

सूच्य पात्र – जो पात्र कथानक के लिए अनिवार्य तो होते हैं परन्तु रसभंग

की आशंका से इन्हें अभिनय हेतु प्रस्तुत न करके रंग मंच पर इनकी सूचना मात्र दे दी जाती है, वे 'सूच्य' पात्र कहलाते हैं। जैसे प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन व वासवदत्ता सूच्य पात्र है।

3— रंगमंच के आधार पर — रंगमंच की दृष्टि से पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

वहिः पात्र — ये पात्र मंच पर पूर्वरंग के अन्तर्गत वस्तु स्थापना के लिए प्रयुक्त होते हैं। जैसे सूत्रधार व नटी वहिः पात्र हैं।

अन्तः पात्र — ये पात्र रूपक की कथावस्तु के अन्तर्गत वर्णित होते हैं तथा रंगमंच पर उपस्थित होकर आंगिक, वाचिक, आहार्य व सात्विक अभिनयों द्वारा सामाजिकों को रसानुभूति कराते हैं। जैसे उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती आदि। रंगमंच पर अभिनय करने वाले व्यक्तियों के स्वरूप को पुनः तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

नट — जो पात्र रस और भाव से युक्त भूतकाल की कथा को स्वाभाविक रीति से अभिनीत करते हैं, वे नट कहलाते हैं।

भरत — दूसरे के वेष, अवस्था कर्म व चेष्टाओं का भाषा, वर्ण तथा अन्य सामग्रियों के साथ अनुकरण करने वाले पात्र भरत कहलाते है।

शैलूष[1]— वर्तमान काल के लोगों के चरित्र की भूमिका निभाने वाले पात्र 'शैलूष' कहलाते है।

4— कथावस्तु के आधार पर — कथावस्तु की दृष्टि से पात्र दो प्रकार के होते हैं—

मुख्य पात्र (नायक) – धर्म, अर्थ तथा काम स्वरूप फलप्राप्ति का अधिकारी नायक होता है। उदयन, यौगन्धरायण नायक है।

सहायक पात्र — नायक की फलप्राप्ति में सहायक पात्र नायक सहायक कहलाते हैं। ये धर्म सहाय, अर्थसहाय तथा अन्तःपुर सहाय रूप में वर्णित होते

1— संस्कृत आलोचना – बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 92

हैं। ब्राह्मण, तपस्वी, मन्त्री, सैन्यपाल, कंचुकी आदि इस कोटि के पात्र हैं।

वस्तुतः रूपक में नायक नायिका उनके सहायक तथा प्रतिनायक में समसत पात्रों का समावेश हो जाता है।

(ख) नेता (नायक) संबंधी मान्यताएं तथा सामान्य गुण–

'नायक' रूपक का केन्द्रीय तत्व होता है, यह मन्तव्य एक स्वर से स्वीकृत है। इस सन्दर्भ में कतिपय मान्यताएं प्रस्तुत है–

1– रूपक के कथानक को गति प्रदान करने वाला ही नेता है इसके अनुसार नेता का तात्पर्य सूच्य तथा दृश्य सभी पात्रों से है।

2– अपने सात्विक, वाचिक, आंगिक एवं आहार्य अभिनय के द्वारा रूपक के वस्तु निहित अर्थ को सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत करने वाला ही नेता है।

3– रूपक में वर्णित समस्त पात्रों का नेतृत्व कर्ता ही नेता है।

4– रूपक के फल का अधिकारी ही नेता है। फल के अधिकारी होने का तात्पर्य नायक से है।

संस्कृत नाटक प्रधानतः श्रृंगार रस की भावभूमि में रचे गये हैं। वीर, करूण, अद्‌भुत आदि रसों के अंगीरस मानकर भी रचनाएं की गयी है। किन्तु श्रृंगारिक रचनाओं की बहुलता है। रूपक में कोई न कोई प्रधान क्रिया होती है तथा इसके फल का अधिकारी एक व्यक्ति होता है। फल का अधिकारी ही नायक होता है। वही बीज, बिन्दु, पताका आदि से संवलित रूपक को लक्ष्य तक ले जाता है। वही समस्त क्रियाओं का केन्द्र तथा अंगीरस का आलम्बन होता है। इस प्रकार वह नाट्‌यक्रिया और नाट्‌य रस की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। नायक विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोकप्रिय, पवित्र, वाक्‌पटु प्रसिद्ध वंश वाला बुद्धि–उत्साह–स्मृति–प्रज्ञा–कला तथा मान से युक्त, दृढ़ तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता तथा धार्मिक होता है।[1] नायक के इन्हीं सामान्य गुणों के आधार पर अभीष्ट कृतियों के नायकों का मूल्यांकन

1– दशरूपक डॉ0 श्री निवास शास्त्री 2 : 1

किया जाएगा।

नायक भेद — नायक रूपक का केन्द्रीय तत्व होता है। वह सम्पूर्ण कथानक का आधार स्तम्भ होता है। धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत भेद से नायक चार प्रकार के होते हैं।[1]

1— धीरललित[2] — चिन्तारहित, कलाप्रेमी, सुखी तथा कोमल स्वभाव वाला नायक धीरललित कहलाता है। जैसे रत्नावली में उदयन।

2— धीरशान्त[3]— सामान्य गुणों से युक्त द्विज आदि नायक धीरप्रशान्त कहलाता है।

3— धीरोदात्त[4]— उत्कृष्ट अन्तःकरण वाला, अत्यन्त गम्भीर क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला, स्थिर, अहंभाव को दबाकर रखने वाला दृढ़वती नायक धीरोदात्त कहलाता है।

4— धीरोद्धत[5] — जिसमें दर्प और मात्सर्य अधिक होता है, जो माया और कपट में तत्पर होता है, अहंकारी, चंचल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला है, वह धीरोद्धत नायक कहलाता है।

आचार्य धनिक के अनुसार धीरोदातत्व आदि नायक की अवस्थाएं है, जातियां नहीं। इसलिए एक ही नायक धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा धीरप्रशान्त हो सकता है।[6]

नायक की श्रृंगार रस—सम्बन्धी अवस्थाएं— जो नायक दूसरी नायिक के द्वारा हर लिया जाता है, वह पहली नायिका के प्रति दक्षिण, शठ या धृष्ठ कहलाता है।[7]

1— दशरूपक व्या0 डॉ श्री निवास शास्त्री 2 : 2
2—" " " 2 : 3
3—" " " 2 : 4
4— दशरूपक व्या0 श्री निवास शास्त्री 2 : 5
5— " " 2 : 6
6 — दशरूपक व्या0 श्री निवास शास्त्री द्वितीय प्रकाश पृष्ठ 122
7 — " " 2 : 7

दक्षिण नायक[1] –पूर्व नायिका के प्रति प्रीतियुक्त रहने वाला दक्षिण नायक है।

शठ नायक[2] – पूर्व नायिका का गुप्त रूप से अप्रिय करने वाला शठ नायक होता है।

धृष्ट नायक[3] – जिस नायक के अंगों में विकार (अन्य नायिका के प्रति किये गये प्रेम चिन्ह) स्पष्ट प्रकट होते हैं, वह धृष्ट नायक है।

अनुकूल नायक[4] – जिसकी एक ही नायिका होती है, वह अनुकूल नायक कहलाता है।

रूपकपंचक में नायकों की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति व चरित्र चित्रण –

प्रतिज्ञायौगन्धरायण का नायक – प्रतिज्ञायौगन्धरायणम का नायक 'यौगन्धरायण' है। उसके चरित्र में नायकोचित समस्त गुणों का सन्निवेश हुआ है। वह स्वामिभक्ति, साहस, प्रयुत्पन्नमतित्व, स्थिरप्रज्ञ व वाक्रपटुता के गुणों से युक्त है। अतः वह 'धीर प्रशान्त' कोटि का नायक कहा जा सकता है।

स्वप्नवासवदत्तम् का नायक – श्रृंगार की कोमल भावना पर विसृजित नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक 'उदयन' है। वह क्षमाशील, अत्यन्त गम्भीर, दृढ़वती तथा अचंचल मन वाला है। धीरता, वीरता एवं साहस से युक्त चरित्र वाले राजा उदयन की इस नाटक में नाट्यशास्त्रीय प्रकृति 'धीरोदात्त' तथा दक्षिण नायक की है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली का नायक – समान कथा व समान पात्रों वाली प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनों ही नाटिकाओं का नायक राजा 'उदयन' हैं। उदयन, वासवदत्ता के प्रेम में निबद्ध होते हुए भी कनिष्ठा

1– दशरूपक व्या0 श्री निवास शास्त्री 2 : 8
2– वही " " 2 : 9
3– वही " " 2 : 10
4– वही 2 : 11

नायिकाएं, अरण्यका व सागरिका के सौन्दर्य का लोलुप है अतः उसकी नाट्यशास्त्रीय प्रकृति 'धीरललित' है।

तापसवत्सराजचरितम् का नायक — तापसवत्सराजचरितम् नाटक का नायक 'उदयन' है। उसका अपनी पत्नी वासणदत्ता में अत्याधिक प्रेम है। वह गम्भीर, क्षमाशील तथा दृढव्रती है। वह उच्च कुल का राजर्षि तथा नायकोचित समस्त गुणों से युक्त है फलतः उसकी नाट्यशास्त्रीय प्रकृति धीरोदात्त नायक की है।

चरित्र चित्रण —

प्रतिज्ञायौगन्धराणम् में यौगन्धरायण— यौगन्धरायण नाटक का मुख्य पात्र नायक है। नाटक को सम्पूर्ण वृत्त उस पर केन्द्रित है। वह वत्सराज उदयन का प्रधान सेनापति तथा परममित्र है। धैर्य, साहस, स्वामिभक्ति, कर्तव्य परायणता, वाक्चातुर्य, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि गुणों से युक्त उसका चरित्र नाट्य साहित्य में एक आदर्श स्वरूप है।

स्वामिभक्ति, यौगन्धरायण की सबसे बड़ी विशेषता है। वह राजा के हित में सदा प्राणापण से तत्पर रहता है। उसकी इसी भावना से अभिभूत होकर ही राजा, बन्दी बनाये जाने पर समस्त मन्त्रिमण्डल को छोड़कर हंसक को सिर्फ यौगन्धरायण से ही मिलने को कहता है। यह सुनकर कि स्वामी ने कहा है यौगन्धरायण से मिलो, यौगन्धरायण विश्वास के साथ कहता है—

पुरूषान्तरितं मां द्रक्ष्यति स्वामी,
रिपुनगरे वा बन्धने वा वने वा
समुपगतविनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम्।
जितमिति कृतबुद्धिं वञ्चयित्वा नृपं तं
पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतां श्लाघनीयम्।।[1]

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् प्रथम अंक श्लोक — 14

उदयन की माता का यौगन्धरायण के प्रति विश्वास भी उसकी विश्वसनीयता का द्योतक है। वह कहती है कि–"प्रथममेव मे वत्सस्य वयस्यः पश्चादमात्य आनयतुं में पुत्रकं पुत्रक इति।"[1] वत्सराज के बन्दी हो जाने पर उनको मुक्त कराने के लिए की गयीं उसकी प्रतिज्ञाए[2], उसके साहस व स्वामिभक्ति की परिचायक है।

यौगन्धरायण कुशल राजनीतिज्ञ है। नाटक का सम्पूर्ण तृतीय अंक उसकी राजनीतिक कुशलता को प्रदर्शित करता है। उसकी इस कुशलता से महासेन भी अनुप्राणित है। तभी तो जब कञ्चुकी महासेन से निवेदन करता है कि उदयन पकड़ा गया तो महासेन उससे पूछता है कि क्या यौगन्धरायण मर गया[3] और जब कञ्चुकी कहता है कि नही। तब महासेन कहता है कि उदयन बन्दी नही बनाया गया होगा। क्योंकि महासेन वत्सराज के अमात्य यौगन्धरायण की राजीनीतिक प्रवीणता से भलीभॉति परिचित है।

प्रयुत्पन्नमतित्व व वाक्चातुर्य इसकी दूसरी प्रमुख विशेषता है। कब क्या और कैसे करना है ? इस प्रकार निर्णय में वह बहुत निपुण है। उसका वाक्चातुर्य अर्थात् हाजिर जवाबी का गुण उसके चरित्र को और उत्कृष्टता प्रदान करता है। उसकी यह वाक्चातुरी चतुर्थ अंक में भरत रोहक से उसके संवाद में स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।[4]

यौगन्धरायण अत्यधिक बुद्धिमान एवं दृढ़संकल्प वाला व्यक्तित्व है। अपनी बुद्धिमानी के कारण ही वह समस्त उज्जयिनी को गुप्तचरमय बना देता है और अन्त में अपनी योजना में सफल होता है। यौगन्धरायण अपनी योजना में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर पाता, यदि उसमें साहस का अभाव होता।

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगा सागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 37
2– (अ) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1 : 16
(ब) " " 3 : 8 – 9
3–प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय– द्वितीय अंक पृष्ठ – 57
4– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 128 से 135

वह एक वीर सैनिक है। उदयन द्वारा वासवदत्ता के अपवाहन के उपरान्त जब उज्जयिनी में घमासान युद्ध छिड़ जाता है। तब वह एक वीर योद्धा के रूप में अवतरित होता है, तथा वीरता पूर्वक युद्ध करता है। तलवार के टूट जाने पर वह बन्दी बनाया जाता है। किन्तु बनाये जाने का उसे लेशमात्र दुख नहीं है, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। वह कहता है कि शत्रु के यहाँ से वत्सराज को छुड़ाकर तलवार के टूटने पर बन्दी हुआ। मै स्वामी के कष्ट को समाप्त कर और यह समझकर कि मेरी विजय हुयी, मै राजकुल में प्रवेश कर रहा हूँ।[1] बन्दी बनाये जाने पर भी उसे असीम सन्तोष है वह कहता है–

वैरं भयं परिभवं च समं विहाय।
कृत्वा नयैश्च विनयैश्च शरैश्च कर्म।
शत्रो श्रियं च सुहृदामय शश्च हित्वा
प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः।।[2]

वस्तुतः यौगन्धरायण अपनी बुद्धि, नीति, कौशल एवं साहस से ही उदयन व वासवदत्ता को उज्जयिनी से बाहर निकालने में सफल होता है। इन चरित्रगत विशेषताओं के कारण ही यौगन्धरायण को नाट्यसाहित्य में विशेष महत्व प्राप्त है।

स्वप्नवासवदत्तम् में उदयनः – राजा उदयन वत्सदेश का राजा है। वह अत्यन्त सुन्दर है। द्वितीय अंक में पद्मावती के साथ वार्तालाप के समय वासवदत्ता उदयन को दर्शनीय[3] कहती है। उसके सौन्दर्य के संबन्ध में दासी कहती है– "शक्यं भणितुं शरचाप हीनः कामदेव इति"[4] अर्थात उदयन बिना ध नुष और बाण के कामदेव हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में राजा उदयन, एक आदर्शपति के रूप में उपस्थित होता है। उसका अपनी पत्नी वासवदत्ता पर अतिशय

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 4 : 5
2– " " 4 : 6
3– स्वप्नवासदत्तं व्या0 डॉ0 गंगा सागर राय द्वितीय अक पृष्ठ 63
4– " " तृतीय अंक पृष्ठ 75

अनुराग है, जो उसके मृत होने की स्थिति में भी कम नहीं होता। वासवदत्ता के जल मरने का वृत्तान्त सुनकर स्वयं भी उस अग्नि में कूदकर मर जाना चाहता है।[1] वासवदत्ता के वियोग में वह व्यथित है। स्थान–स्थान पर वह उसकी यदि कर आंसू बहाता है।[2] राजा उदयन की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति ध ीरललित है। वह अपने राज्य का समस्त भार मन्त्रियों पर सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है। स्वाभाव से भी वह बहुत ही सरल है।

उदयन कलाप्रेमी है। वीणावादन में उसे विशेष दक्षता प्राप्त है। उसकी इस कला की प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैल चुकी है। पद्मावती की चेटी भी इससे परिचित है, तभी तो वह पद्मावती को राजा से वीणा बजाना सीखने को कहती है।[3] उदयन ने ही वासवदत्ता को वीणा वादन सिखया था।

वत्सराज आखेट प्रेमी भी है।[4] यह बात प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के कथन से स्पष्ट होती है। राजा के शिकार खेलने चले जाने पर ही यौगन्ध ारायण को लावणक दाह का अवसर मिलता है।

राजा उदयन पत्नीव्रत का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसका चरित्र रत्नावली और प्रियदर्शिका के उदयन की भाँति नहीं है, जो नये से नये प्रेम षड़यन्त्रों में शामिल होने के लिए तैयार रहते हैं। उसका पत्नी–प्रेम स्थायी उदात्त तथा अमर धर्मा है। उसके प्रेम की उदात्ता का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी कहता है–

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा।।[1]

1– स्वप्नवासदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 40
2– (अ) स्वप्नवासदत्तम् " " 4 : 6
(ब) " " 5 : 1
3– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 93
4– " " प्रथम अंक पृष्ठ 38

मगध की राजकुमारी पद्मावती से उसका विवाह राजनैतिक लाभ के निमित्त हो जाता है। पद्मावती रूप, शील, गुण, माधुर्य से युक्त है। तथापि उसका हृदय वासवदत्ता को विस्मरित करने को रंचमात्र भी तैयार नहीं होता।[2] वह पद्मावती से भी प्रेम करता है, इसी कारण वह पद्मावती से पर यह भाव व्यक्त नहीं होने देना चाहता कि वह अब भी वासवदत्ता की स्मृति में व्याकुल है। तभी तो वासवदत्ता के सन्दर्भ में विदूषक से बातें करते समय जब उसे वासवदत्ता की याद आ जाती है तथा आँखो में आँसू उमड़ आते हैं। इस पर वास्तविक भाव छिपाते हुए पद्मावती से कहता है–

शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।

काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम।।[3] उदयन गुरूजनों का आद करने वाला है। वह वासवदत्ता की रक्षा कर पाने में अपने को असमर्थ मानकर महासेन द्वारा भेजे गये कञ्चुकी से कहता है कि जिस प्रकार सदाचार विरूद्ध कार्य करने वाला पुत्र कुपित हुये अपने पिता से डरता है, उसी प्रकार मै महासेन से भयभीत हो रहा हूँ।

"किं वक्ष्यतीति हृदयं ....पितुर्जनितरोष इवस्मि भीतः"[4] महासेन के संदेशवाहक कञ्चुकी व धात्री के दरबार में आने पर उसका आसन से खड़े हो जाना उसकी विनम्रता का पोषक है। उदयन के निश्चिन्त स्वभाव के कारण ही उसके राज्य का बहुत बड़ा भाग्य छिन गया, तथापि उसमें शौर्य का सर्वथा अभाव नही है। जब राजा दर्शक का कञ्चुकी आकर खबर देता है कि अमात्य रूमण्वान ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया तथा मगध की सेना भी आपकी सहायता के लिए तैयार है। तो वह झट से उत्साहित होकर कहता है–

उपेत्यनागेन्द्र तुरंगतीर्णे तमारूणिं दारूणकर्म दक्षम्।

1– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 13

2– " " 4 : 4

3– " " 4 : 7

4– " " 6 : 4

विर्कीणवार्णोग्रत रंगभंगे महार्णवाभे युधि नारायामि।[1]

रूप, शील, प्रीति व शौर्यादि गुणों के होते हुए भी राजा उदयन में धैर्य की कमी (दिखायी देती है। उच्च कोटि के राजाओं में जो गम्भीरता व चिन्तनशीलता का भाव होना चाहिए, वह इसमें कम ही दिखायी देती षष्ठ अंक में अवन्तिका को देखकर धायी के यह कहते ही कि यह वासवदत्ता है, राजा उछल पड़ता है। औरउसे तुरन्त अन्तःपुर ले जाने का आदेश दे देता है।[2] यौगन्धरायण के विरोध करने पर भी वह अपनी बात पर दृढ़ रहता है। बिना छानबीन के अवन्तिका को वासवदत्ता मान लेने का राजा का यह व्यवहार प्रेमी की दृष्टि से भले ही स्वाभाविक हो, परन्तु एक आदर्श राजा के लिए यह किसी भी प्रकार से स्तुत्य नहीं है।

निष्ककर्षतः कहा जा सकता है कि वत्सराज उदयन एक आदर्श पति, उत्कृष्ट प्रेमी, कलानुरागी धीरललित व सचिवायतासिद्धि नायक है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली में उदयन — प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनों ही नाटिकाओं का नायक राजा उदयन धीरललित कोटि का नायक है। उसका चरित्र मनोरम है— 'लोक हरि च वत्सराज चरित्रम'।[3] वह अतिशय रूपवान है जिसे देखकर सागरिका संदेह कामदेव समझती है।[4] और उस पर अनुरक्त हो जाती है। उदयन का अपनी पत्नी वासनवदत्ता का असीम प्रेम है। वासवदत्ता के सन्दर्भ में कही गयी उसकी भावप्रवण उक्तियाँ[5] इसकी पुष्टि करती है। यद्यपि वह अरण्यका व सागरिका पर अनुरक्त है, औरउनकी प्राप्ति की कामना करता है, तथापि वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम कहीं भी कम

1— स्वप्नवासवदत्तम् 5 : 13

2— 'राजा—कथम महासेन पुत्री? देवि ! प्रविश त्वमश्यन्तरम पद्मावत्या सह'
स्वप्नवासदत्तम् व्या.0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 206

3— रत्नावली 1 : 5

4— 'सागरिका —कथं प्रत्यक्ष एवं भगवान्कुसुमायुध इह पूजां प्रतीच्छति।'
रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 48

5— रत्नावली 1 : 20 ,21 , 22

नहीं होने पाता। सागरिका—उदयन समागम के समय वासवदत्ता अचानक आकर क्रोधित हो जाती है। तब उदयन रानी से क्षमा याचना करता है।[1] इसके बाद भी वासवदत्ता प्रसन्न नहीं होती, तब भी वह वासवदत्ता के प्रति उदासीन नहीं होता। वह देवी के प्रसादोपरान्त ही प्रिया का समागम सम्भव मानता है।[2]

राजा एक उदारप्रेमी है। उसके हृदय में प्रेम का अथाह सागर है। उसका प्रेम प्रिया अथवा पत्नी के लिए कहीं भी न्यून भी होने पाया। उसे अपनी प्रेमिका के विषय में सदा ध्यान रहता है कि, कौनसे व्यापार से उसकी क्या मनोदशा होगी? उद्यानलता पर दृष्टि डालते समय भी उसके मन में अपनी प्रियतमा की ही बात याद आती है।[3] उदयन सौन्दर्य का उपासक है। रत्नावली में वह सागरिका तथा प्रियदर्शिका में अरण्यका के सौन्दर्य पर अत्यन्त आसक्त है। अरण्यका के प्रति राजा का यह कथन कि 'सुगन्धि से लुभायें गये ये भ्रमर तुम्हारे मुख कमल पर आ रहे हैं,'[4] तथा वासवदत्ता से यह कहना कि तुम्हारे मुखारविन्द से तिरस्कृत कमल सहसा कान्तिहीन होते जा रहे हैं,[5] उसकी सौन्दर्य प्रियता के बोधक है।

उदयन न सिर्फ सौन्दर्य लोलुप है अपितु ,वह साहसी वीर तथा वीरों की प्रशंसा करने वाला है। प्रियदर्शिका में शुत्र विन्ध्यकेतु की प्रशंसा करते हुए कहता है— 'साधु विन्ध्यकेतो साधु साधु।'[6] राजा का उदयन वीणावादन में निपुण है। उसने बन्धना अवस्था में वासवदत्ता को वीणावादन की विद्या दी थी। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में उदयन वासवदत्ता सम्बन्धी खेले गये नाटक से यह ज्ञात होता है— वद्धेनार्य पुत्रेणाहं वीणां शिक्षिता'[1] वीणावादन के

1— रत्नावली 3 : 14
2— रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री तृतीय अंक पृष्ठ 163
3— 'उद्दामोत्कलिकां........ करिष्याम्यहम्।' रत्नावली 2 : 4
4— प्रियदर्शिका 2 : 8
5— देवि त्वन्मुखपड.कजेन ......सन्जातलज्जा इव । रत्नावली 1 : 25
6— प्रियदर्शिका " " प्रथम अंक पृष्ठ 14

साथ–साथ वह अन्य अद्भुत विद्याओं का भी ज्ञाता है। रत्नावली में उसी नवमलिका के असमय पुष्पोंद्भव[2] की विद्या, तथा प्रियदर्शिका में पाताल लोक से सीखी गयी विषनिवारण[3] की विद्या का उल्लेख मिलता है।

उदयन एक विलासप्रिय राजा है। इस दृष्टि से रत्नावली की अपेक्षा प्रियदर्शिका में उसका चरित्र अधिक स्तुत्य है। रत्नावली में उदयन की विलासिता का वर्णन प्रथम अंक के मदन महोत्सव से ही प्रारम्भ हो जाता है किन्तु प्रियदर्शिका का प्रारम्भ वीर रस की उदात्त भाव भूमि पर होता है। इसके अतिरिक्त रत्नावली में उदयन को विरह दशा का चित्रण सामजिकों के समक्ष होता है जबकि प्रियदर्शिका में उदयन की कामपीड़ा का वर्णन विदूषक के कथनों से होता है। रत्नावली व प्रियदर्शिका दोनों में ही उदयन को प्रिया समागम के प्रति तीव्र उत्कण्ठा है, किन्तु प्रियदर्शिका में वह कुछ संयमित रूप से सामाजिकों के समक्ष आती है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रियदिर्शिका का उदयन विलासिता से सर्वथा शून्य है।

उदयन में धन व अधिकार का मद नहीं है। वह स्वभाव से अत्यन्त सरल है। उसका अपने साधारण परिजनों से भी सहानुभूतिपूर्ण व प्रेममय व्यवहार है। सुसंगता के साथ उसका सौहार्दपूर्ण वार्तालाप उसकी सहजता एवं सरलता को व्यक्त करता है।

तापसवत्सराजचरितम् में उदयन :– उदयन तापसवत्सराजचरितम् का नायक है। वह अपनी प्रेयसी पत्नी वासवदतता से असीम प्रेम करता है। आदर्श प्रेमीत्व व आदर्श पतित्व उसका सर्वोत्तम गुण है। उसके लिए उसकी प्रेमिका का जीवन व प्रेम ही सब कुछ है। इसकी वेदी पर वह अपना जीवन व सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर हो जाता है। वासवदत्ता का दाह विषयक

1– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 63
2– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर द्वितीय अंक पृष्ठ 73
3– प्रियदर्शिका व्या0 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 98

समाचार सुनकर वह भाव विह्वल होकर विलाप करता है। उसका यह विलाप उसे आदर्श प्रेमियों की कोटि में उत्कृष्ट स्थान प्रदान करता है।

प्रिये वासवदत्ते–

दृष्टिर्नामृतवार्षिणी स्मितमधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं
स्नेहार्द्र ह्रदयं न चन्दनरसस्पर्शानि चाङ्गानि वा।
कस्मिंल्लब्धपदेन किं कृतमिदं क्रूरेण दग्धाग्निना
नूनं वज्रमयोऽन्य एव दहनस्तस्येदमाचेष्टितम्।।[1]

तृतीय अंक में भी वह इसी भाव से करूण विलाप करता है।[2] वस्तुतः वह नाटक में आदि से अन्त तक वासवदत्ता की स्मृति में आंसू बहाते दिखाई देता है। वह एक सच्चे प्रेमी की भाँति किसी और स्त्री से विवाह की कल्पना तक नहीं करता। मन्त्रियों द्वारा यह बतायें जाने पर ही कि पद्मावती से विवाह के उपरान्त वासवदत्ता पुनः प्राप्त हो जाएगी, वह पद्मावती के साथ विवाह को तैयार होता है, किन्तु इसको वह महापातक के समान समझता है–

चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत्क्वचिन्निर्वृतं
येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षस्थली कल्पिता।
येनोवतासि विना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते
सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमें कर्तुं किमप्युद्यतः।।[3]

नाटक में उदयन का प्रेम पत्नी के प्रति एकनिष्ठ है। वह उसके प्रेम में अन्धा सा हो जाता है। तभी तो वह पद्मावती के प्रेम भक्ति व त्याग को देखते हुए भी, उसे अपना प्रेम नहीं दे पाता। विवाह के पश्चात भी पद्मावती की उपेक्षा करते हुए उसे तनिक भी यह एहसास नहीं होता कि उसके पास भी एक स्पन्दन शील ह्रदय है, और वह भी प्रेम के प्रतिदान की इच्छा करता होगा। वासवदत्ता के प्रेम में भले ही वह आकण्ठ डूबा हो लेकिन

1– तापसवत्सराजचरितम् 2 : 9
2– तापसवत्सराजचरितम् 3 : 12
3– तापसवत्सराजचरितम् 4 : 13

पद्मावती की प्रीति के प्रति तो वह निर्दय ही बना रहता है। उसकी कठोरता का इससे ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि वह नवोढ़ा पद्मावती की अनदेखी करके वासवदत्ता के लिए प्राणोत्सर्ग[1] को तैयार हो जाता है। वासवदत्ता के प्रति उसके प्रणय की उदारता तो स्तुत्य है परन्तु पद्मावती के प्रति उसकी निष्ठुरता निन्दनीय है। इस सन्दर्भ में भास का उदयन अधिक प्रशंसनीय हैं यद्यपि उसका प्रेम वासदत्ता के प्रति अत्याधिक सान्द्र है तथापि वह पद्मावती के ह्रदय को ठेस नहीं पहुँचाता। यहां तक कि वासवदत्ता के स्मरण आने के भाव को भी वह पद्मावती से छुपाता है।[2] पद्मावती को अपने साथ आसन पर बैठाना उसका दाक्षिण्य ही है।

राजा उदयन वासवदत्ता जैसी यौवनसम्पन्ना लावण्यमयी प्रेमिका को पत्नी रूप में प्राप्त कर वह अत्यधिक विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने के साथ–साथ राजकाज की उपेक्षा करने लगा। इसी अवसर का लाभ उठाकर पाञ्चाल नरेश आरूणि ने वत्सदेश के बहुत बड़े भू भाग को अधिकृत कर लिया। यौगन्धरायण बताता है।

कौशाम्बी परिभूय नः कृपणकैर्विद्वेषिभिः स्वीकृताम्।
जनास्येंव तथा प्रमादपरतांपत्युर्नय द्वेषिणः।।[3]

स्पष्ट है कि उसमें राजनुकूल धैर्य, वीरता व दूरदर्शिता का अभाव है। प्रजापालन की अपेक्षा उसे अपने भोगविलास का अधिक ध्यान था।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तापसवत्सराजचरितम के उदयन में राजोचित गुणों का सर्वथा अभाव है। राज–काज के प्रति वह निष्क्रिय तथा भोगविलास में निरत है। हां उसका आदर्शपतित्व का गुण अधिक स्तुत्य है, जो उसे उत्तररामचरितम के राम तथा रघुंवंश के अज के समकक्ष खड़ा कर देता है।

नायक के सहायक – नायक को फलप्राप्ति अनेक सहायकों के

1– स्वप्नवासवदत्तम् षष्ठ अंक पृष्ठ 209
2– स्वप्नवासदत्तम् 4 : 9
3– तापसवत्सराजचरितम् 1 : 7

माध्यम से होती है। श्रृंगारी नायकों के सहायकों को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है–

1– श्रृंगार सहायक[1] – विट, चेट, विदूंषक आदि नायक के श्रृंगारी सहायक है। ये सहायक स्वामिभक्त, नर्म निपुण व सच्चरित्र होने के साथ–साथ नायिका को मनाने में निपुण हुआ करते है।

विट [2]– जो वैषयिक सुखभोग में अपनी सम्पत्ति लुटा चुका हो, धूर्त हो, कतिपय, कलाओं मे निपुण हो, वेशोपचारचतुर हो, बातचीत में कुशल हो, स्वभाव का मधुर हो तथ जिसकी गोष्ठी में बड़ी पूछ हो वह विट कहलाता है।

चेट [3]– चेट के सन्दर्भ में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

> कलहप्रियो बहुकथो विरूपो गन्धसेवकः।
> मान्यामान्य विशेषज्ञश्चेटोऽप्येवं विधः स्मृतः।।

विदूषक[4]– विदूषक वह हुआ करता है जिसका नाम किसी फूल अथवा वसन्त आदि ऋतुओं के नाम पर रखा जाता है, जिसमें अपने कर्म शरीर, वेशभूषा या बोलचाल के ढंग से औरों को हंसाने की क्षमता रहा करती है। जिसे दूसरों के झगड़ने में आनन्द मिला करता है और जो अपने विदूषण कार्य में निपुण हुआ करता है।

2– अर्थसहायक[5] – मन्त्री नायक के अर्थचिन्तन में सहायक हुआ करते हैं।

3– अन्तःपुर सहायक[6] – अन्तःपुर सहायकों में वामन, जनखे, किरात, आभीर, शकार, कुब्ज आदि आते हैं। जो नायक के कामसहायक होते है। जैसे रत्नावली में जनखे बौने, कुबड़े आदि का चित्रण हुआ है। इनमें से शकारवह

1– साहित्यदर्पण व्या डॉ0 सत्यव्रत सिंह तृतीय परिच्छेद सूत्र – 40
2– साहित्यदर्पण " तृतीय परिच्छेद सू0 – 41
3– साहित्यदर्पण व्याव डॉ0 सत्यव्रत सिंह पृष्ठ सख्या 147 से उद्धृत
4– साहित्यदर्पण " तृतीय परिच्छेद सू0 42
5– साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह तृतीय परिच्छेद पृष्ठ 147
6– साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेद सू0 43 से 44

है जो मद्यप, मूर्ख अहंकारी, नीच तथा धन सम्पन्न हो और राजा की अनूठा प्रेमिका का भाई हो जिसे लोग श्यालक कहकर पुकारते हो।

दण्ड सहायक[1] – मित्र, राजकुमार, आटविक सामन्त, सैनिक आदि नायक के दण्ड सहायक होते हैं।

5– धर्म सहायक[2]– याज्ञिक, पुरोहित वेदवित और तपस्वी जन नायक के धर्मसहायक होते हैं।

उपर्युक्त नायक सहायकों को उत्तम, मध्यम और अधम, तीन कोटि में रखा जाता है।[3] जिनमें से उत्तम सहायक वे है जो पीठमर्द कहलाते हैं। इनमें मन्त्री, पुरोहित आदि का ग्रहण होता है। मध्यम कोटि में विट व विदूषक का स्थान है तथा अधम कोटि में शंकार चेट का ग्रहण होता है। इन सहायकों के अतिरिक्त कुछ अन्य सहायको का भी उल्लेख किया जा सकता है–

दूत – दूत उसे कहते हैं जिसे विविध कार्यो के लिए जहाँ तहाँ भेजा जाया करता है। ये निसृष्टार्थ, मितार्थ तथा संदेशहारक भेद से तीन प्रकार के होते है।

पताका नायक [4]– पताका नायक की पीठमर्द कहलाता है। वह चतुर होता है तथा प्रधान नायक का अनुचर व भक्त होता है और उसके गुणों से कुछ न्यून गुणवाला होता है। जैसे प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कृतकहस्तियोग कथा का नायक प्रद्योत है।

प्रकरी नायक – पताका नायक की भाँति ही प्रकरी नायक भी उच्चकोटि का पात्र होता है। यह निःस्वार्थ भाव से नायक की सहायता करता है।

प्रतिनायक [1]– नायक की फलप्राप्ति में विघ्न डालने वाला प्रतिनायक

1– साहित्यदर्पण — तृतीय परिच्छेद पृष्ठ 150
2– सहित्यदर्पण — तृतीय परिच्छेद सू0 45
3– सहित्यदर्पण — व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह तृतीय परिच्छेद पृष्ठ 150
4– दशरूपक — व्या0 श्री निवास शास्त्री द्वितीय प्रकाश सूत्र 12

कहलाता है। यह लोभी, धीरोद्धत, कठोर, पापी व्यसनी तथा प्रधान नायक का शत्रु होता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन का चरित्र आंशिक रूप से प्रति नायकत्व का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में नायक के सहायक-

रूमण्वानः— नाटक का नायक यौगन्धरायण है। उदयन मुक्ति रूपी फल प्राप्ति में उसकी सहायता करने वालो में रूमण्वान् प्रमुख स्थान रखता है। रूमण्वान वत्सराज उदयन का मंत्री तथा सुख–दुख में सदा साथ निभाने वाला है। वह राजा के साथ वन भी गया था। उसमें अत्यन्त प्रतिभा व बुद्धि कौशल की सम्पन्नता है। यौगन्धरायण को हसंक जब उदयन के बन्दी बनाये जाने की सूचना देता है, तो उसे विश्वास नहीं होता कि रूमण्वान् के होते हुए भी राजा बन्दी बना लिये गये। वह पूछता है कि ''इदानीमनुत्पन्नकार्य पण्डितो रूमण्वान् क्वगतः।''[2] अर्थात् अवसर से पूर्व ही बुद्धिमानी से काम करने वाले रूमण्वान् कहाँ थे। दूरदर्शिता उसका महान गुण है। नीलवलाहक हस्ति की सूचना पाकर वत्स राज उदयन हाथी को वश में करने के लिए जब अकेले ही जाना चाहते है, तो वह इस सन्दर्भ में आशंकित होकर राजा को अकेले जाने से रोकता है।[3] यौगन्धरायण उसकी इस प्रकार की सलाह को उत्कृष्ट प्रकार की स्वामिभक्ति कहता है— 'एवमप्यवक्तव्यां स्वामिभक्तिमिच्छामिं।[4] रूमण्वान् स्वामिभक्त मंत्री है। उदयन के प्रति उसमें असीम निष्ठा है। बन्धन में पड़े वत्सराज को मुक्त कराने की योजना के सन्दर्भ में यौगन्धरायण उससे गुप्त मंत्रणा करता है। वह श्रमणक के वेष में उदयन की मुक्ति हेतु यौगन्धरायण द्वारा सौपें गये उत्तरदायित्व का भलीभाँति निर्वहन करता है। बुद्धिमता स्वामिभक्ति कर्तव्यपराणता उसके रिच की प्रमुख विशेषताएँ है।

बसन्तक (विदूषक) :— वसन्तक राजा उदयन का हितैषी मित्र व सेवक

1— दशरूपक द्वितीय प्रकाश सू0 – 14

2— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् – व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 13

3— '' '' '' '' प्रथम अंक पृष्ठ 18

4— ' '' '' '' प्रथम अंक पृष्ठ 19

है। वह सदा उदयन के हित में संलग्न रहता है। उज्जयिनी में वेष विपर्यय कर उदयन मुक्ति की योजना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बन्दी उदयन तथा यौगनधरायण के मध्य वह संवाद की कड़ी का काम करता है। बन्दी उदयन से मिलकर वह यौगन्धरायण के कूटनीतिक योजना के आधार पर मुक्त होने की बात कहता है। इसी प्रकार वह उदयन की वासवदत्ता विषयक अनुरक्ति तथा उसे साथ ले जाने की इच्छा के बारे में भी यैगन्धरायण से बताया है।[1] वह ही वासवदत्ता सहित उदयन को मुक्त कराने का परामर्श देता है,[2] जिसके परिणामस्वरूप ही यौगन्धरायण दूसरी प्रतिज्ञा करता है। तृतीय अंक के मोदक के प्रसंग में उसका द्वयर्थक संवाद सामाजिकों को हास्यस्मिति का बोध कराता है। यद्यपि, अन्य रूपको की अपेक्षा इस नाटक का कथानक शास्त्र सम्मत विदूषक के चरित्र को विकसित होने का अत्यधिक अवसर नहीं देता तथापि यह पात्र नाटक के लिए किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

महासेन :— महासेन प्रद्योत उज्जयिनी का शक्तिशाली और प्रतापी राजा है। सेना की विशालता के कारण ही इसे महासेन कहा जाता है। वत्सराज उदयन महासेन का आधिपत्य स्वीकार नहीं करता, इस कारण उसमें रोष है। फिर भी वह महासेन के गुणो से प्रभावित है। इसकी चर्चा वे रानी अंगारवती से करते हैं।

महासेन दयालु पराक्रमी तथा पराक्रम का सम्मान करने वाले राजा के रूप में चित्रित हुए हैं। जब उसका शत्रु उदयन बन्दी बनाकर लाया जाता है तो वह उसे प्रताड़ित करने के बजाय, उसके धावों की चिकित्सा करने को क्रियतामस्य व्रणप्रतिकर्मेति[3] कहते हैं। साथ ही उसे प्रिय सभी सुविधाएं देने को कहते हैं।[1] शत्रु की पीड़ा से पीड़ित होना महासेन के चरित्र की विशेषता

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 गंगासागरराय— तृतीय अंक पृष्ठ 96
2— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् " " " पृष्ठ 101
3— " " " द्वितीय अंक पृष्ठ 66

है। उदयन के बन्दी बनाये जाने पर उसकी स्थिति पर विचार करते हुए सोचता हैं–

पूर्व तावद वैरमस्यावलेपा –
दानीतेऽस्मिन् स्यात् तु मध्यस्थता में।
युद्ध क्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं
श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि।।[2]

महासेन एक आदर्शपति की भॉति पत्नी–परायण हैं। वह अपनी पुत्री वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में अपनी पत्नी अंगारवती से परामर्श लेते हैं। वे पुत्री के विवाह के निर्णय में पत्नी को बराबर का अधिकार देते हैं। मां के ह्रदय की भावना को वे भलीभॉति महसूस करते हैं। उनके इस कथन में कितना वात्सल्य भाव है–

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्म स्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिता खलु मातरः।।[3]

एक आदर्श पिता की भॉति उन्हें भी अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता है पुत्री के लिए सुयोग्य वर के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि

कुलं तावच्छ्लाघ्य प्रथममभिकांक्षे हि मनसा,
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्तिं न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः।।[4]

अर्थात् सर्वप्रथम तो मै वर का उत्तम प्रशंसित कुल चाहता हूँ। इसके पश्चात् चाहता हूँ कि वह दयावान हो, क्योंकि यह गुण मृदु होते हुए भी श्रेष्ठ है। तदन्तर वर के रूप में कान्ति और सौदर्य चाहता हूँ, ऐसा केवल

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 67
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायमण् 2 : 14
3– " " 2 : 7
4– " " 2 : 4

गुण के कारण ही नहीं चाहता किन्तु स्त्रियाँ भी ऐसा चाहती है कि उन्हें सुन्दर वर मिले इसलिए उनका भी भय है। इसके बाद पराक्रम शील वर चाहता हूँ क्योंकि पराक्रम के द्वारा ही स्त्रियाँ सुरक्षित रखी जा सकती हैं।

परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित कर लेना महासेन का उत्तम गुण है। उदयन द्वारा वासवदत्ता के अपहरण के फलस्वरूप रानी अंगारवती दुःखी हो जाती है, और महल से कूदकर प्राण त्याग देना चाहती है। उस समय महासेन परिस्थितियों से तालमेल बैठाकर रानी से कहता है कि तुम्हारी पुत्री वासवदत्ता का विवाह क्षात्र के धर्म अनुकूल हुआ है। और चित्रफलक के सहारे उदयन और वासवदत्ता दोनों का विवाह करा देता है।[1]

महासेन नीति चतुष्टय में भी प्रवीण है। तभी तो वह उदयन को कृतक हस्ति योजना में छल द्वारा बन्दी बनवाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वीरता, दयालुता व सहजता का संवलित रूप महासेन है।

भरतरोहक :— भरतरोहक महासेन का प्रधानमंत्री हैं। वह वत्सराज को बंदी बनाने में अपने स्वामी की पूर्ण सहायता करता है। अमात्य सम्मत समस्त गुणों का उसमें सन्निवेश है। उदयन द्वारा वासवदत्ता के अपहरण के फलस्वरूप उसमें क्रोध एवं आक्रोश है। इसी परिप्रेक्ष्य में वह यौगन्धरायण से मिलने जाता है। यहीं पर उसका यौगन्धरायण से वाक्‌युद्ध होता है।[2] जिसमें यौगन्धरायण सतर्क अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करता है। भरतरोहक चतुर, बुद्धिमान साहसी व राजनीतिक प्रतिभा सम्पन्न अमात्य है। कृतकहस्तियोजना उसी के बुद्धि की निष्पत्ति है जिसके फलस्वरूप उदयन को बन्दी बनाया जा सका।

भरत रोहक का अवतरण नाटक के चतुर्थ अंक के थोड़े से अंश के लिए होता है किन्तु यह पात्र कथा वस्तु के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1– प्रतिज्ञायौग्न्धराणम व्या0 डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 138
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायण चतुर्थ अंक पृष्ठ 128 से 135

यौगन्धरायण के चरित्र को उभारने में भरतरोहक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हंसक — हंसक वत्सराज उदयन के सदा साथ रहने वाला सेवक है। कथानक के विकास की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि रंगमंच पर प्रदर्शन हेतु वर्जित घटनाओं की इसके माध्यम से ही सूचना दी जाती है। हंसक राजा उदयन के नागवन प्रस्थान[1], प्रद्योत के सैनिकों के साथ युद्ध तथा उदयन के बन्दी बनाये जाने की घटना का बड़े मार्मिक ढंग से वर्णन करता है। उसका वर्णन सामाजिकों को साक्षात अनुभूति कराने में सफल होता हैं। स्पष्ट है कि कथानक को गति प्रदान करने में हंसक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शालड्.कायन — शालड्.कायन प्रद्योत का मंत्री है। यह नाटक में प्रत्यक्ष कहीं नहीं दिखाई देता है। इसका उल्लेख, हंसक यौगन्धरायण से उदयन के बन्दी बनाये जाने के वृत्तान्त के परिप्रेक्ष्य में करता है। शालड्.कायन का उललेख अतिसंक्षिप्त अंश में हुआ है। फिर भी यह कथानक के लिए बहुत महत्वपूर्ण पात्र है। हंसक द्वारा किये गये वर्णन में शालड्.कायन के मन की अनेक चारित्रिक विशेषताएं दृष्टिगत होती है। वह अत्यन्त उदारमना है। उदयन के मूर्च्छित हो जाने पर राजा प्रद्योत के सैनिक उसे मार डालना चाहते हैं, तो वह उसकी रक्षा करता है– 'मा खलु मा खलु साहसमिति'।[2] शालड्.कायन विनम्र तथा दयालु है। वह घायल उदयन के साथ शत्रुवत बर्ताव न करके सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करता है। घायल उदयन को वह प्रणाम करके उसके बन्धन खोल देता है। तथा शिविका में बैठाकर उज्जयिनी ले जाता है।[3] उसके इन कृत्यों में अभिभूत होकर ही यौगन्धरायण उसे सज्जन कहता है।[4] शालड्.कायन ही हंसक को राजा उदयन के बन्दी बनाये जाने के वृत्तान्त से

1– प्रतिज्ञायौग्न्धरायणम – व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 12
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 27
3– " " " पृष्ठ 28
4– " " " पृष्ठ 28

कौशाम्बी को अवगत कराने को कहता है।[1] वस्तुतः मंच पर प्रत्यक्ष उपस्थित न होते हुए भी यह कथानक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रथम अंक में सूचित यह पात्र कथानक को गति प्रदान करता है। यौगन्धरायण की फलसिद्धि में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सहायक पात्र है।

ब्राह्मण — यह यौगन्धरायण का मित्र है जो उन्मत्त वेषधारी द्वैपायन व्यास द्वारा छोड़े गये एक विशेष प्रकार के वस्त्र की सूचना देता है।[2] इस वस्त्र को धारण करने वाला व्यक्ति तिरोभूत हो जाता है। यौगन्धरायण उन वस्त्रों को धारण कर उन्मत्तक के वेश में उज्जयिनी में प्रविष्ट होता है, और अपनी योजना को क्रियान्वित करता है। इस प्रकार यौगन्धरायण की प्रतिज्ञापूर्ति में अत्यन्त सहायक उन वस्त्रों की सूचना देने के कारण ब्राह्मण महत्वपूर्ण सहायक पात्र है।

स्वप्नवासवदत्तम् में नायक के सहायक पात्र :—

स्वप्नवासवदत्तम् का नायक उदयन है। उसकी फलसिद्धि में अनेक सहायक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत है—

यौगन्धरायण — यौगन्धरायण, वत्सराज उदयन का प्रधानमंत्री है तथा राजा के हित के लिए सतत् चिन्तित व प्रयत्नशील रहता है। कर्तव्य निष्ठा की वह दैदीप्यमान मूर्ति है। वह केवल राजा की हाँ में हाँ मिलाने वाला नहीं बल्कि राजा हितों के निमित्त वासवदत्ता को उससे विलग करने जैसा दुस्साहसिक कार्य भी करता है। षष्ठ अंक में रजा के यह पूछने पर तुमने वासवदत्ता को हमसे वियुक्त क्यों किया वह कहता है। 'कौशाम्बी मात्रं परिपालयामिति''।[3]

वत्सदेश का बहुत बड़े भाग पर आरूणि ने अधिकार कर लिया

---

1 — प्रतिज्ञायौगन्धरायण	व्या0 डॉ0 गंगासागर राय	प्रथम अंक	पृष्ठ 33
2— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम —	व्या0 डॉ0 गंगासागर राय	प्रथम अंक	पृष्ठ 39 से 40
3— स्वप्नवासवदत्तम्	व्या0 डॉ0 गंगासागर राय	षष्ठ अंक	पृष्ठ 212

है, परन्तु उदयन को इसकी रंचमात्र भी परवाह नहीं है। लेकिन स्वामिभक्त यौगन्धरायण को इसकी चिन्ता है तथा वह खोये राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए प्राणापण से प्रयत्न करता है। अपने बुद्धिकौशल से वह आरूणि को परास्त कर खोया राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है।

आरूणि पर विजय पाने के लिए आवश्यक था कि महाशक्तिशाली मगधेश्वर की सहायता प्राप्त हो, उसके लिए वह पद्मावती के साथ उदयन के विवाह का आयोजन करता है। इससे पहिले वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार फैलाकर राजा की रक्षा के लिए रूमण्वान् को नियुक्ति करता है तथा स्वयं वासवदत्ता को लेकर कपटवेष में पद्मावती के पास न्यास रूप में रखता है कि ताकि वासवदत्ता को व्यक्तिगत सुखों से वंचित न होना पड़े, साथ ही साथ समय पर आवश्यकता हो तो उदयन के संतोष के लिए वासवदत्ता की चरित्रशुद्धि के विषय में उसे साक्षिणी बनाया जा सके।[1]

राजा का इतना अधिक हितैषी तथा उपकार करने वाला होते हुए भी यौगन्धरायण के मन में अहंकार या अनुचित घृष्टता लेशमात्र भी नही है। वह विनम्रता की सजीव मूर्ति सा प्रतीत होता है। अपने प्रयत्न में पूर्ण सफल होने पर भी वह राजा से छिपाकर अपनी इच्छा से वासदत्ता को उससे वियुक्त करने के कारण षष्ठ अंक में राजा के सामने जाने से हिचकिचाता है। वह „सोचता है–

प्रच्छाद्य राजमहिषी नृपतेर्हितार्थं।
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितं मे।[2]

राजा द्वारा पहिचाने जाने पर वह उससे क्षमा मांगते हुए चरणों

1– स्वप्नवासवदत्तम् व्या० डॉ० गगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 30
2– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 15

पर गिर पड़ता है– स्वामिन् देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम्। तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी (इतिपादयो पतति)[1]

यौगन्धरायण सहनशील व व्यावहारिक ज्ञान का ज्ञाता है। प्रथम अंक में राजपुरूषों द्वारा उत्साहित किये जाने पर भी वह उद्विग्न नहीं होता वह वासवदत्ता से कहता हैं– 'भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवघुयन्ते।'[2] यह कथन उसके व्यावहारिक ज्ञान की अभिव्यक्ति करता है। यौगन्धरायण केवल भावुकता में बहने वाला व्यक्ति नहीं है। वह विचारशील पुरूष है। वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सबके कार्यो ओर उक्तियों को समझता है। और मन में उनकी आलोचना समालोचना करता है।[3] वह निर्भीक वक्ता है। प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के तपोवन में आने पर वह निर्भीकरूप से विभिन्न बातें करता है।

विशालहृदय यौगन्धरायण दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करता। ब्रह्मचारी से यह ज्ञात होने पर कि अमात्य रूमण्वान् वासवदत्ता के वियोग से दुःखी राजा को संभालने में सतत् प्रयत्नशील है तो वह मुक्त कण्ठ से रूमण्वान् की प्रशंसा करता है।[4] उसका यह उसके उदात्त चरित्र की प्रमुख विशेषता है। यौगन्धरायण भाग्य पर विश्वास करने वाला आशावादी व्यक्ति है। उसके विचार में दुःख के बाद सुख अवश्य आता है–

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।[5]

यौगन्धरायण विनोद प्रिय भी है। नाटक के अन्त में वह राजा के समक्ष ब्राह्मण वेष में ही जाता है। वहाँ पर अपनी बहिन को मांगता है। धात्री द्वारा वासवदत्ताके अभिज्ञान के पश्चात जब राजा उसे महल में जाने को

1– 'स्वप्नवासवदत्तम् व्य0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 209'
2 – " " " प्रथम अंक पृष्ठ 8
3– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 3
4– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 15
5– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 4

कहता है। तो वह उसका विरोध करते हुए कहता है– 'न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्। मम भगिनी खल्वेषा।'[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्मठता, कूटनीतिज्ञता, राजभक्ति, स्वामिभक्त व विश्वासनीयता के गुणों से सम्पन्न यौगन्धरायण एक आदर्श मन्त्री है।

रूमण्वान– रूमण्वान, नाटक में मंच पर प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होता। इसकी चारित्रिक विशेषताओं का परिज्ञान अन्य पात्रों के माध्यम से कराया जाता है। वह अत्यन्त विश्वसनीय तथा बुद्धिमान मंत्री है। आरूणि को परास्त करने की योजना के संबन्ध में यौगन्धरायण रूमण्वान से मंत्रणा करता है। वह यौगन्धरायण का अत्यन्त विश्वासपात्र है। इसीलिए यौगन्धरायण उसे राजा उदयन की देखभाल के लिए नियुक्त करता है।

रूमण्वान् का व्यक्तित्व बुद्धि कौशल के साथ–साथ स्वामीभक्ति की भावना से ओत प्रोत है। वह वियोगी राजा की हर तरह से देखभाल करता है। तपोवन में आया ब्रह्मचारी राजा की स्थिति का वर्णन करने के पश्चात मन्त्री रूमण्वान की दशा का वर्णन करते हुए कहता है–

अनाहारे तुल्यः प्रततरूदितक्षाम वदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवौ वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः।।[2]

अर्थात वह राजा के न खाने से नही खाता, सर्वदा रोने से राजा के सदृश ही उसका भी मुख मलिन हो गया है। वह राजा के समान दुःख का अनुभव करता हुआ स्नान आदि भी कष्ट से करता है। दिन हो या रात्रि, वह राजा की सेवा परिश्रम से कर रहा है। यदि राजा शीघ्र ही प्राणों का त्याग करें,

3– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 206
1– सव्पनवासवदत्तम् 1 : 14

तो उसका भी प्राण गया हुआ ही समझें। स्वामिभक्ति का यह गुण रूमण्वान् को उच्चकोटि का व्यक्तित्व प्रदान करता है। वह राजा उदयन की फलसिद्धि में यौगन्धरायण के पश्चात दूसरा प्रमुख सहायक पात्र है।

बसन्तक :– बसन्तक राजा उदयन का नर्म सचिव एवं प्रिय सखा है। यह नटखट, विनोदी, अल्पज्ञ तथा भोजन भट्ट है। उसे अपने भोजन का हमेशा ध्यान रहता है। वह अत्यधिक पेटू तथा उदर विकार से पीड़ित है–

एकः खलु महान दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदंनायां शय्यां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्च्यामि।[1] विदूषक अल्पज्ञ है तथा उल्टा पुल्टा ज्ञान रखता है। उसकी स्मरण शक्ति अत्यन्त कमजोर है। वह राजा को कहानी सुनाना तो प्रारम्भ करता है। किन्तु यह भूल जाता है कि राजा ब्रह्मदत्त हैं या नगर का नाम ब्रह्मदत्त है।[2] वसन्तक वासवदत्ता के वियोग से दुःखी राजा के मन बहलाव में लगा रहता है।

बसन्तक देखने में तो मूर्ख है किन्तु वास्तव में वह चतुर और प्रयुत्पन्नमति है। प्रमद्वन मे जब उदयन वासवदत्ता की स्मृति में आँसू बहाते है और उसी समय सहसा पद्मावती आ जाती है। राजा को उस समय कुछ नही सूझता किन्तु विदूषक तुरन्त ही पद्मावती से बताता है। कि हवा से उड़ाई गई कौस के फूल की धूल आँख मे पड़ने से राजा के मुख पर आँसू आ गये हैं।[3] वसन्तक बहुत मुखर है। यौगन्धरायण उसके स्वभाव से परिचित है। इसलिए वह वासवदत्ता को राजा से वियुक्त किये जाने का रहस्य इससे नही बतलाता है। विदूषक की बातों से यह स्पष्ट होता हैं कि वासवदत्ता जीवित होने की बात से वह अनभिज्ञ है।

ब्रह्मचारी :– ब्रह्मचारी कौशाम्बी के लावणक ग्राम में वेदाध्ययन करने वाला

1– स्वाप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 81
2– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासारग राय पंचम अंक पृष्ठ 147
3– " " चतुर्थ अंक 122

विद्यार्थी है। नाटक के प्रथम अंक मे इसका आगमन होता है। मगध की राजकुमारी पद्मावती तपोवन में आयी हुयी है। वहीं पर छद्मवेष में वासवदत्ता के साथ यौगन्धरायण भी उपस्थित है।

ब्रह्मचारी, वासवदत्ता के वियोग से दुःखी वत्सराज उदयन की विरह दशा का मार्मिक वर्णन करता है, जिसे सुनकर वासवदत्ता का राजा के प्रति प्रेम और अधिक दृढ़ हो जाता है। तथा पद्मावती के हृदय में उदयन के गुणों के प्रति अनुराग जागृत हो जाता है।[1]

यद्यपि नाट्क में ब्रह्मचारी के स्वयं का चारित्रिक विकास शून्य है, फिर भी उदयन के चरित्र की उदात्तता के वर्णन से वासवदत्ता का उदयन के प्रति अटूट प्रेम तथा पद्मावती के हृदय में उदयन के गुणों के प्रति आकर्षण, इन सन्दर्भो में ब्रह्मचारी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली तथा आवश्यक है। ब्रह्मचारी के मुख से ही यह सुनकर कि रूमण्वान् दिन–रात राजा की रक्षा में लगा हुआ है, यौगन्धरायण राजा के प्रति निश्चिन्त हो जाता है।

ब्रह्य्चारी अत्यन्त भावुक हृदय़ है। उससे राजा की विरह दशा देखी नहीं जाती है। और वह वेदाध्ययन पूर्ण किये बिना ही वहाँ से चला आता है। वस्तुतः भास ने इस छोटे से पात्र की कल्पना करके नाटक में सर्वथा नवीन भावों को उद्भावित करने का सफल प्रयत्न किया है।

कंचुकी– कंचुकी शब्द मगधराज दर्शक के अन्तःपुर में रहने वाले सेवक तथा उज्जयिनी नरेश प्रद्योत के रैभ्य नामक सेवक, दोनों का बोधक है। ये दोनो भी कथावस्तु की गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इनके अतिरिक्त पुरूष पात्रों में पद्मावती का भाई मगधराज दर्शक, वासवदत्ता के पिता प्रद्योत, उदयन के राज्य का अपरहण कर्ता आरूणि, काम्पिल्य देश का शासक ब्रह्मदत्त तथा पालक, गोपालक का उल्लेख मात्र

1– स्वप्नवासवदत्तम् ८ या0 डॉ0 गगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 49

हुआ है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली में नायक के सहायक पात्र :—

हर्षरचित प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों ही नाटिकाएं लावणक दाह के बाद की पृष्ठिभूमि पर सृजित है। दोनों में समान भाव तथा लगभग समान पात्रों का संयोजन हुआ है। अतः इन दोनों की संयुक्त रूप से पात्र समीक्षा की जा रही है।

यौगन्धरायण – यौगन्धरायण का उल्लेख प्रियदर्शिका मे नहीं हुआ है, जबकि रत्नावली नाटिका के लिए उसका चरित्र पृष्ठिभूमि की तरह कार्य करता है। वह प्रथम अंक तथा चतुर्थ अंक में दर्शकों के समक्ष उपस्थित होता है, किन्तु सम्पूर्ण घटनाचक्र उसके योजनानुरूप ही चलता है।

यौगन्धरायण स्वामिभक्त है। वह अपने रांजा से अतिशय प्रेम करता है। तथा उसके कल्याण में सदा तत्पर रहता है। उसने राजा की उन्नति के लिए उनसे बिना पूछें ही एक चाल चली, जाल बिछाया इसका उसको पश्चाताप है तथापि लाचारी में वह ऐसा करता है किन्तु समय पर उसका भाव मुखरित हो जाता है। वह कहता है– 'स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः। वह चाणक्य के समान बुद्धिमान तथा दूरदर्शी है। समूचा कार्यक्रम वह इस प्रकार सम्पन्न कर लेता है कि राज को भनक तक नही लगती। राजकाज के प्रबन्धन में भी वह अत्यन्त निपुण है उसके द्वारा भेजी गयी सेना कोशल को जीतती है और साथ ही वहाँ वह अपने आदमी को शान्ति कायम करने हेतु गद्दी पर बैठा देता है। अर्थात एक दिन के लिए भी अराजकता नही होने पाती है।

राजा उदयन को यौगन्धरायण की योग्यता पर पूर्ण विश्वास है। इसी कारण उसने अपने राज्य का समस्त कार्यभार उसको सौंप रखा है। बुद्धिमानी के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत ऐन्द्रिजालिक[1] का खेल ही पर्याप्त है।

एक ही दृश्य मे उसने इतना बड़ा काम करवा लिया जिसकी मिशाल नहीं। राजा सागरिका को ले आता है, उसकी पहचान हो जाती है, वासवदत्ता का भाव बदल जाता है। वसुभूति की उपस्थिति में सागरिका राजा को सौंप दी जाती है, राजा को सारी स्थिति का ज्ञान करा दिया जाता है। इन समस्त घटनाओं के फलस्वरूप ही उदयन को पूर्ण फलप्राप्ति होती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यौगन्धरायण नाटिका की मुख घटनाओं का आधार तथा कथानक का सूतधार है।

रूमण्वानः— प्रियदर्शिका में रूमण्वान् राजा उदयन का प्रधान सेना पति तथा रत्नावली मे वह उदयन का मन्त्री है। रत्नावली में इसका प्रत्यक्ष दर्शन नही होता है। विजयवर्मा के कथनों द्वारा उसकी वीरता का आभास होता है। विजय वर्मा कोसलाधिपति के विरूद्ध लड़ने गये रूमण्वान की विजय का समाचार देता है।[2]

प्रियदर्शिका में रूमण्वान् वत्सराज का सेनापति है। वह बड़ा पराक्रमी तथा नीति निपुण है। वह राजा की समस्त सैनिक गतिविधियों का नियन्ता है। प्रथम अंक में विन्ध्यकेतु के मारे जाने के पश्चात राजा रूमण्वान् से कहता है कि विजय सेन का यथोचित सत्कार कर उसे कलिंग के उन्मूलन को भेजे— 'रूमण्वान्, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। प्रविश्याभ्यन्तरमेव कृतयथोचित क्रियाः सत्कृत्य विजयसेनं कलिंगोच्छित्तयेंप्रेषयामः।'[3]

विजयसेन :— विजयसेन प्रियदर्शिका में उल्लिखित पात्र है। यह वत्सराज उदयन का पराक्रमी सेनापति है। नाटिका में इसके दो युद्धों में विजयी होने का वर्णन है प्रथम अंक में उसके विन्ध्यकेतु को परास्त करने का वर्णन मिलता है।[4] तथा चतुर्थ अंक मं दृढ़ वर्मा का कंचुकी राजा से बताता है कि विजय सेन ने कलिंग को मारकर दृढ़वर्मा को राज्यासन पर बैठा दिया है—

1— रत्नावली राजेश्वर शास्त्री पृष्ठ 225
2— रत्नावली व्य0 डा.0 राजेश्वरशास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ 192
3— प्रियदर्शिका व्या0 डॉ0 रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ 19
4— " " प्रथम अंक पृष्ठ 13—15

हत्वा कलिंगहतकं ह्यस्मत्स्वामी निवेशितो राज्ये।

देवस्य समादेशाद्रिपुजयिना विजयसेनेन ।।[1]

विन्ध्यकेतोन्मूलन के सन्दर्भ में विजयसेन का साहस देखते ही बनता है।

विजयसेन एक वीर सैनिक होने का साथ–साथ गुणग्राही भी है वह शत्रु विन्ध्यकेतु की वीरता की मुक्तकण्ठेन प्रशंसा करता है। वस्तुतः विजयसेन एक वीर सेनापति तथा उच्चकोटि के व्यक्तित्व का धनी है।

विनयवसु— प्रियदर्शिका में प्रस्तावना के पश्चात दृढवर्मा के कंचुकी विनयवसु का प्रवेश होता है। वह बताता है कि दृढवर्मा कलिंग द्वारा बन्दी बना लिया गया है। स्वामिभक्त तथा कर्तव्यपरायण विनयवसु राजा दृढवर्मा के बन्दी बनाये जाने पर उसकी पुत्री प्रियदर्शना को राजा उदयन् के पास पहुँचना चाहती है। किन्तु दुर्भाग्य से वह विन्ध्यकेतु के यहाँ अल्प समय के लिए उस कन्या को रख देता है। स्नान से वापस आने पर उसे कन्या नही मिलती तो वह बहुत दुःखी हो जाता है।[2] चतुर्थ अडक में विनयवसु का पुनः प्रवेश होता है।वह अपने स्वामी दृढवर्मा की तरफ से वत्सराज को धन्यवाद देने के लिए भेजा गया। वही पर वह मृतप्राय अरण्यका की देखकर उसके दृढवर्मा की पुत्री होने की पुष्टि करता है।[3]।

स्पष्ट है कि चतुर्थ अडक में विनयवसु का आगमन नाटिका में एक नवीन आयाम का प्रक्षेप करता है। अरण्यका को अपने रिश्ते की बहिन जानकर उदयन अरण्यका के प्रणय से कुपित वासदत्ता का हृदय परिवर्तित हो जाता है।वह स्वेच्छा से अरण्यका को उदयन के हाथो सौप देती है।[4] इस प्रकार कहा जा सकता है। कि विनयवसु नायक की फलसिहि में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

1– प्रियदर्शिका 4 : 7

2– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ 3– 8

3– 'इयं सा प्रियदर्शिका भगिनी ते' प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 99

4– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 106

विदूषक (वसन्तक)– संस्कृत नाटको में विदूषक हास्य रस का पात्र होता है। प्रायः यह ब्राह्मण जाति का होता है। यह अपने आकार वेश, भूषा तथा कार्य से हास्यप्रद होता है। श्रंगारिक रूपकों में नायक–नायिका के प्रेम मिलन की व्यवस्था करने के अपने काम में यह बहुत निपुण होता है। कुपित नायिका को समझाबुझाकर नायक के अनुकूल बनाने में भी यह कुशल होता है। यह भोजनभट्ट किन्तु चरित्र का शुद्ध होता है। नायक का परम भक्त विदूषक प्रयुत्पन्नमति होता है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनों ही नाटिकाओं में विदूषक 'वसन्तक' ब्राह्मण है। यह नायक उदयन का परममित्र है। राजा के प्रति उसमें असीम प्रेम है तथा उसके हित में यथासम्भव प्रयास रत रहता है। उसके मत में उदयन के अतिरिक्त कामदेव की तुलना करने वाला कोई और पुरूष संसार में नही है। 'कुसुम चापव्यपदेशेन निहनूयते'। वह भोजन प्रेमी है दोनो ही नाटिकाओं में उसका यह रूप देखने को मिलता है। वसन्तक राजा की उसके प्रणय व्यापार में हर सम्भव सहायता करता है। यह बात अलग है कि उसके मूर्खता पूर्ण व्यवहार से राजा का प्रणय गुप्त नहीं रह पाता। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में उदयन–वासवदत्ता प्रणयविषय पर खेले जा रहे नाटक में उदयन के स्वयं अपना अभिनय तथा वासवदत्ता के रूप में अरण्यका के अभिनय के फलस्वरूप, उदयन अरण्यका मिलन की योजना बनी है। योजना सफल भी होती है। किन्तु तभी नींद में विदूषक वासवदत्ता के समक्ष यह रहस्य उद घाटित कर देता है।[1]

इसी प्रकार रत्नीवली के द्वितीय अंक में उदयन तथा सागरिका के चित्र से युक्त चित्र फ लक को खुशी के आवेग में वासवदत्ता के समक्ष गिरा देता हैं।[1] जिससे वासवदत्ता को समस्त रहस्य का ज्ञान हो जाता

1– 'विदूषक (निद्राजडमुत्थाय सहसा विलोक्य) मनोरमे किं नर्तित्वा गतः प्रिय वयस्य अथवा नृत्ययेव' । प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अक पृष्ठ 72

4

है। नृत्य तथा गान का उसे रंचमात्र भी ज्ञान नही है फिर भी वह परिचारिकाओं के साथ नाचता है और अपने मूर्खतापूर्ण कथनों से सामाजिकों का मनो–विनोद करता है।[2]

निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि श्री हर्ष ने दोनों ही नाटको के विदूषक वसंतक में शास्त्र सम्मत गुणो का निवेश किया है। विदूषक घटनाक्रम को रोचक बनाने तथा उसे एकदम बदल देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे नाटिकाओं को स्वाभाविक गति मिलती है।

विजय वर्मा :— रत्नावली मे हर्ष ने विजय वर्मा के रूप में एक नये पात्र की योजना की है। यह वत्सराज उदयन के प्रधान सेनापति रूमण्वान् का भान्जा है। चतुर्थ अंक में वह उदयन से रूमण्वान् की विजय का समाचार बताता है।

इनके अतिरिक्त रत्नावली में बाभ्रव्य (उदयन का कंचुकी) तथा वसुभूति (सिंहल के राजा विक्रम बाहु का मंत्री) है।

तापसवत्सराजचरितम् में नायक के सहायक पात्र—

यौगन्धरायणः— यौगन्धरायण उदयन का मंत्री एवं सम्पूर्ण घटनाक्रम का सूत्रधार है। यद्यपि वह प्रत्यक्ष रूप से प्रथम एवं षष्ठ अंक मे ही दिखाई देता है तथापि उसका प्रभाव पूरे नाटक पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वह नाटक की समस्त घटनाओं का केन्द्र बिन्दु है सभी पात्र उसके इसारे पर ही कार्य करते हैं।

बुद्धिमत्ता और स्वामिभक्त यौगन्धरायण की प्रमुख विशेषताएं है। स्वामीभक्ति यौगन्धरायण सदा अपने स्वामी का हितचिन्तन करता है। शत्रुओं द्वारा अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए युक्ति सोचता है। और उसे कार्य रूप में परिणित करने में लग जाता है। यौगन्धरायण बड़ी ही चतुरता से रानी

1— ही ही भो जितं जितमस्माभिः (इति बाहु प्रसार्य नृत्यति। नृत्यतः कक्षान्तरात फलकः पतति)
रत्नावली राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ 116

2— रत्नावली राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 29—30

वासवदत्ता के समक्ष राष्ट्र के महान् संकट[1] का चित्र प्रस्तुत करता है। तथा अपनी सुनियोजित योजना के तहत रानी को विश्वास में लेकर उनसे अपने कार्य में योगदान को राजी कर लेता है। वासदत्ता से 'वक्तुं नोत्सहे मनः परमतो जानातु देवी स्वयम्'[2] कहकर उसने स्वयं कुछ न कहने की बात कहकर भी अपना प्रयोजन सिद्धकर लिया।

यौगन्धरायण अपनी समस्त योजनाओं को बड़ी ही सावधानी व निपुणता से कार्यान्वित करता है। उसने विदूषक व रुमण्वान को उनकी जिम्मेदारियां समझा दी, लामकायन को ब्रह्मण वेष में प्रयाग पहुँचा दिया। सांस्कृत्यायनी को उदयन का चित्र दिखाकर व उसके गुणों की अनेकशः प्रशंसा करके पद्मावती के हृदय में उदयन के प्रति अनुराग उत्पन्न करा दिया है। यौगन्धरायण का बुद्धि कौशल संस्कृत नाट्य साहित्य के लिए अनुकरणीय है। उसकी स्वामिभक्ति व बुद्धिमत्ता के कारण ही उदयन विलाप करता हुआ कहता है कि —'कस्मिन राज्यभरं निवेश्य सकलं सेवे सुखानीच्छया'[3] उसकी स्वामीभक्ति के सन्दर्भ में सांस्कृत्यायनी कहती है—

सवेषां व्यसनानां स्वामिव्यसनं भवत्यतिगरीयः।
कूटस्थानीयश्च प्रभुरिति हत एष जनवादः।।[4]

उसके नीति प्रयोग और कार्यकुशलता के सन्दर्भ में वह कहती है—

दूरमुदीर्णे च रिपावेवमकिंचरे च विजीगीषौ।
भवता तु नयगुणशतैः सोऽयमसूत्रः पटः क्रियते।[5]

बुद्धि कौशल का धनी यौगन्धरायण युद्ध कौशल में भी महारथी

1— तापसवत्सराजचरितम् 1 : 7
2— " "
3— तापसवत्सराजचरितम् द्वितीय 2 : 18
4— " " " 4 : 5
5— " " " 4 :6

है। पान्चाल नरेश के विरूद्ध युद्ध में उसने अद्भुत पराक्रम दिखाया था। उसका स्मरण करते हुए कुंजरक सोचता है– 'कथमहं तादृशं तस्य पराक्रम न कथयिष्ये उदयन भी उसको पराक्रम में सिंह के समान कहता है–

पोतः साक्षात्वं विपद्वारिराशौ
तत्ते शौर्य नात्तपूर्व मृगेन्द्रैः।
क्रीडालापस्तवत्त एव प्रसूताः
किं किं स्मृत्वा रोदिमि त्वद्गुणानाम्।।[1]

ना के पूर्ण रूप से सफल हो जाने पर भी उसमें रंचमात्र भी गर्व या अभिमान नहीं है। उसकी निरभिमानिता एवं विनम्रता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि वह मरने को उद्यत रानी वासवदत्ता से कहता है कि आपको इस प्रकार कष्ट देने का अपराधी मै हीं हूँ। अतः आपसे पूर्व मैं अपना जीवन दूँगा– देव्यास्यमीहितं सम्पादयत्न्याः पुरस्सरो भवामि, यतोमयैव सर्व में वेदेमनुष्ठितम्।[2]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यौगन्धरायण उच्चकोटि के व्यक्तित्व का धनी है। यह केवल उसी की बुद्धि कौशल का परिणाम था कि वत्स देश को आक्रामक आरूणि के हाथों से बचाया जा सका तथा इतनी बड़ी विपत्ति उपस्थित हो जाने पर भी राजा या रानी को किसी प्रकार की हानि नहीं होने दी।

विदूषक :– अन्य रूपकों के विदूषकों के समान तापसवत्सराज चरितम् का विदूषक नहीं है। वह अपनी मूर्खता से रहस्योद्घाटन करने वाला न होकर धीर, गम्भीर एवं उत्तरदायित्व को निभाने वाला है। देश की रक्षा करने के लिए, मंत्रियों द्वारा बनायी गयी गुप्त योजना में वह भी सम्मिलित है तथा राजा की रक्षा का समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। और कठिन से

1–तापसवत्सराजचरितम् षष्ठ अंक पृष्ठ
2– तापसवत्सराजचरितम् षष्ठ अंक पृष्ठ 197

कठिन परिस्थिति में भी वह अपने उत्तरदायित्व से विचलित नहीं होता । वह रात दिन राजा के साथ छाया की भाँति रहता है फिर भी किसी रहस्य को उस पर व्यक्त नहीं होने देता।

वह शोकाकुल राजा को अनेक प्रकार से धैर्य बँधाता रहता है– 'भो वयस्य अद्यापि त्वं दास्याः पुत्रं प्रदीपनकं समृत्वा आत्मानं प्रदीपयसि। ननु देव्याः स्नेहानुरूपं कृतमेव त्वया यत्कर्तव्यम्।[1] इसके बाद धीरे–धीरे लामकायन की बात याद दिलाकर राजा के मन में दूसरे विवाह के बारे में सोचने का अवकाश बनाता है। फिर उसे तपोवन ले जाता है।

राजा का पद्मावती के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार न देखकर वह राजा से कहता है– 'भो वयस्य अत्रभवतीं अनालपता त्वया न शोभनं कृतम्।[2] वह बुद्धिमान, दूरदर्शी तथा प्रयुत्पन्नमति है। चतुर व्यक्ति की भाँति वह पहिले ही भांप लेता है कि 'विमानना' से दुखी होकर पद्मावती अवश्य ही 'दुष्कर कार्य' कर डालेगी। उसकी इस आभाषित आशंका एवं प्रेरणा का ही फल है कि राजा समय पर पहुँचकर उसे मृत्युपाश से मुक्त करा लेता है।[3]

उसमें कठोर उत्तरदायित्व निभाने की दृढ़ता एवं बुद्धिमता के साथ– साथ ह्दय की कोमलता भी है। वास्तविकता को जानते हुए भी, वासवदत्ता के वियोग से संतप्त उदयन को देखकर वह भी दुखी हो जाता है। (स्वगतं) सर्वमेतद्यद् वृत्तं जानामि तथाप्येतद्व्यस्यस्य व्यवसितं प्रेक्ष्य आविध्यत इव में ह्दयम।[4]

संस्कृत नाटकों का विदूषक प्रायः भोजन भट्ट एवं विनोदी हुआ करते है किन्तु 'तापसवत्सराज चरितम्' के विदूषक में पेटूपना[5] और परिहास[6]

1— तापसवत्सराजचरितम तृतीय अंक पृष्ठ 89
2— तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 107
3— विसृज पाशमिमं..... तवागतः !! तापसवत्सराज चरितम् 4 : 17
4— तापसवत्सराजचरितम् षष्ठ अंक पृष्ठ 202
5— " " तृतीय अंक पृष्ठ 94
6— " " तृतीय अंक पृष्ठ 90

परिमित मात्रा में देखा जाता है। सम्पूर्ण नाट्य साहित्य में इसके जैसा गम्भीर बुद्धिमान एवं कर्तव्य निभाने वाला विदूषक नही मिलता।

लामकायन :— लामकायन यौगन्धरायण का विश्वस्त है। और उसकी योजना के अनुसार वह भिक्षु वेष धारण कर प्रयाग चला जाता है और यह घोषणा करता है कि किसी और कन्या के साथ उदयन का विवाह हो जाने पर ही उदयन वासवदत्ता का पुनः मिलन होगा। उसकी इस घोषणा पर विश्वास करके ही उदयन पद्मावती से विवाह को प्रेरित होता है। और उदयन को अपहृत राज्य पुनः प्राप्त हो जाता है।

रूमण्वान् — रूमण्वान् वत्सराज का मन्त्री है। जो राज्य प्राप्ति के लिए बनायी गयी यौगन्धरायण की योजना में सम्मिलित है। तथा अपने ऊपर सौंपे गये उत्तरदायित्व का बड़ी कुशलता से निर्वहन करता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त विनीत भद्र (रूमण्वान का भाई) लेखावाहक, कन्चुकी, सिद्धार्थक आदि की सारगर्भित भूमिका नाटक की सफलता में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

रूपक में नायिका निरूपण :— संस्कृत नाटक मूलतः श्रृंगार प्रधान होते हैं। इनमें नायिका का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसके अभाव में कुछ ही नाटकों की सर्जना हुयी है। नायक को नायिका की सम्प्राप्ति ही प्रायः नाटकों का विषय होता है। अतः इस पात्र की किसी भी प्रकार से उपेक्षा नही की जा सकती। नायिका रूप प्रथित यह पात्र ही कथानक को आधार, गति एवं विस्तार देता है।

शास्त्रीय मत नायिका को नायक के समान[1] गुणों वाली मानता है। अर्थात् नायिका, विनम्र, त्यागी, मुदृभाषिणी, कोमल, प्रियंवदा, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, स्मृति–प्रज्ञा–कला तथा मान से युक्त, दृढ़, तेजस्विनी तथा धार्मिक प्रवृत्तियों से युक्त होती है।

1— दशरूपकम् — व्या0 — श्री निवास शास्त्री — 2 : 24

यह स्वकीया परकीया व साधारण स्त्री भेद से तीन प्रकार की होती है।[1] आचार्य विश्वनाथ[2] ने भी नायिका के स्वीया, अन्या तथा सामान्या तीन भेद माने हैं। आचार्य हेमचन्द्र, शरीर की अवस्था तथा कौशल (कामचेष्टा की निपुणता) के आधार पर नायिकाओं के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा, ये तीन भेद मानते है। कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया तथा पण्यस्त्री भेद से नाट्यदर्पणकार नायिकाओं के चार भेद बताते है।[3]

1– स्वकीया नायिका[4] – स्वकीया नायिका शील तथा सरलता से युक्त होती है। अर्थात् वह प्रतिव्रता कुटिलता से रहिता, लज्जावती तथा पति की सेवा में, निपुण होती हैं यह मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की होती है। जिनमे से

मुग्धा[5] – जिनकी अवस्था तथा काम भावना नवीन होती है, जो रति क्रीडा में झिझकने वाली और क्रोध करने में कोमल होती है, वह मुग्धा नायिका होती है।

मध्या[6]– तारूण्य और कामभाव प्राप्त कर चुकने वाली तथा मोह की अवस्थापर्यन्त सुरत के योग्य नायिका मध्या होती है।

प्रगल्भा[7] – प्रगाढ़ यौवन वाली, कामोन्मत्त, आनन्दातिरेक से प्रियतम के अंगो में प्रविष्ट होती हुई सी, सुरत के आरम्भ में भी चेतना शून्य हो जाने वाली प्रगल्भा नायिका होती है।

मध्या तथा प्रगल्भा नायिका दो प्रकार की होती है–ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा। इन दोनो के प्रति नायक अनुरक्त होता है।

1– दशरूपकम् – व्या0 – श्री निवास शास्त्री – 2 : 24
2– साहित्यदर्पण – " डॉ0 सत्यव्रत सिंह 3 : 56
3– 'नाट्यदर्पण – 4 : 55
4– दशरूपकम् – व्या0 – श्री निवास शास्त्री – 2 : 25
5– " " " " 2 : 26
6– " " " " 2 : 27
7– " " " " 2 : 29

2– परकीया नायिका[1] :– परकीया नायिका दो प्रकार की होती है। कन्या तथा विवाहिता अन्य स्त्री। इनमें से कन्या तो कवि की इच्छानुसार अंगीरस या अंगरस की नायिका बनायी जा सकती है किन्तु विवाहिता अन्य स्त्री (परोढ़ा) को नाटक में प्रधान रस की नायिका बनाने का निषेध है।

3– साधारण स्त्री (सामान्य नायिका)[2] :– साधारण स्त्री गणिका होती है जो कला, प्रगल्भता तथा धूर्तता से युक्त होती है। यह धनवानों को अनुरक्ता के समान प्रसन्न करती है। और धन रहित होने पर इनको माता द्वारा निकलवा देती है।

रूपक पंचक में नायिकाओं की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति व चरित्र चित्रण:–

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नायिका :– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् का नायक उदयन नही है अतः वासवदत्ता को नायिका की कोटि में नही रखा जा सकता। इसका नायक यौगन्धरायण है, जो अपनी बुद्धिमत्ता से उदयन को प्रद्योत के बन्धन से मुक्त कराने में सफल होता हैं घात प्रतिघात वाले इस रूपक में शास्त्रसम्मत नायिका का अभाव है।

स्वप्नवासवदत्तं में नायिका – स्वप्नवासवदत्तं की प्रधान नायिका वासवदत्ता है, जो अपने पति से अत्यन्त प्रेम करती है तथा उसके निमित्त अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार हो जाती है। नाट्यशास्य की दृष्टि से वह स्वकीया नायिका है। इसी में दूसरी नायिका पद्मावती है जो मुग्धा नायिका है।

प्रियदर्शिका में नायिका :– प्रियदर्शिका की नायिका में समस्त नायिकोंचित गुणों का समावेश हुआ है। नायक से अनुराग रखने वाली यह अत्यन्त लावण्यमयी कन्या है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से इसे मुग्धा नायिका माना गया है।

1– दशरूपक व्या० का श्री निवास शास्त्री 2 : 32

2– " " " 2 : 33

रत्नावली की नायिका रत्नावली है जो तिलोत्तमा है। उसका असाधारण सौन्दर्य ही राजा के अनुराग का कारण बनता है। अनिन्द्य सुन्दरी 'रत्नावली' मुग्धा नायिका है।

तापसवत्सराजचरितम् में नायिका :– तापसवत्सराजचरितम् की नायिका वासवदत्ता, स्वकीया नायिका है। पातिव्रत में वासवदत्ता पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेती है। स्नेह सौहार्द्र एवं त्याग की भावना ने उसे संस्कृत नाटकों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है।

स्वप्नवासवदत्तं की वासवदत्ता :– इस नाटक की नायिका 'वासवदत्ता' उच्च चरित्र का नारी रत्न है। जो अपने स्वामी के निमित्त अपने व्यक्तिगत सुखो को निःस्वार्थ भाव से ठुकरा देती है। जब यौगन्धरायण उसके समक्ष अपना प्रस्ताव रखता है तो वह तुरन्त मान जाती है। वह जानती है कि मंत्री का प्रस्ताव उसके असीम दुख का हेतु है, तब भी वह स्वामिपरायणा, पति–राज्यवृद्धि–अभिलाषिणी जरा सा भी, यह बलिदान करने में संकोच नहीं करती है।

वासवदत्ता का अपने पति राजा उदयन के प्रति असीम प्रेम है। प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के मुख से राजा की दशा का वर्णन सुनकर वह रोने लगती है और अपने मन में दुःख करती है कि अब यौगन्धरायण का मनोरथ पूर्ण हो। उसे इस बात का भी पूर्ण विश्वास है कि वह जितना राजा को प्रेम करती है, राजा भी उसे उतना ही प्रेम करता है। ब्रह्मचारी के यह कहने पर कि वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार सुनकर राजा भी अग्नि में कूदकर प्राण देना चाहता था। वह कहती है जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।[1] इसकी यह भावना ही उदयन पद्मावती के विवाह समाचार से उसे विचलित नही करती । राजा का उसके विषय में कहा गया एक वाक्य भी उसे अनेकशः कष्ट सहाने में सहायक होता है। चतुर्थ अंक में विदूषक से वार्तालाप

1— स्वप्नवासदत्तम् – व्या0 – गंगासागर राय – प्रथम अंक पृष्ठ 40

के मध्य में राजा द्वारा यह कहना—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे में मनो हरति।।[1]

उसके हृदय को असीम सन्तोष देता है वह कहती है—अहो! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।[2]

स्वप्नवासवदत्तं में वासवदत्ता का चरित्र एक आदर्श सौत के रूप में चित्रित किया गया है। उसे पद्मावती से ईर्ष्या नहीं होती। प्रथम अंक में राजा के साथ पद्मावती के भावी विवाह का समाचार सुनकर वह उसे आत्मीय[3] समझने लगती है। पद्मावती के विवाह के समय उपयोग के लिए वह स्वयं माला गूंथती है।[4] चतुर्थ अंक में वह पद्मावती को राजा से एकान्त में मिलने का अवसर प्रदान करती है।[5] पद्मावती की शिरो वेदना का समाचार पाकर वासवदत्ता उद्विग्न हो जाती है। वह उसका हाल जानने के लिए तुरन्त समुद्रगृह जाती है। वहाँ उसे अकेली पाकर मन में परिजनों पर नाराज होती है।[6]

वासवदत्ता एक प्रतिव्रता नारी है, जो परपुरुष के दर्शन से भी परहेज करती है। वह दूसरों के गुणों की प्रशंसा भी करती है। पद्मावती को देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है— अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।[7] वासवदत्ता उदात्त भावनाओं से ओत—प्रोत स्नेह की मूर्ति है। यह जानकर कि पद्मावती महाराज उदयन की रानी होगी, उसे पद्मावती पर स्नेह

1— स्वप्नवासदत्तम् — व्या0 — गंगासागर राय — 4 : 4
2— " " चतुर्थ अक पृष्ठ 112
3— स्वप्नवासदत्तम् व्या0 — गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 16
4— स्वप्नवासदत्तम् तृतीय अंक पृष्ठ 76 — 77
5— स्वप्नवासदत्तम्" चतुर्थ अंक पृष्ठ 120
6— 'अहो परिजनस्य प्रमादः ! अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यजयति।
स्वप्नवासदत्तम — गंगासागर राय — पंचम अक पृष्ठ 152
7— स्वप्नवासदत्तम् " प्रथम अंक पृष्ठ 17

हो जाता है वह कहती है। राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिका स्नेहोऽपिमेऽत्र सम्पद्यते।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वासवदत्ता एक आदर्श पत्नी, आदर्श, सौत एवं उदात्त भावनाओं से ओत–प्रोत व्यक्तित्व हैं। पतिपरायणता उसका प्रमुख गुण है।

पद्मावती — पद्मावती मगधराज दर्शक की बहिन है। वह सौन्दर्य मूर्ति, छलकपट, से अपरिचिता, उदारचित्ता राज कन्या है। उसको देखते ही वासवदत्ता कहती है– 'नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्य मधुरा।'[2] चतुर्थ अंक में राजा भी पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशील माधुर्ये[3] कहकर उसकी प्रशंसा करता है। विदूषक भी पद्मावती को तरूणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक तथा सदाक्षिण्या कहता है। पद्मावती मृदुभाषिणी भी है। उसके इस गुण से सभी प्रभावित है।

वासवदत्ता की तरह वह भी राजा से प्रगाढ़ प्रेम करती हैं। ब्रह्मचारी के मुख से राजा के गुणो को सुनकर उसका हृदय उदयन की ओर आकृष्ट होता है। विवाह हो जाने पर वासवदत्ता उससे पूछती है कि क्या तुम्हें अपना पति प्यारा है? इस पर वह उत्तर देती आर्ये ! मै नहीं जानती, हॉ आर्य पुत्र से वियुक्त होने पर जी घबड़ाता है। वस्तुतः पद्मावती तो अपने मन में यह समझती है कि राजा को जितना वह प्रेम करती है उतना कदाचित् वासवदत्ता भी नही करती थी। चतुर्थ अंक में वह वासवदत्ता से पूछती है 'यथा ममार्य पुत्रस्यतथैवार्याया वासवदत्तायाः[4] इससे प्रतीत होता है कि वह राजा से अत्याधिक प्रेम करती है। वास्तव में प्रेम की यही पराकाष्ठा है कि प्रेमीजन को लगे कि वह जितना अधिक अपने प्रियतम को प्रेम करता है,

---

1– स्वप्नवासदत्तम् गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 16

2– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – प्रथम अंक पृष्ठ 18

3– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – 4 : 4

4– " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 91

उतना कोई अन्य कर ही नहीं सकता।

पद्मावती एक आदर्श सौत के रूप में चित्रित हुयी है। उसका यह गुण वासवदत्ता को भी बहुत पीछे छोड़ जाता है। वासवदत्ता के मन में तो कहीं–कहीं ईर्ष्या का भाव भी आ जाता है। किन्तु पद्मावती अन्यन्त शुद्ध ह्रदया है उसके मन में कहीं भी ईर्ष्या दिखायी नही देती है। चतुर्थ अंक में चेटी पद्मावती को वीणा सीखने सलाह देती है।[1] इस सन्दर्भ में पद्मावती, चेटी तथा वासवदत्ता में जो बाते होती है। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावती जानती है कि राजा के मन में वासवदत्ता के गुणो की स्मृति बनी हुयी है। इस बात के लिए वह राजा को कोसती नहीं है। चतुर्थ अंक में विदूषक से वासवदत्ता की प्रशंसा करते हुए राजा की बात वह स्वयं सुनती है। फिर भी वह न तो वासवदत्ता से ईर्ष्या करती है और न ही राजा से क्रोध। षष्ठ अंक में वह एक स्थान पर वासवदत्ता के पिता को तात तथा माता को अम्बा कहकर सम्बोधित करती है।[2]

पद्मावती अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाली है।वह राजा की वासदत्ता विषयक स्मृति के सन्दर्भ में स्वयं जान लेती है। उसमे मार्मिकता की भावना एवं वृद्धों के प्रति सम्मान का भाव है। प्रथम अंक में तपोवन मे पहुँचनें पर वह वृद्धा तापसी को प्रणाम करती है।[3] वह उदार चित्त की एवं दानी प्रवृत्ति की है। तपोवन में उसके द्वारा की गयी घोषणा, इसकी पुष्टि करती है। यौगान्धरायण की अभ्यर्थना स्वीकार करने में कंचुकी की हिचकिचाहट को देखकर वह कहती है–'आर्य! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुं। यदेष भणति तदनुतिष्ठत्वार्यः[4] उसका यह कथन उसकी

1– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – चतुर्थ अंक – पृष्ठ 93
2– आर्य पुत्री ततो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्ना इव संवृता।
स्वप्नवासदत्तम् गंगासागर राय षष्ठ अंक – पृष्ठ 181
3– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – प्रथम अंक – पृष्ठ 52
4– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – प्रथम अंक – पृष्ठ 27

वचननिष्ठता को प्रमाणित करता है। पद्मावती अत्यन्त सरलहृदया एवं भावुक स्त्री है। प्रथम अंक में वासदत्ता के दुःख में मूर्च्छित राजा की दशा का वर्णन सुनकर वह कहती है– दिष्टया ध्रियते, मोहगात इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्[1] अवन्तिका वेष में छिपी वासवदत्ता का जब भेद खुलता है, तो पद्मावती उसके पाँवों में पड़कर क्षमा मांगती है।[2] यह उसकी विनम्रता ही है। वस्तुतः पद्मावती अत्यन्त सुन्दरी, दानी, धर्मपरायणा, दयावती, एवं गुरूजनों के प्रति सम्मान भाव रखने वाली नारी है। उसे अपने पति में पूर्ण अनुराग एवं सपत्नी से भगिनिवत् स्नेह है। उसका चरित्र भारतीय नारी के लिए आदर्श है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली में–

प्रियदर्शिका – प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका 'प्रियदर्शिका' राजा दृढ़वर्मा की पुत्री है। वह दृढ़ वर्मा के कंचुकी द्वारा विंध्यकेतु के यहाँ तथा वत्सराज के सेनापति द्वारा वत्सराज के यहाँ लायी जाती हैं। अरण्य में प्राप्त होने के कारण वह अरण्यका के नाम से जानी जाती है। अप्रतिम सौन्दर्य उसका सर्वोत्तम गुण है। उसको देखकर विदूषक 'उद्यानलता'[3] कहता है। उसके सौन्दर्य को देखकर राजा अभिभूत हो जाता है और उसके सन्दर्भ में नाना प्रकार के तर्क करता है।[4] उसका यह सौन्दर्य ही राजा के प्रेम का हेतु बनता है।

प्रियदर्शिका अत्यन्त रूपवती होने के साथ–साथ अत्यन्त लज्जावती कन्या है। वह उदयन के प्रति अपना हृदयहार चुकती है उसकी प्रणयव्यथा मे दिन रात तपती रहती है फिर भी अपने प्रणय के सन्दर्भ में अपनी सखी से कहने में लज्जा का अनुभव करती है।[5] वह राजा के प्रति अत्यन्त आसक्त है। उदयन के प्रथम दर्शन में ही अपने लिए पिता के चयन की प्रशंसा करती है।[6]

1– स्वप्नवासदत्तम् – गंगासागर राय – प्रथम अंक – पृष्ठ 42
2 स्वप्नवासदत्तम् गंगासागर राय . षष्ट अंक पृष्ठ 211
3– 'प्रत्यक्षचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते' । प्रियदर्शिका – रामचन्द्र मिश्र – द्वितीय अंक पृष्ठ 29
4– प्रियदर्शिका 2 : 6
5– प्रियदर्शिका – रामचन्द्र मिश्र – तृतीय अंक पृष्ठ 44
6– 'अयं स महाराजा यस्याहं तातेन दत्ता। स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः' । प्रियदर्शिका द्वितीय अंक पृष्ठ 36

प्रियदर्शिका ललित कलाओं में भी निपुण है। तृतीय अंक में वह वीणावादन करती है, गाती है तथा बड़ी ही कुशलता से वासवदत्ता के चरित्र का अभिनय करती है।[1] अरण्यका इतनी सरल हृदया है कि उदयन के चरित्र को निभाने वाले राजा को वह पहचान नहीं पाती। शील उसके चरित्र का महत्वपूर्ण गुण है। भ्रमर निवारण के प्रसंग में उपस्थित हुए राजा को देखकर वह लज्जा का अनुभव करती है।[2] 'उदयन चरित' नाटक के माध्यम से उदयन तथा अरण्यका के मिलन का रहस्य जब वासवदत्ता को पता चलता है तो अरण्यका को उसका कोप भाजन बनना पड़ता है। वह बन्दी गृह में डाल दी जाती हैं इससे निराश होकर वह विषपान[3] कर लेती है। यह घटना उसके कोमल भावों को उजागर करती है।

प्रियदर्शिका में नाट्यशास्त्र द्वारा निर्धारित समस्त गुणों का निवेश हुआ है। वह ललित कलाओं में अभिज्ञ, अत्यन्त मनोहर, शीलवती, नायक से नवानुराग रखने वाली प्रसिद्ध राजवंशोंत्पन्न कन्या है । उसका चरित्र सहज ही सामाजिकों को आकर्षित करता है । वह 'परक़ीया' कन्या एवं मुग्धा नायिका है ।

रत्नावली — रत्नावली सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री है । वह इस नाटिका की नायिका है । इसके नाम के आधार पर ही नाटिका का नाम रखा गया है । नाटिका में कुछ अंशों को छोड़कर सर्वत्र वह सागरिका के नाम से व्यवहृत हुयी है । प्रियदर्शिका के समान वह भी अत्यन्त लावण्यमयी है । चित्रपट मे चित्रित उसके रूप को देखकर ही राजा उस पर आसक्त हो जाता है । उसके अतिशय सौन्दर्य के कारण ही वासवदत्ता सागरिका को उदयन की नजरों से बचाती है । उसे भय है कि कहीं राजा उसे देखकर उस पर मुग्ध न हो जाये। सागरिका के प्रति राजा की भावपूर्ण उक्तियाँ ,

---

1— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 62
2— " " द्वितीय अंक पृष्ठ 36
3— " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 97

उसके सौन्दर्य का ही प्रकटीकरण है। राजा कहता है कि विधाता अप्रतिम पूर्णचन्द्र के समान आल्हादक इसका मुख बनाकर अवश्य ही अपने आश्रयभूत कमल के संकुचित हो जाने से संकटापन्न हो गये होंगे–

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद ध्रुवम।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितम।।[1]

सागरिका एक सुन्दरी होने के साथ–साथ बड़े भावुक हृदय की है राजा के प्रथम दर्शन में ही वह अपना हृदय उदयन को समर्पित कर देती है। यद्यपि वह समझती है कि दासी का राजा से प्रेम करना खतरे से खाली नही तथापि वह अपने हृदय में नियत्रण नहीं रख पाती । सागरिका में भावप्रवणता का बाहुल्य है । वह एक भावुक प्रेमिका की भाँति राजा के दर्शन के उपरान्त कामव्यथा से पीड़ित हो जाती है। वह कहती है – सर्वथा मम् मदभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्।[2] उसका प्रेम उस शिखर तक पहुँच गया है जहाँ से वापस आना मुश्किल ही नहीं अपितु असम्भव है –किमेष भणिष्यतीति यसत्यं जीवितमरणयोरन्तराले वर्त्ते।[3]

सागरिका का हृदय प्रेम की दृढ़ता के साथ–साथ कतिपय दुर्बलताओं से भी ग्रस्त है। राजा से मिलने के लिए जब वह उद्यान जाती है और वहाँ राजा को नहीं पाती तथा यह जान जाती है कि उसकी अभिसार चेष्टा को रानी जान गयी है। तब वह कोई दूसरा उपाय नहीं देख पाती तो उसे मात्र मृत्यु की शरण दिखती है – वरमिदानीं स्वयमेवात्मानमुद्बध्योपरता न पुनर्ज्ञातसङ् केतवृत्तान्त्या देव्या परिभूतस्मि।[4] जब –जब उसे अपने प्रेम की विफलता की सम्भावना होती है तब – तब वह मरण व्यवसाय को प्रवृत्त होती है, यह उसकी भावुकता तथा ह्रदयदौर्बल्य का उदाहरण है।

1– रत्नावली 2 : 10
2– रत्नावली डॉ0 राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ 59
3– रत्नावली " " द्वितीय अंक पृष्ठ 94
4– रत्नावली " " तृतीय अंक पृष्ठ 164

सागरिका का अपने वंश के प्रति बड़ा आदरभाव है। वह दासी भाव में वर्तमान है। इस अवस्था में यदि किसी पर उसका कुल प्रकट हो जायेगा तो उसके वंश का अनादर होगा, इसका वह सदा ध्यान रखती है। उसकी प्रिय सखी सुसंगता भी जब उससे इस प्रसंगा में पूछती है तो वह अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ दुखी हो जाती है तथा मौन हो जाती है।[1] स्पष्ट है कि वह अपने वंश को छिपाती है जिससे उसकी महत्ता पर कोई आँच न आवे।

निःसंदेह सागरिका अप्रतिम सुन्दरी, मुग्धा नायिका है। वह राजा के रूप–गुण पर अनुरक्त है अत्यन्त भावुक ह्रदया है।

वासवदत्ता :— वासवदत्ता महासेन प्रद्योत की पुत्री तथा वत्सराज उदयन की पट्टमहिषी है। प्रियदर्शिका तथा रत्नावली, दोनों ही नाटिकाओं में वह ज्येष्ठा नायिका है। दोनों में उसकी चरित्रगत विशेषताएं समान है।

वासवदत्ता राजा से अत्यधिक प्रेम करती है यही कारण है कि राजा भी उससे अपार प्रेम करता है। उसके मान करने पर राजा उसके पैरों पर गिरकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास करता है।[2] क्योंकि वह जानता है कि प्रकृष्ट प्रेम से गिरना असहाय होता है अर्थात यदि मेरे प्रेम में कोई अन्तर आया तो वासवदत्ता जीवित न रह सकेगी–

प्रिया मुन्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति।।[3]

यद्यपि राजा के प्रति उसके ह्रदय में अत्यन्त प्रगाढ़ प्रीति है। तथापि उसे यह कदापि सहन नही कि कोई दूसरी स्त्री राजा के प्रेम की अधिकारिणी बने। इसलिए वह राजा पर बिगड़कर रूठकर चली जाती है, किन्तु उसका प्रेमी ह्रदय उसे चैन से नही रहने देता। वह सोचती है– मैने राजा को

1– रत्नावली डॉ0 राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अक पृष्ठ 182
2– (अ) रत्नावली 3 : 14
   (ब) प्रियदर्शिका 3 : 13
3– रत्नावली 3 : 15

उस स्थिति मे छोड़ दिया, यह अच्छा नहीं है, चलूँ उनके पीछे से जाकर उनके गले से लिपटकर उनको मना लूँगी।[1] प्रणय की कितनी कोमल मनः स्थिति है। वासवदत्ता का ह्रदय अत्यन्त उदार एवं दयालु है। वह परिस्थिति वश भले ही किसी के प्रति कठोरता का बर्ताव करें, किन्तु उसका यह भाव समयानुकूल परिवर्तित हो जाता है। उसने अरण्यका एवं सागरिका के अविनयो को असहय मानकर ही बन्दीगृह में डाला। परन्तु अरण्यका के विषपान की खबर तथा सागरिका को अग्नि से घिरा जानकर, उसका ह्रदय द्रवित हो जाता है और वह उसकी रक्षा के लिए राजा से निवेदन करती है। वासवदत्ता को उनके प्रति किये गये अपने कठोर बर्ताव का पश्चात्ताप है।[2]

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रियदर्शिका व रत्नावली में वासवदत्ता खण्डिता नायिका, के रूप में चित्रित की गयी है। राजा की अन्य स्त्री में अनुरक्ति देखकर वह क्रोधित अवश्य होती है। परन्तु उसका यह क्रोध कुलीनता के अनुकूल है। नारी की सहज प्रवृत्ति के अनुरूप ही उसमें कोप का निवेश है। वासवदत्ता निष्ठा सहजता एवं कुलीनता का परिचायक है। राजा की पर स्त्री पर अनुरक्त होते हुए भी वह कहीं पर भी राजा के प्रति अमर्यादित शब्दों का प्रयोग नहीं करती। क्रोध में भी वह मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखती है। राजा उदयन स्वयं उसके विनय युक्त कोप चर्चा करते है।[3]

वासवदत्ता उच्च राजवंशोत्पन्न राजकुमारी है। यह उसकी कुनीलता ही है कि अरण्यका एवं सागरिका को अपने रिश्ते की बहन जानकर स्वयं अपने हाथों से राजा को सौंप देती है। नाटिका में यत्र तत्र उसमें नारी सुलभ ईर्ष्या का भी दर्शन होता है, परन्तु उसका यह भाव उसके चरित्र के अनुरूप

1– रत्नावली डॉ0 राजेश्वर शास्त्री तृतीय अक 171
2– (अ) प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 101–102
(ब) रत्नावली डॉ0 राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ 230
3– स्निग्धं यद्यपि ....स्फुटं लक्ष्यते। प्रियदर्शिका 3 : 13

ही है प्रतिरूप नही। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वासवदत्ता एक उत्कृष्ट प्रेमिका, आदर्श पत्नि, उदार सौत तथा दयालु प्रकृति की रानी है।

तापसवत्सराजचरितम् में–

वासवदत्ता –

वासवदत्ता 'तापसवत्सराज चरितम् की प्रधान नायिका है। नाटककार ने उसमें कुछ ऐसी विशेषताओं का निवेश किया है जो उदयन कथानक पर आधारित अन्य रूपकों से उसे पृथक करती है।

नाटक में नायिका को मंत्रियों की योजना की सम्पूर्ण जानकारी है। उसको विश्वास में लेकर ही मंत्री अपनी कार्य सिद्धि कर सके हैं। पतिपरायण वासवदत्ता सदा अपने पति की उन्नति के बारे में तत्पर रहती है। इसका प्रेम उदयन की उन्नति के लिए है, न कि अवनति के। इसीलिए जब मन्त्रीगण उसके समक्ष राष्ट्र की विपत्ति को आगे करके उससे महान् त्याग की अपेक्षा करते हैं।[1] पति से दीर्घकाल तक वियुक्त रहने की कल्पना से वह विचलित सी हो उठती है। किन्तु, राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए वह शीघ्र ही अपने आपको सँभाल लेती है।[2] नाटककार ने यहाँ पर बड़ी ही कुशलता से वासवदत्ता के ह्दय की कोमलता एवं दृढ़ता को सामने रखने का प्रयास किया है और उसके ह्रदयगत व स्नेह व सौजन्य की रक्षा की है। राष्ट्र के हित एवं पति के कल्याण के निमित्त न सिर्फ वह महान त्याग करती है। अपितु उस त्याग की पृष्ठिभूमि में मन्त्रियों की योजना को सफल बनाने हेतु कटिबद्ध है। चतुर्थ अंक में राजा को देखकर उसकी हर्ष निर्भरता पर जब सांकृत्यायनी योजना की विफलता की आशंका व्यक्त करती है तो वह बड़ी दृढ़ता से कहती है– नास्मि तादृशी, विश्रब्धा भव'[3] अर्थात् मै ऐसी दुर्बल नहीं हूँ, निश्चिन्त रहो। उसका अगाध प्रेम कभी भी उसके कर्तव्य

1– तापसवत्सराजचरितम् 1 : 7

2– तापसवत्सराजचरितम् 2 : 1

3– तापसवत्सराजचरितम् चतुर्थ अंक पृष्ठ 138

बोध में बाधक नहीं बन पाया। उसके इस धैर्य आरैर संयम की प्रशंसा करते हुए सांकृत्यायनी कहती है–

दयितं विलोकयन्ती तद्गतमनसोऽपि हस्तगतमस्याः।
अन्तर्नियमित दुःखा न मगानपि विकृतिमायाति।।[1]

वासवदत्ता में अपरिमित सहिष्णुता का भाव है। नाटक में ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब वह अपने मन के किसी भाव को भय या आशंका से व्यक्त कर सकती है। पर आश्चर्य है कि उसके मुँह से कहीं भी ऐसी बात नही सुनते। वह वियोग व्यथा को बड़ी ही शान्ति से सहन करती है तथा वह किसी से कोई शिकायत नहीं करती। पद्मावती को उदयन के प्रति उसके प्रेम के लिए सांत्वना देना, वासवदत्ता के धैर्य एवं सहिष्णुता का ही परिचायक है।

वासवदत्ता को अपने पति उदयन से असीम प्रेम है। वह एक सच्ची भारतीय नारी है जो अपने पति के कल्याणार्थ स्वयं अनेक कष्टों को सहन करती है। एक पतिव्रता स्त्री की भाँति ही वह स्वयं पति के जीवन पर्यन्त ही जीवित रहना चाहती है। लावणक के अग्निदाह की चर्चा करते हुए पद्मावती जब 'वह राजा भी उस अग्नि में' इस वाक्य के मध्य में रूक जाती है। तो वासवदत्ता उस शेष वाक्य में राजा के अनिष्ट की सूचना से आशंकित हो जाती है।[2] उसके जीवित बचने की सूचना से भी वह करूणार्द्र ले जाती है। वासवदत्ता का स्वभाव उदात्त भावनाओं से ओत प्रोत है। पद्मावती के प्रति उसमें रंचमात्र भी ईर्ष्या भाव नही है। युवती पद्मावती को यौवन का सुखभोग करा त्यागकर तापसवेश में देखकर उसे बड़ा कष्ट होता है। वह उसके प्रेम की प्रशंसा करती है। तथा उसकी प्राप्ति के लिए उसे सांत्वना भी देती है। उद्यान में उसने पद्मावती के प्रति जो सहानुभूति दिखायी तथा 'ममाप्ययत्र सन्देहोऽस्त्येव'[3]

1– तापसवत्सराज चरितम् 3 : 8
2– तापसवत्सराज चरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 75
3– तापसवत्सराज चरितम् चतुर्थ अंक 134

कहकर जो सत्य प्रकट किया उसी के लिए सांकृत्यायनी ने प्रशंसा करते हुए कहा 'साधु वत्से साधु एवं व्याहरन्त्यात्वयैव प्रतिष्ठापिते वत्सराजः।[1]

पद्मावती के प्रति उसका स्नेह कितना स्वच्छ एवं ईर्ष्याहीन है। छठे अंक में जबकि वह आत्मदाह के लिए तत्पर है और उसकी सखी कांचनमाला इस विपत्ति के लिए पद्मावती को भी दोषी ठहराने की भावना से कहती है– '' देवि पद्मावत्यपि देव्याः दुःखमुत्पादयति, सा ध्रुवं तव लाभ निमित्तमेव परिणीता इति श्रूयते[2] तो वासवदत्ता तुरन्त ही उसको सावधान करती हुयी कहती है– अपेहि। किमत्र पद्मावत्या न किंचित् अहं भणितव्या। वह अपनी विपत्ति के लिए पद्मावती को कही भी दोषी नही समझती है।

नाटक के अन्त में जब पद्मावती को उसकी वास्तविकता का पता लगता है तो उससे क्षमा याचना के लिए उसके पैरो पर गिर पड़ती है। इस पर वासवदत्ता बड़े स्नेह से उसे उठाकर अपने गले लगा लेती है और कहती है– अयि महानुभावे! उतिष्ठ, सखी एव अहम, मा मामन्यथा संभावय।[3]

वासवदत्ता में राजनीतिक सूझ बूझ के साथ–साथ बुद्धि एवं दूरदर्शिता के गुण भी दिखायी देते है। चारित्रिक दृढ़ता। विचारशीलता, आत्मत्याग एवं सुदृढ़ प्रेम जैसे गुण उसमें सहजात से लगते है। यद्यपि इस नाटक में नाटककार का ध्यान विशेष रूप से नायक के चित्रण पर ही अधिक केन्द्रित रहा है फिर भी हम देखते है कि वासवदत्ता अपने जन्मजात गुणों एवं उदात्त चरित के कारण नाटक में एक महत्वपूर्ण अधिकारिणी बन जाती है। उसका निश्चल स्नेह व त्याग ही उसे महानता प्रदान कर देता है।

कवि ने नायिका को ह्रदय तथा बुद्धि दोनो ही दृष्टियों से उन्नत एवं उदात्त रूप में प्रस्तुत करने में कोई कसर नही छोड़ी है। गर्वहीन स्वाभिमान, वासनाहीन प्रेम, दुर्बलताहीन सरलता, स्वभाविक नारी गत माधुर्य

1– तापसवत्सराज चरितम् चतुर्थ अंक पृष्ठ 135
2– तापसवत्सराजचरितम्षष्ठ अक पृष्ठ 208
3– तापसवत्सराजचरितम् षष्ठ अक पृष्ठ 215

चारित्रिक दृढ़ता एवं दूरदर्शिता सभी ने सम्मिलित रूप से उसके रूप ओर चरित्र को सामान्य नायिका के स्तर से बहुत ऊपर उठा दिया है।

पद्मावती – पद्मावती मगधराज दर्शक की बहिन तथा 'तापसवत्सराजचरितम्' की उपनायिका हैं वह युवती तथा अत्यन्त सुन्दरी है। उसका असीम सौन्दर्य अवर्णनीय एवं अनुपम है। तभी तो वासवदत्ता उसे देखते ही कह उठती है। 'ईदृश्या रूपयौवनसम्पत्या:' इसी प्रकार राजा भी उस तपस्विनी के सौन्दर्य राशि को देखकर आश्चर्य चकित हो जाता है तथा उसके सन्दर्भ में अनेक उद्भावनायें कर डालता है। कभी वह उसे साक्षात रति कहता है, कभी वन देवता और कभी शरीरिणी तपश्श्री–पद्मावती का ह्रदय अत्यन्त कोमल एवं भावुक है। यौगन्धरायण के चले जाने पर वासवदत्ता को रोती देखकर वह स्वयं भी रोने लगती है। वह अपने दुःख को स्वयं ही सब लेना चाहती है। किसी को बताकर दुःखी नही करना चाहती। वासवदत्ता के द्वारा प्रव्रज्या धारण करने का कारण पूछे जाने पर कहती है– किं तव एतेन ज्ञातेन, अवश्यमेतत् प्रियसंख्या दुःखमुत्पादयति। लेकिन साथ ही सखी के अनुरोध को भी नहीं टाल सकती । वह उसके समक्ष झुक जाती है और अपने ह्रदय का सारा रहस्य प्रकट कर देती हैं।

वह एक शुद्ध ह्रदया प्रेमिका के रूप में ही हमारे समक्ष उपस्थित होती है। प्रेम के कठिन मार्ग पर चरण बढ़ाकर फिर पीछे हटना उसको नही आता। उसकी दृढ़ आस्था है कि ह्रदय दान केवल एक बार ही हो सकता है उसमें पुनर्विचार के लिए कोई अवकाश नही। उसका ह्रदय एक बार उदयन के गुणों पर अनुरक्त हो गया तो फिर उदयन का विराग भी उसे विरक्त न कर सका। उसके तापस बनते ही वह भी प्रेम योगिनी बन गयी। उसके तापस वेष धारण किये जाने का कारण पूछने पर वह वासवदत्ता के कहती है– 'तस्मिन् गुणानुरागदुर्ललितेन निक्षिप्तास्म्येतने ह्रदयेन।

पद्मावती का कोमल ह्रदय अपने प्रणय की अवज्ञा को नही रह

पाता। जिस प्रिय के लिए उसने राजसी वैभव त्याग कर तापसवेश धारण किया, वही प्रियतम उसके प्रेम की उपेक्षा कर रहा है। इससे दुःखी वह अपना प्राणत्याग देना चाहती है परन्तु विजय प्रेम की होती है और राजा स्वयं उससे प्रेम निवेदित करता है–

विसृज पाशमिमं कुरू में प्रियं
प्रणयमेकमिमं प्रतिमानम।
असहने किमिदं क्रियते त्वया,
प्रणयवानयस्मि तवागतः।।

उसका प्रेम असहिष्णु नही है। राजा के द्वारा स्पष्ट शब्दों में वासवदत्ता के प्रति अपने प्रेम के दृढ़ बन्धन के कारण उसकी उपेक्षा किये जाने की बात सुनकर वह उसके प्रेम की दृढ़ता की प्रशंसा ही करती है। 'अहो, स्थिर– सौहृद एष इति, अतएव में एतस्योपरि अभिनिवेशः'। राजा की वासवदत्ता विषयक आसक्ति उसे विचलित नहीं करती। उसके धैर्य और त्याग की प्रशंसा करते हुए विदूषक कहता है– " अहो महानुभावायाः धीरत्वं हृदयस्य"।

पति के स्वार्थ निमित्त वह नारी जीवन की सबसे बड़ी साधों का बलिदान करती रही। राजा स्वयं भी उसके इस अभूतपूर्व बलिदान से अप्रभावित नही रह सका।

विस्रम्भान्न विसर्पितं न च मनो निर्यन्त्रणं मन्त्रितुं
व्यावृत्तापि विवर्तिता न शयने वाष्पं त्यजन्ती शनैः।
मामुदिश्य तथानया व्यवसितं तत्रोपरूद्धं शुचा
कष्टं केवलमेव राजतनया दग्धा वराकी मया।।

नाटक में पद्मावती के मौन बलिदान का प्रतिदान कहीं चित्रित नही है। अर्थात् वह राजा के प्रेम से वंचित ही दिखती है। उसमें अतिथिसत्कार की भावना भी दिखायी देती है। नारी हृदय की स्वाभाविक

प्रतिक्रिया एवं संघर्ष का उन्मुक्त रूप उसमें नही है पर जो दृढ़ता एवं धैर्य उसमें देखा गया है वह सामान्य नारी में दुलर्भ है।

नायिका की सहायिकाएं— जिस प्रकार नायक को अपनी अभीष्ट प्राप्ति के लिए सहायकों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार नायिका सहायिकाएं भी नायिका की अर्थ सिद्धि में सहायक होती है। इन्हें दूती कहते है। ये दूती दासी, सखी, कारू, धाय की लड़की, पड़ोसिन, बालिका, शिल्पिनी, धोविन, नाइन, रंगरेजिन अथवा स्वयं नायिका होती है।[1]

दूती कलाओं में निपुण, उत्साह, भक्ति, परिचित ज्ञान स्मृति तथा मधुरता से युक्त, नर्म निपुण और बोलचाल में चतुर होती है। उनके ये गुण ही दूती गुण कहे जाते है। ये दूतियां भी अपनी—अपनी विशेषताओं के कारण उत्तम, मध्यम ओर अधम इन तीनो श्रेणियों में विभक्त देखी जाती है।[2]

उल्लेखनीय है कि जैसे उपर्युक्त दूतियाँ नायिकाओं द्वारा नायकों के पास भेजी जाती है। वैसे ही नायकों द्वारा नायिकाओं के पास भी भेजी जाती है।

समीक्ष्य ग्रन्थ प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासवदत्तम प्रियदर्शिका रत्नावली, तथा तापसवत्सराजचरितम् में इस प्रकार के चरित्रों को देखा जा सकता है। प्रतिज्ञायौग्न्धरायण में विजया का उल्लेख वत्सराज की प्रतिहारी के रूप में हुआ है।

स्वप्नवासदत्तम् में पद्मावती की सेविकायें पद्मनिका मधुकरिका व चेटी, तथा वासवदत्ता की धाय धात्री व प्रतिहारी विजया के वर्णन साथ—साथ कुंजरिका नामक पद्मावती की सेविका का नामोल्लेख होता है। ये सभी पात्र नायिकाओं के सहायिका के रूप चित्रित है।

प्रियदर्शिका सांकृत्यायनी वासवदत्ता की सखी तथा कवयित्री है।

1—(अ) साहित्यदर्पण व्याख्या डॉ0 सत्यव्रत सिंह तृतीय परिच्छेद श्लोक 128
(ब) दशरूपक द्वितीय प्रकाश सूत्र 46
2— साहित्य दर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह तृतीय परिच्छेद श्लोक 129 — 130

प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे सहायिका स्त्री पात्र–

अंगारवती–प्रतिज्ञायौगन्धरायण का नायक यौगन्धरायण है। अतः वासवदत्ता को नाटक की नायिका मानना उचित नही होगा। हां वासवदत्ता और उदयन इस नाटक के केन्द्र मे रहते है। यह बात अलग हैं कि वे मंच पर दिखायी नही देते। इसी प्रकार से अंगारवती का चरित्र भी नाटक मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह महासेन प्रद्योत की प्रट्टमहिषी है। पुत्री वासवदत्ता को वह असीम प्रेम करती है। मातृह्रदय की स्वाभाविक कोमलता उसमें सर्वत्र दिखायी देती हैं। वह अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर चाहती है। उसे पुत्री के विवाह की चिन्ता तो हैं किन्तु उसके वियोग की कल्पना से वह दुःखी हो जाती है। वह महासेन से कहती हैं कि इसका विवाह करना मुझे स्वीकार है किन्तु स्नेहाधिक्य के कारण वियोग मुझको कष्ट दे रहा है–अभिप्रेतं में प्रदानं । वियोगो मां सन्तापयति।[1] वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध मे वह महासेन से कहती है–न सन्तप्यामहे, तत्र दीयताम्।[2] रानी अंगरवती वत्सराज उदयन के गुणों पर लुब्ध है और उसे वासवदत्ता के लिए उपयुक्त वर मानती है। इसीलिए वह महासेन से कहती है कि अभी जल्दी मत करिये, मेरी बेटी अभी छोटी है– अलमिदानीं त्वरित्वा । बाला में दारिकां।[3]

वह एक वात्सल्य ह्रदया माँ होंने के साथ–साथ एक स्वाभिमानिनी रानी है। उसे जब वासवदत्ता के अपहरण की सूचना मिलती है तो वह आहत हो जाती है और महल से कूदकर प्रणान्त कर लेना चाहती हैं किन्तु प्रद्योत के समझाने पर वह उदयन वासवदत्ता के गन्धर्व विवाह को स्वीकार कर लेती है।

स्वप्नवासवदत्तं में सहायक स्त्री पात्र :–

<u>**तापसी**– तापसी का दर्शन नाटक के प्रथम अंक में होता हैं जो तापोवन में</u>

1-- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अक पृष्ठ 52
2– " " " " द्वितीय अक पृष्ठ 54
3– " " " " द्वितीय अंक पृष्ठ 69

रहती है। उसका व्यवहार अत्यन्त मृदु है। राजकुमारी पद्मावती का आश्रम में आने पर वह अत्यन्त मधुर एवं वात्सल्यपूर्ण शब्दों से स्वागत करती है तथा मातृत्व भाव से वशीभूत होकर उसके लिए सुयोग्य वर की कामना करती है। तापसी अत्यन्त बुद्धिमती है। वासवदत्ता को देखकर उसकी आकृति से ही उसके राजवंश से सम्बन्धित होने का तुरन्त अनुमान लगा देती है—'या ईदृश्यस्या आकृतिःइयामपियि राजदारिकेति तर्कयामिं।'[1] तपः पूता तापसी को सत्य अभिप्रेत है कंचुकी जब यौगन्धरायण की याचना को स्वीकार करने में हिचकिचाता है, किन्तु पदमावती अपनी घोषणा के अनुरूप उसकी याचना स्वीकार कर लेती हैं। उसकी इस सत्यावादिता पर तापसी अत्यन्त प्रसन्न होती है और उसे आशीर्वाद वाद देती है—चिरं जीवदु भद्दे ![2] अतः कहा जा सकता हैं कि तापसी का चरित्र प्रभावोत्पादक है।

प्रियदर्शिका तथा रत्नावली में सहायक स्त्री पात्र—

सांकृत्यायनी— प्रियदर्शिका नाटिका में सांकृत्यांयनी एक कवियित्री है जो अपनी रचनाओं द्वारा वासवदत्ता. का मनोविनोद करती है। वासवदत्ता के मनोविनोदार्थ रचे गये उदयनचरितम् नामक नाटक, नाटिका के कथानक को गतिशील बनाने मे पूर्णतः सहायक है। उसके इस नाटक का मंचन नायक उदयन व नायिका अरण्यका के सामागम तथा जेष्ठा नायिका वासवदत्ता के क्रोध का कारण बनता है। उसमें एक श्रेष्ठ कवयित्री के समस्त गुण विद्यमान है। अन्य कवियों के समान ही उसने भी उदयन के कथानक को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए, अपनी कल्पना से कुछ परिवर्तन कियें है।[3]

सांकृत्यायनी को शास्त्रों का भी ज्ञान है। गर्भाक नाटक में नायक द्वारा नायिका का हाथ पकड़े जाने पर वासवदत्ता लज्जावश जाने का उपक्रम करती है तो सांकृत्यायनी उसे रोकते हुए कहती है कि राजा पुत्री यह

1— स्वप्नवासवदत्तम व्या० डॉ० गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 29
2— स्वप्नवासवदत्तम व्या० डॉ० गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 27
3— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 69

धर्मशास्त्रानुमोदित गान्धर्व विवाह है, उसमें लज्जा का कहाँ स्थान है– राजपुत्रि, धर्मशास्त्रविहित एष गन्धर्वो विवाहः। किमत्र लज्जास्थानम । प्रेक्षणीकमिदम्। तन्न युक्तमस्था ने रसभंग कृत्वा गन्तुम।

वासवदत्ता की अपेक्षा वह उदयन के स्वभाव से अधिक परिचित है। माता अंगारवती द्वारा प्रेषित पत्र को पढकर वासवदत्ता उदयन के प्रति निराश होकर, इस विषय में उदयन की उदासीनता की ही पुष्टि करती है। किन्तु सांकृत्यायनी को विश्वास है कि वत्सराज इस सन्दर्भ मे निश्चित नहीं रहेंगें–'राजपुत्रि ! अलमुद्वेगेन। नेदृशो वत्सराजः कथमित्थंगतमपि भवत्या मातृष्व सृपतिं विज्ञाय वत्सराजो निश्चिन्त्तं स्थास्यति[1]

उदयन अरण्यका के प्रेम सन्दर्भ से वह पूर्णतः परिचित है। तथापि वासवदत्ता को धैर्य बंधाते हुए वह कहती हैं कि महाराज ने कौमुदी महोत्सव के अवसर पर तुम्हें हंसाने के लिए ही उस प्रकार की क्रीडा रची थी, उसमें वास्तविकता नहीं है – 'तेन ननु कौमुदीमहोत्सवे त्वां हासयितुं तथा क्रीडितम् ।[2] वह अरण्यका को बन्दी बनाये जाने के पक्ष में नही है इस प्रकार सांस्कृत्यायनी का चरित्र नायक तथा नायिका दोनो के सहायक पात्र के रूप में चित्रित हुआ है, जो कथाक्रम को गति देता है।

मनोरमा तथा इन्दीवरिकाः– मनोरमा तथा इन्दीवारिका वासवदत्ता की दासी है। दोनो के स्वभाव में पर्याप्त अन्तर है। इन्दीवरिका की अपेक्षा मनोरमा अधिक उदात्त है। वह अरण्यका की अभिन्न सखी है। तथा प्रत्येक स्थिति में उसका साथ निभाती है। अरण्यका की उदयन पर अनुरक्ति जान कर वह विदूषक के साथ मिलकर राजा व अरण्यका के मिलन की योजना बनाती है, तथा सम्पादित कराती है।[3]

1– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 83
2– " " " पृष्ठ 84
3– " " तृतीय अंक पृष्ठ 50

अरण्यका के कामपीड़ित हो जाने पर वह उसे तरह–तरह से प्रिय मिलनको आश्वस्त करती है। वह कहती है कि यदि महाराज ने तुम्हें देख लिया है तब सन्ताप करना व्यर्थ हैं, वह खुद ही अब दर्शन के उपाय के लिए वेचैन होंगे क्योंकि–कमलिनी बद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनव रसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासद्यस्थितिं करोति।[1] अरण्यका मनोरमा को अत्यन्त विश्वस्त मानती हैं और उसे अभिन्नहृदया सखी कहती है। इन्दीवरिका वासवदत्ता के प्रति अधिक निष्ठा रखने वाली है। इसीलिएं उपवन में भ्रमर परित्राण के सन्दर्भ में अरण्यका से राजा के मिलन के अवसर पर इन्दीवरिका के आ जाने पर राजा व विदूषक इस अभिप्राय से छिप जाते है। कि यदि उसने उन्हें यहाँ देख लिया तो यह रहस्य रानी से कह देगी।[2] इसी प्रकार तृतीय अंक में रंगशाला से जाती हुयी वासवदत्ता का ध्यान द्वार पर सो रहे विदूषक की ओर दिलाती है।[3] जिसके फलस्वरूप अरण्यका–उदयन मिलन मे व्यवधान उपस्थित होता है कुल मिलाकर ये दोनो ही पात्र कथानक को गति प्रदान करते है।

सुसंगता– सुसगता वासवदत्ता की परिचारिका तथा सागरिका की प्रिय सखी हैं वह सरगरिका के सुख दुःख में सदा साथ निभाती हैं। कामपीडित सागरिका को वह ही धैर्य बँधाती है।[4] सुसंगता चित्रकला में बहुत निपुण है। वह सागरिका द्वारा बनाये गये चित्रफलक में चित्रित उदयन के बगल में सागरिका का सुन्दर चित्र बना देती है। सागरिका की उदयन में अनुरक्ति जानकर चित्रफलक को लेने के व्याज से उदयन और सागरिका का प्रथम साक्षात्कार सुसंगता ही कराती हैं।[5] जिसके फलस्वरूप राजा सागरिका पर हृदय हार

1– प्रियदर्शिका	रामचन्द्र मिश्र	तृतीय अंक	पृष्ठ 45
2– "	"	द्वितीय अंक	पृष्ठ 37
3– "	"	तृतीय अंक	पृष्ठ 71
4– रत्नावली	"	द्वितीय अंक	पृष्ठ 61
5– रत्नावली	डॉ0 राजेश्वर शास्त्री	द्वितीय अंक	पृष्ठ 109
6– रत्नावली	डॉ0 राजेश्वर शास्त्री	तृतीय अंक	पृष्ठ 126

जाता है। वह प्रिय सखी सागरिका तथा राजा के मिलन हेतु तत्पर दिखती है, तथा विदूषक के साथ मिलकर वेष विपर्यय[6] द्वारा उनके संगम की योजना बनाती है। योजना के सफलीभूत उनका मिलन होता ही है कि अचानक वासवदत्ता आ जाती है।

सुसंगता अत्यन्त भावुक हृदया तथा उदात्त भावना वाली है। सागरिका के बन्दी बनाये जाने से वह अत्यन्त दुःखी हो जाती है। और उसके दुर्भाग्य को कोसती है। वह सागरिका के बन्दी बनाये जाने की सूचना विदूषक को देती है। द्वितीय एवं चतुर्थ अंक में आये इस पात्र की भूमिका कथानक के विस्तार व उसे गतिशील बनाये रखने में अत्यन्त सहायक है।

कांचनमाला— कांचनमाला वासवदत्ता की परिचारिका है जिसे वह अपने पितृगृह से लायी है। रानी का उस पर अत्यन्त विश्वास है और वह भी रानी पर अत्यन्त अनुराग एवं निष्ठा रखती है तथा स्वप्न में भी रानी के अन्ष्टि की कामना नहीं करती।

रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में सुसंगता एवं विदूषक द्वारा बनायी गयी, राजा, सागकिा मिलन की योजना का उसे ज्ञान[1] हो जाता है, जिसे तुरन्त रानी से निवेदन करती है। और रानी मिलन हेतु निर्धारित स्थान पर स्वयं उपस्थित हो जाती है। स्वामिनी के प्रति असीम निष्ठा उसके चरित्र का महान गुण है। उसका यह भाव दोनों ही नाटिकाओं में सर्वत्र दिखायी देता है। रत्नावली में तो उसका चरित्र पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है।

तापसवत्सराजचरितम् में सहायक स्त्री पात्र—

सांकृत्यायनी— सांकृत्यायनी एक सन्यासिनी है। यौगन्धरायण की योजना के अनुरूप वह वत्सराज उदयन का चित्र लेकर राजगृह जाती हैं, और पदमावती को उसका चित्र दिखाकर तथा उसका अनेकशः गुणगान करके पद्मावती को उदयन की ओर आकर्षित कराने का प्रयत्न करती है। फलस्वरूप पद्मावती

1— रत्नावली डॉ0 राजेश्वर शास्त्री — चतुर्थ अंक पृष्ठ 178
2— तापसवत्सराजचरितम् — 4 : 5 — 6

का ह्दय उदयन पर अनुरक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त बुद्धिमती तथा गुण ग्राहिणी है। वह मन्त्री यौगन्धरायण की कर्तव्यपरायणता[2] एवं वासवदत्ता के धैर्य [1] की प्रशंसा करती है। अनंगहर्ष ने इस पात्र के माध्यम से पद्मावती के चित्त को आकर्षित कराने की सर्वथा नवीन कल्पना की है।

इसके अतिरिक्त नाटक में मालतिका (वासवदत्ता की सेविका), कोसलिका (पदमावती की सेविका), कांचनमाला (वासवदत्ता की सखी), आदि नारी पात्रों का चित्रण हुआ है, जो नाट्कीय विधान के सर्वथा अनुरूप है।

प्रतिनायक तथा प्रतिनायिका निरूपण :—

प्रतिनायक— नायक की फलप्राप्ति मे विघ्न डालने वाला प्रतिनायक कहलाता है। प्रतिनायक का अभिप्राय मुख्य नायक के प्रति पन्थी विरूद्ध नायक का है। बिना 'प्रतिनायक' चरित के चिव्रण के नायक चरित का सौदर्य नही चिव्रित किया जा सकता । संस्कृत काव्य मे नायक का चरित प्रतिनायक के चरित की प्रतिस्पर्धा मे चिव्रित किया जाया करता है। इस सन्दर्भ मे दशरुपककार का कथन है कि 'लोभी' धीरोद्धत, स्तब्ध (कठोर, आग्रही) पाप करने वाला तथा व्यसनी व्यक्ति (प्रधान नायक), का शव्रु प्रतिनायक होता है।[2] साहित्यदर्पण मे भी इसी भाव की परिभाषा की गयी है।[3]

समीक्ष्य ग्रन्थो मे से 'प्रतिज्ञा'यौगन्धरायम मे नायक यौगन्धरायण के प्रतिद्वन्दी के रुप मे उज्जयिनी नरेश महासेन का चरिव्र उभरता है। अत प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रतिनायक के रुप मे महासेन प्रद्योत के चरित्र को लिया जा सकता है।

प्रतिनायिका— प्रतिनायिका के चरित्र को प्रतिनायक के समकक्ष रखा जा सकता है। जिस प्रकार प्रतिनायक, नायक की फलप्राप्ति में बाधक होता है। उसी प्रकार प्रतिनायिका, नायिका की फलप्राप्ति में बाधक होती है। समीक्ष्य

1— तापसवत्सराजचरितम् चतुर्थ अंक पृष्ठ 135

2— दशरूपक 2 : 9

3— धीरोद्वतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः।
साहित्यदर्पण व्या0 डॉ0 सत्यव्रत सिंह पृष्ठ 198

ग्रन्थो–प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासदत्तं प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवत्सराज चरितम् में प्रतिनायिका के चरित्र का पूर्णतः अभाव है।

रूपकों में पात्र संयोजन की मूल प्रवृत्तियाँ :– वासवदत्ता कथाश्रित रूपको– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासदत्तम् प्रिय दर्शिका रत्नावली एवं तापसवत्सराज चरितं में पात्र संयोजन के विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष ने सर्वथा अपनी कथावस्तु के अनुरूप ही पात्रों का चयन किया है। यद्यपि उदयन इन सभी रचनाओं का प्रमुख पात्र है तथापि इन तीनो नाटककारों ने उसे अपनी रचनाओं में भिन्न भिन्न स्वरूप प्रदान किये है। उदयन ही नही अपितु वासदत्ता यौगन्धरायण तथा विदूषक जैसे महत्वपूर्ण पात्रों की चरित्रिक विशेषताएं भी तीनों की कृतियों में भिन्न–2 है।

वत्सराज उदयन तीनों नाटककारों की इन कृतियों के कथावृत्त का केन्द्र बिन्दु है। किन्तु तीनों की कृतियों में उसका भिन्न–2 स्वरूप देखने को मिलता है। भास ने उदयन को "धीरोदात्त" नायक के गुणो से विभूषित है किया है, तो हर्ष उदयन को, प्रणयकथा पर, आधारित नाटिकाओं में धीरललित नायक की कोटि में लाकर खड़ा कर देते है। यद्यपि अनंगहर्ष ने भी तापसवत्सराज के नायक उदयन को धीरोदात्त की कोटि में रखने का प्रयत्न किया है, किन्तु वे उसमें उन गुणो का निवेश करने में असमर्थ ही रहें है जो उसे धीरोदात्तता की कोटि में स्थिर रख सकें। इस नाटक में नायक राजा उदयन की वासवदत्ता विषय से अतिरिक्त अन्य समस्त विषयों से पराङ्मुखता ही दिखाई देती है। जहां भास का उदयन भावुकता के साथ–साथ दाक्षिण्यता से भी युक्त है वही अनंगहर्ष का उदयन भावुक प्रेमी के रूप में जगह–जगह पर पत्नी वासवदत्ता की स्मृति में तड़पता व आसूँ बहाता रहता है। हर्ष के इस पात्र की स्थिति तो दोनो नायिकाओं के मध्य दोलायमान रहती है।

नायिका चित्रण में भी तीनें ही नाटककारों की प्रवृत्ति भिन्न–2 रही है। भास व अनंगहर्ष ने वासवदत्ता को सपत्नी डाह से रहित, त्यागपरायण, पति

परायणा राष्ट्रपरायणा तथा आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित किया है, जबकि हर्ष, वासवदत्ता को नारी सुलभ ईर्ष्या से युक्त तथा पति को सुन्दर बालाओं से दूर रखने की चेष्टा करने वाली विशुद्ध प्रेमिका के रूप में चित्रित करते है।

भास तथा अनंगहर्ष की वासवदत्ता का चरित्र अत्यन्त भावना पूर्ण है। त्याग की वह प्रतिमूर्ति है। अपने पति के अभ्युदय के लिए वह लावणक दाह के बहाने स्वयं दूर हो जाती है और अनेक कष्टसहती है। दोनो ही रूपको में वह सपत्नी पद्मावती के प्रति सहृदय रहती है। बल्कि गम्भीरता से दृष्टि डालें तो तापसवत्सराज की वासवदत्ता, स्वप्नवासवदत्तं की वासवदत्ता से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। हां हर्ष ने जरूर उसमें नारी सुलभ ईर्ष्या, मान आदि का निवेश किया है परन्तु उसके यह गुण उसकी कुलीनता के ही द्योतक हैं।

पद्मावती अत्यन्त कोमल भावों से युक्त युवती है। उसको विशुद्ध प्रेमिका के रूप में तो तीनों ही नाटककारों ने चित्रित किया है फिर भी कुछ विशेषताओं के साथ तीनों की पद्मावती में भिन्नता पायी जाती है। भास की पद्मावती उदयन के गुणो पर मुग्ध, तदन्तर उसकी शुद्धहृदया पत्नी है। जो उदयन के वासवदत्तगत प्रेम पर कभी कटाक्ष नही करती। हर्ष की पद्मावती सागरिका दासी के रूप में प्रच्छन्न है। वह वेष बदलकर राजा से अभिसरण को जाती है। इस रूप में वह भास की पद्मावती से न्यून ही ठहरती है। पद्मावती के चरित्र के सन्दर्भ में अनंगहर्ष सबसे श्रेष्ठ ठहरते है। उनकी पद्मावती में प्रेम का अगाध सागर देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप वह राजसी वैभव को त्याग कर अपने प्रेमी के समान तपस्विनी बन जाती है। और विवाह के पश्चात् उससे जगह–जगह पर उपेक्षित होकर भी, वह किसी प्रकार का प्रतिकार नही करती, और सदा मौन त्याग में निरत रहती है।

यौगन्धरायण समीक्ष्य सभी रूपकों में प्रमुख भूमिका में रहता हैं यदि उसके चरित्र को हटाकर रूपको पर दृष्टि डालें तो कुछ अवशेष नहीं रह जाता

है। प्रतियौगन्धरायणम स्वप्नवासदत्तमं रत्नावली एवं तापसवत्सराजचरितम के कथावृत्त मे वह रीढ़ की हड्डी हैं उसके चरित्र के विकास में तीनो ही नाटककारों की प्रवृत्ति समान रही है। वह एक स्वामिभक्त बुद्धिमान एवं कर्तव्यपरायण मन्त्री है। वह अपने बुद्धिबल से उदयन की उन्नति में प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार भास तथा अंनगहर्ष का यौगन्धरायण, राजनीतिक लाभ के लिए मगधराज की कन्या पद्मावती से उदयन का विवाह कराने के लिए अग्निदाह का प्रयोग करता है तथा वासवदत्ता को पद्मावती के पास न्यास रूप में रखता है। उसी प्रकार हर्ष का यौगन्धरायण भी वासवदत्ता के जीवित होने के कारण सिंहलपति द्वारा उदयन के साथ रत्नावली का विवाह न किये जाने के कारण दाह प्रवाद फैलाकर उसे कौशाम्बी लाने में सफल हो जाता है। भास ने तो उसे नायक बनाकर, अनेक गुणों से अलङ्.कृत किया है।

भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष तीनों ने ही विदूषक के चरित्र को रेंखाकित किया हैं जो स्वभावानुकूल हास्य को उद्बुद्ध कराने वाला है। वह नायक के सच्चे मित्र के रूप में चित्रित हुआ हैं भास एवं हर्ष के विदूषक की अपेक्षा अनंगहर्ष का विदूषक अधिक गुणी है। उसमें राजा के प्रति असीम प्रेम होने के साथ–साथ कर्तव्यपरायणता का उत्कट भाव है। उसमें कठोर उत्तरदायित्व को निभाने की दृढ़ता एवं बुद्धि की चतुरता के साथ–साथ ह्रदय की कोमलता भी है। प्रायः विदूषक में विनोदप्रियता का बाहुल्य होता है। लेकिन तापसवत्सराजचरितम् में उसके चरित्र में जिन गुणों का निवेश हुआ है वह उसे श्रेष्ठ स्थान प्रदान करता है। वास्तव में अनंगहर्ष ने जिस विदूषक की कल्पना की है वैसा विदूषक संस्कृत नाट्यसाहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है।

उदयन–वासवदत्ता चरित्र पर आधारित नाट्यकृतियों के लिए भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष ने प्रायः समान पात्रों की योजना की है। जिनमें यौगन्धरायण, रूमण्वान वसंतक कांचनमाला, सुसंगता, सांकृत्यायनी आदि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त हर्ष ने विजयवर्मा नामक एक नवीन पात्र की योजना की है।

महाकवि भास आदि नाटककार के रूप में प्रथित है। इसलिए उत्तरवर्ती रचनाओं पर इनकी स्पष्ट छाप मिलती है। अनंगहर्ष तो भास से विशेष प्रभावित लगते है। पात्रों के चरित्रांकन में उन्होने भास का पर्याप्त रूप से अनुकरण किया है तथापि नाटक की मौलिकता बनाये रखने के लिए उन्होने कतिपय नवीन उद्भावनाएं प्रस्तुत की है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पाँचो कृतियों का आधार एक ही विषय 'उदयन वासवदत्ता होते हुए भी, कवित्रय ने अपनी मौलिक कल्पनाओं एवं वर्णन सामर्थ्य के बल पर उनको सफल बनाने का श्लाघनीय का प्रयास किया है। उन्होने अपने पात्रों में भिन्न –भिन्न विशेषताओं को उद्घाटित कर सहृदयों को आनन्दित किया है।

****

चतुर्थ अध्याय
रूपकः रस संयोजन

प्रत्येक रूपक का एक अर्थ (उद्देश्य) होता है और रस के बिना अर्थ प्रवृत्त नही होता है। रसोन्मेष के सर्वाधिक रमणीय प्रतीक रूपक ही है अभिनवभारती में तो नाट्य एवं रस को एक दूसरे का पूरक बताया गया है। 'नाट्यमेव रसः रस समुदायों हि नाट्यम'[1]। अर्थात नाट्य ही रस है रस समुदाय ही नाट्य है। साहित्याचार्यो ने जिस नाटकीय तत्व पर सर्वाधिक विमर्श किया है 'वह रस ही है, जो रूपक में आत्मतत्व के रूप में प्रतिष्ठित है।

रस सम्बन्धी नाट्य शास्त्रीय मान्यताः – आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः" रस सूत्र की रचना की जो कालान्तर में अनेक रस मर्मज्ञों की व्याख्या का विषय रही । भरतमुनि विभाव, अनुभाव व व्यभिचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति मानते हैं। सूत्रस्थ विभावादि के सन्दर्भ में आचार्य मम्मट लिखते हैं –

> कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
> रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
> विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण :।
> व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसोस्मृतः।।[2]

अर्थात् लोक में रति आदि स्थाई भाव के कारण, कार्य और सहकारी होते हैं वे यदि नाट्य या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। उन विभाव आदि से व्यक्त स्थायी भाव 'रस' कहलाता है ।

स्थायी भाव :– स्थायी भाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है[3] जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त

1– संस्कृत आलोचना–आचार्य बलदेव उपाध्याय पष्ठ – 112 से उद्धृत

2 – काव्यप्रकाश– व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर – 4 : 43

3 – काव्यप्रकाश व्याख्या– आचार्य विश्वेश्वर – पृष्ठ 95

कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। रति, हास, शोक आदि स्थायी भाव आठ होते हैं।

विभाव :– रसानुभूति के कारण विभाव कहलाते हैं। स्वयं जाना हुआ होकर (स्थायी) भाव को पुष्ट करने वाला विभाव कहलाता है। यह आलम्बन व उद्दीपन के भेद से दो प्रकार का होता है।[1]

अनुभाव :– रति आदि भावों को सूचित करने वाले विकार अनुभाव हैं।[2] ये रस के कार्य कहे जाते हैं।

व्यभिचारी भाव :– जो रसों में नानारूप से विचरण करते हैं तथा रसों को पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बनाते हैं। उनको व्यभिचारिभाव कहते हैं।[3] निर्वेदग्लानिशंकाश्रम आदि भेद से ये 33 प्रकार के होते हैं। ये स्थायी भावों के सहकारी होते हैं।[4] भरतमुनि का यह रस सूत्र आकार में जितना संक्षिप्त है उसकी मीमांसा उतनी ही जटिल व दुर्बोध है। वस्तुतः यह रस सूत्र रस मीमांसकों की प्रज्ञा को आन्दोलित करने वाला है परिणामत : अनेक आचार्यों ने अपने –अपने दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है जिनमें से भट्लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त प्रमुख हैं ।

उत्पत्तिवाद[5] :–मीमांसक भट्टलोल्लट का रस विवेचन सम्बन्धी सिद्धान्त उत्पत्तिवाद के रूप में प्रसिद्ध है। उनके मत में ललना आदि आलम्बन विभाव और उद्यानादि उद्दीपन विभावों से रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होता है कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभावों से प्रतीति के योग्य किया गया और सहकारी रूप निर्वेद आदि व्यभिचारि भावों से परिपुष्ट किया गया मुख्य रूप से राम आदि

---

1 – दशरूपकम् व्याख्या –श्री निवास शास्त्री 4 : 2
ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत ।
आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधां ।। दशरूपकम् – व्या० श्री निवास शास्त्री–4 : 2

2 – अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मक : ।
दशरूपक –व्याख्याकार–श्री निवास शास्त्री – 4 : 3

3– दशरूपक " " 4 : 8

4– दशरूपक व्या० श्री निवास शास्त्री – 4 : 9

5– काव्यप्रकाश :– ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी पृष्ठ 101

में और उनके स्वरूप का अनुकरण करने वाले नट में प्रतीयमान रति आदि स्थाई भाव रस कहलाता है । उत्पत्तिवाद के अनुसार रस की उत्पत्ति मुख्यतः राम में होती है क्योंकि वे ही सीता से प्रेम करते हैं और सीता को देखकर राम के हृदय में ही एक मनोरम भाव अंकुरित होता है जो अनुकूल परिस्थितियों से परिपुष्ट होकर प्रेम का रूप धारण करता है। इस प्रकार राम में ही रस उत्पन्न होता है इसी का अनुकरण नट अपनी प्रतिभा के बल पर करता है। अतः राम की अवस्थाओं का अनुकरण करने के कारण हम नट में भी रस की स्थिति मान लेते हैं। वस्तुतः यह एक भ्रान्ति है जो क्षणिक होती है और इसी क्षणिक भ्रान्ति से सामाजिक को आनन्दानुभूति होती है। रस सामाजिक में नहीं होता वह मुख्यतया राम में और काल्पनिक रूप से उसके अनुकर्ता नट में होता है। उत्पत्तिवाद रस की स्थिति सामाजिक में नहीं मानता जबकि वर्तमान में रसास्वादनकर्ता सामाजिक ही है। अतएव यह मत उचित नहीं प्रतीत होता ।

अनुमितिवाद[1] :– नैयायिक शंकुक ने उत्पत्तिवाद के विरूद्ध अनुमितिवाद की प्रतिष्ठापना की । उनके मत में रस निष्पत्ति अनुमान की प्रक्रिया है। नट में रस अनुमेय होता है। सम्यक प्रतीति, मिथ्या प्रतीति संशय प्रतीति व सादृश्य प्रतीति से भिन्न चित्रतुरग न्याय से होने वाली विलक्षण प्रतीति से रस नट में अनुमेय होता है। सामाजिक के रसास्वादन का कारण उसकी वासना और रस प्रतीति में विलक्षण अपरोक्षता की कल्पना है। वस्तुतः अनुमित रस न सामाजिक में रहता है और न कृत्रिम रामादि में रहता है, परन्तु वासना के बल से सामाजिक में न रहने वाले और नट में वस्तुतः अविद्यमान किन्तु अनुमीयमान रस का सामाजिक को आस्वादन होता है। श्री शंकुक पूर्वमत की भाँति सामाजिकों में रस का सर्वथा अभाव नहीं मानते । वस्तुत : रस राम में ही रहता है तदुपरान्त नट में अनुमानतः सिद्ध होता है। वस्तुतः रसानुभव

1– काव्यप्रकाश ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी पृष्ठ. 103

साक्षात्कारात्मक प्रतीति है जबकि अनुमेय से होने वाला ज्ञान परोक्ष होता है अतः अनुमितिवाद आचार्यों को रूचिकर नहीं लगा।

भुक्तिवाद[1] :– भट्टनायक ने सामाजिक को होने वाली साक्षात्कारात्मक रसानुभूति के उपपादन के लिये भुक्तिवाद की प्रतिष्ठा की है। उनके मतानुसार न तो रस की उत्पत्ति होती है, न उसकी प्रतीति होती है और न ही अभिव्यक्ति होती है। रस केवल अनुभूति स्वरूप है। उसकी केवल अनुभूति होती है। अनुभूति से भिन्न काल में उसकी स्थिति नहीं होती । भट्टनायक काव्य में अभिधा व्यापार के अतिरिक्त भावकत्व तथा भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापारों की उद्भावना करते हैं। अभिध ा शक्ति द्वारा उपस्थित काव्यार्थ का शब्द का भावकत्व व्यापार साधारणीकरण करा देता है तथा भोजकत्व व्यापार सामाजिक को रस का साक्षात भोग करवाता है। भट्टनायक के भावकत्व व भोजकत्व व्यापार के अनुभव सिद्ध न होने के कारण यह मत विद्वानों में विशेष आदर नहीं प्राप्त कर सका।

अभिव्यक्तिवाद[2] :– ध्वनिवादी आचार्य अभिनवगुप्त की रस सम्मत व्याख्या अभिव्यक्तिवाद के नाम से लब्धप्रतिष्ठित है । उनके मत में सामाजिकगत स्थायी भाव ही रसानुभूति का निमित्त होता है । रति, शोक आदि स्थायी भाव सामाजिक की आत्मा में सदा वर्तमान रहते हैं और साधारणीकृत रूप से उपस्थित विभावादि सामग्री से अभिव्यक्त या उदबद्ध हो जाते हैं और तन्मयीभाव के कारण वेद्यान्तर के सम्पर्क से शून्य ब्रह्मस्वाद के सदृश परमानन्द रूप में अनुभूत होते हैं। अभिनव गुप्त का अभिव्यक्ति वाद रस सिद्धान्तों में अत्यधिक प्रतिष्ठित है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार रसों की संख्या आठ है – श्रंगार , हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, तथा अद्भुत् ।[3] किन्तु कुछ आचार्य शान्त रस को नवम् रस के रूप मे स्वीकार करते हैं। रसों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

1– काव्यप्रकाश – ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी पृष्ठ 105– 106

2 – काव्यप्रकाश–व्याख्याकार–आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ 108–109

3 – श्रृंगार हास्य करूणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्साद्भुत चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता।। नाट्यशास्त्र 6–16

1– श्रृंगार रस :– रसशास्त्र में श्रृंगार रसराज के रूप में प्रतिष्ठित है सर्वजन संवेद्य श्रृंगार सृष्टि सृजन का आदि कारण एवं अलौकिक आनन्द स्वरूप है। रति इसका स्थायीभाव है। प्रिय वस्तु के प्रति हृदय की उत्कट उन्मुखता को रति कहते हैं ।[1] श्रृंग का अभिप्राय है काम का आविर्भाव और श्रृंगार का अभिप्राय है जो कामोद्भेद से संभूत हो । इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन होते है । दक्षिण आदि नायक तथा अनुराग शून्य वेश्या नायिका को छोडकर अन्य प्रकार की नायिकायें इसके आलम्बन विभाव, चन्द्र चन्द्रिका, चन्दनानुंलेपन, भ्रमर गुंजार आदि उद्दीपन विभाव, उग्रता, मरण आलस्य और जुगुप्सा को छोडकर सभी व्यभिचारि भाव इसके परिपोषक होते हैं।[2]

प्रेम, मान, प्रणय, स्नेह, राग और अनुराग रति की ये छः उत्तरोत्तर विकासावस्था मानी गयी है।[3] रति का यह उत्तरोत्तर विकास ही श्रृंग है और इसी श्रृंग अर्थात् उत्तरोत्तर विकसित रतिभाव की अभिव्यक्ति ही श्रृंगार रस है ।

2– श्रृंगार रस के भेद :– श्रृंगार रस के दो भेद हैं – संभोग तथा विप्रलम्भ

(i) संभोग श्रृंगार :– वह आनन्द पूर्ण अवस्था संभोग श्रृंगार है । जब दो विलासीजन अनुकूल होकर परस्पर दर्शन स्पर्शन आदि का प्रयोग करते हैं।[4] परस्पर अवलोकन आलिङ्गन आदि भेद से यह अनन्त प्रकार का हो जाता है।

(ii) विप्रलम्भ श्रृंगार :–[5] नायक नायिका के परस्पर अनुराग में मिलन नैराश्य ही विप्रलम्भ है। यह चार प्रकार का होता है ।

1 – पूर्वराग विप्रलम्भ

2 – मान विप्रलम्भ

3 – प्रवास विप्रलम्भ

1– साहित्य दर्पण–व्याख्याकार–डॉ सत्यव्रत सिंह, पृष्ठ सं. 227

2 – " " पृष्ठ सं. 230

3 – " " पृष्ठ सं. 231

4 – दशरूपक–व्याख्याकार– श्री निवास शास्त्री 4 : 76

5– साहित्य दर्पण – व्या0 डा0 सत्यव्रत्त सिंह पृष्ठ –232

4 – करूण विप्रलम्भ

आचार्य धनिक श्रृंगार के तीन भेद मानते हैं –[1]

1 – अयोग

2 – विप्रयोग

3 – सम्भोग

अयोग :–[2] नायक और नायिका का एक दूसरे को स्वीकार कर लेना ही योग कहलाता है तथा उसका अभाव ही अयोग है। अर्थात् जब नवयौवन युक्त एक चित्त वाले नायक नायिका में अनुराग तो होता है किन्तु माता–पिता आदि के अधीन होने के कारण या भाग्यवशात् दोनों का मिलन नहीं होता वह अयोग श्रृंगार होता है।

विप्रयोग :–[3] एक दूसरे को प्राप्त कर लेने वाले गाढ़ानुरागी नायक–नायिका का विश्लेष ही विप्रयोग कहलाता है। मान और प्रवास भेद से यह दो प्रकार का होता है।

हास्य रस :–[4] हास स्थायीभाव की अभिव्यक्ति ही हास्य रस कहलाता है। इसकी अभिव्यक्ति वाक्विकृति, चेष्टाविकृति तथा वेषविकृति आदि अन्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन तथा तथा अभिनयन से हुआ करती है। आवृत्ति, वाणी, चेष्टा आदि विकृतियों से युक्त व्यक्ति इसके आलम्बन विभाव, उस हास्यास्पद व्यक्ति की चेष्टाए उद्दीपन विभाव, नेत्र निमीलन, मुख विकास आदि इसके अनुभाव तथा निद्रा, आलस्य आदि व्यभिचारि भाव हैं । वाच्यभेदेन यह आत्मस्थ तथा परस्थ दो प्रकार का होता हैं –

आत्मस्थ :–[5] जब विदूषक आदि व्यक्ति विपरीत अंलकार विकृत व्यवहार

1– दशरूपकम–व्या0 श्री निवास शास्त्री 4 : 58
2– " " 4 : 59 पृष्ठ 366
3– " " " 4 : 65 पृष्ठ 360
4– साहित्य दर्पण – व्या0 डा0 सत्यव्रत सिंह पृष्ठ 251
5– नाट्य शास्त्र – पृष्ठ 731

अभिधान स्वरूप आत्मस्थ विभावों से स्वयं हंसते हुये सामाजिक को हंसाने की चेष्टा करता है तब वह आत्मस्थ हास्य रस कहलाता है।

परस्थ :—[1] जब शकार विट आदि व्यक्ति विकृत आचरण, वाक्यों एवं अंग विकारों से स्वयं न हँसते हुये सामाजिक को हँसाता है तब परस्थ हास्य रस होता है।

3 —करूण रस :—[2] शोकरूप स्थायीभाव का अभिव्यंज्जन ही करूण रस कहलाता है। इष्टनाश व अनिष्टप्राप्ति से संभूत इस रस का आलम्बन विभाव —विनष्ट व्यक्ति, उद्दीपन विभाव दाहकर्म आदि हैं। दैव निन्दा, भूमिपतन, अश्रुपात, क्न्दन, प्रलपन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निःश्वास आदि इसके अनुभाव तथा निर्वेद, मोह, अपस्मार, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि इसके व्यभिचारि भाव हैं। 'मरण' का प्रदर्शन नाटकादि में निषिद्ध है।[3] अतः आचार्य भरत मरण का परिगणन विभावों में नहीं करते ।

आचार्य भवभूति तो एकमात्र करूण रस को ही मानते हैं। उनके अनुसार अन्य सभी रस करूण रस के विवर्त हैं।[4]

4— रौद्र रस[5]— क्रोध स्थायी भाव से युक्त इस रस के शत्रुवर्णन आलम्बन विभाव शत्रु चेष्टायें उद्दीपन विभाव, ओष्ठ चबाना, कँापना, भ्रूभंग, वेपथु, उग्रता, शस्त्र उठाना, प्रतिज्ञा करना, आदि अनुभाव तथा मोह, अमर्ष आदि इसके पोषक व्यभिचारिभाव होते हैं।

5 — वीर रस :—[6] स्थायीभाव उत्साह को अभिव्यक्ति करने वाला वीर रस होता है। प्रताप, विनय, अध्यवसाय, सत्व, मोह, अविषाद, नय, विस्मय, पराक्रम,

1— नाट्यशास्त्र पृष्ठ 731
2 — साहित्यदर्पण—डा0 सत्यव्रत सिंह — पृष्ठ 254
3 — नाट्य शास्त्र पृष्ठ 1469—1471
4 — एको रसः करूण एव निमित्तभेदाद, भिन्नः पृथक् पृथ गिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम् ।
उत्तररामचरितम् — 3:47 — ~~पृष्ठ सं. 347~~
5—साहित्यदर्पण —व्या0 डा0सत्यव्रत सिंह पृष्ठ 255— 256
6 — दशरूपक — श्रीनिवास शास्त्री 4—79 पृष्ठ सं. 358

आदि इसके विभाव दया, युद्ध और दान, अनुभाव एवं गर्व, धृति, प्रहर्ष आदि इसके व्यभिचारि भाव हैं।

आचार्य भरतमुनि ने इसके तीन प्रधान भेद माने हैं। वे युद्धवीर, दानवीर, तथा धर्मवीर भेद से वीर के तीन भेद स्वीकारते है।[1] जबकि विश्वनाथ कविराज वीर रस के चार भेद मानते हैं – दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, तथा दयावीर[2]। बहुत से आचार्य दयावीर को शान्त रस का प्रतीक मानते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के मत में दयावीर, धर्मवीर, तथा दानवीर कोई, नये रस नहीं हैं – प्रत्युत शान्त के ही नामकरण हैं।[3]

6– भयानक रस [4]:– डरावने शब्द को सुनने या भयानक सत्व को देखने से उत्पन्न होने वाले 'भय' नाम स्थायी भाव परिपुष्ट होकर भयानक रस होता है। अंगों में कम्पन, वैवर्ण्य, मुँह, सूखना, स्वेद आदि इसके अनुभाव तथा दैन्य, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास इत्यादि व्यभिचारि भाव हैं।

7 – वीभत्स रस :[5] – वीभत्स का स्थायी भाव जुगुप्सा है। दुर्गन्ध युक्त माँस रक्त मेद आदि इसके विभाव थूकना, मुँह फेरना, नेत्र संकोचन, आदि अनुभाव मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके व्यभिचारि भाव हैं। दशरूपककार इसके तीन भेद मानते हैं – उद्वेगी, क्षोभण तथा घृणा शुद्ध।[6]

आचार्य भरतमुनि वीभत्स के क्षोभण तथा उद्वेगी दो भेद स्वीकारते हैं।[7]

8–अद्भुत रस :– अलौकिक पदार्थों के दर्शन या श्रवण आदि से उत्पन्न होने वाला विस्मय ही जिसकी आत्मा है वह अद्भुत रस है।[8] साधुवाद, अश्रु,

---

1–दशरूपकम् व्या0 श्री निवास शास्त्री पृष्ठ 358
2– साहित्यदर्पण व्या0 डा0 सत्यव्रत सिंह 3 : 234
3– संस्कृत आलोचना बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 122
4– साहित्यदर्पण व्या0 डा0 सत्यव्रत सिंह 3 : 235–238
5– " " " 3 : 239–241
6– दशरूपकम् व्या0 श्री निवासशारूत्री 4 : 80 पृष्ठ 387
7– नाट्यशास्त्र– काशीसंकरण 6 : 81
8– दशरूपकम् व्या0 श्री निवास शास्त्री 4 : 85

कम्पन, प्रस्वेद, तथा गद्‌गद होना आदि इसके अनुभव तथा हर्ष, आवेग, धृति आदि व्यभिचारि भाव है।

9 –शान्त रस :– आचार्य भरतमुनि ने रस के आठ प्रकार ही बताये हैं। यद्यपि वे शान्त रस से पूर्णतः परिचित थे। तथापि उन्होंने इसका परिगणन रसों में नहीं किया। फलतः कुछ विद्वान शान्त रस की सत्ता ही नहीं मानते जबकि कतिपय विद्वान इसका अन्य रसों में अन्तर्भाव मानते हैं। आचार्य उद्‌भट शान्त रस को मानते थे। वे नाट्यशास्त्र के प्रथम ज्ञात व्याख्याकार हैं तथा नवरसों की सत्ता मानने वाले प्रथम आलंकारिक हैं।[1] रूद्रट ने निर्वेद आदि की भी रस रूपता स्वीकार की है।[2] कुछ विद्वान काव्य में इसकी सत्ता मानते हैं किन्तु रूपकों में इसे स्वीकार नहीं करते उनका अभिमत है कि शान्त का मंचन नहीं किया जा सकता फलतः रूपक में इसकी सत्ता नहीं हो सकती है। वस्तुतः साहित्य, काव्य तथा नाटक त्रिवर्ग के वर्णन तक ही सीमित नहीं रहते। परमपुरूषार्थ मोक्ष का वर्णन तथा चित्रण भी उसके लिये उसी प्रकार उपादेय है। लोकवृत्त का अनुकरण नाटक का विषय है। ऐसी स्थिति में उपकारवृती, अध्यात्मनिष्ठ महापुरूषों के जीवन चरित्र का चित्रण जिस प्रकार कवि अपने काव्यों में करता है उसी प्रकार मोक्ष जैसे चरम पुरूषार्थ का निदर्शन भी का काव्य व नाटक में भलीभांति दिखलाया जा सकता है। इसीलिये अभिनव गुप्त कामोचित चित्तवृत्ति के प्रदर्शन द्वारा रसास्वाद के उदय के समान मोक्षोपयोगिनी चित्तवृत्ति के प्रदर्शन द्वारा रस का आस्वाद उत्पन्न होना स्वाभाविक मानते हैं।[3]

नाटक में रसाभिव्यंजन :– नाटक की दशरूपकों में श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है। यह रसोन्मेष के सर्वोत्तम साधन हैं। इसमें प्रधान रूपेण काम तथा धर्मस्वरूप पुरूषार्थ वर्णित होता है। अतः पुरूषार्थों के अनुरूप नाटक में श्रृंगार या वीर रस

---

1 – संस्कृत आलोचना –बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 120

2 – काव्यालंकार – 12 : 4

3 – द्रष्टव्य – अभिनव भारती भाग 1 पृष्ठ 334 बडौदा संस्करण

का प्रधान रूपेण वर्णन प्राप्त होता हैं।[1] नाटक में मुख्यतः एक रस अभिव्यंग्य होता है, वही मुख्य रस अंगीरस कहलाता है। यह श्रृंगार अथवा वीर हो सकता है।[2] नाटक में अन्य रस अंगरूप में वर्णित होते हैं, जो अंगीरस के सहयोगी होते हैं। नाटक में करूण रस की अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठा की जा सकती है। यद्यपि अनेक विद्वान नाटक में करूण की अभिव्यंजना नहीं स्वीकारते। उनका तर्क है कि नाटक का मूल प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति है और शोक से आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं । इस सन्दर्भ में भक्ति रसामृत सिन्धु का यह पद उद्धृत किया जा सकता है —

अलौकिक —विभावत्वं नीतेभ्यो रतिलीलया ।
सदुक्त्या च सुखं तेभ्यः स्यात् सुव्यक्तमिति स्थिति :।।[3]

भक्ति रसामृत सिन्ध 2—5—106

आशय यह है कि शोक में दुःखाभिव्यंजना तभी तक है जब तक वह भौतिक विषयों के साथ सम्बद्ध रहता है। काव्य तथा नाटक में प्रदर्शित होते ही शोक अलौकिक वस्तु की विभावना करने लगता है और तब उससे आनन्द की ही प्राप्ति होती है, दुःख का उदय नहीं होता। अतः निःसंदेह नाटक में श्रृंगार वीर अथवा करूण रस की अंगीरस रस रूपता स्वीकार की जा सकती है।

प्रकरण में रसाभिव्यंजन :— प्रकरण का कथानक कविकल्पित एवं लौकिक होता है इसका नायक ब्राह्मण, मंत्री या वैश्य तथा नायिका गणिका या साधारण स्त्री होती है । नाटक की विशेषताओं से पूर्ण इस रूपक विधा में अंगीरस के रूप में श्रृंगार की अभिव्यंजना होती है।[4] अन्य रस अंगरूप में वर्णित होते हैं।

1— दशरूपक —व्या0 श्री निवास शास्त्री पृष्ठ — 167
2 — साहित्यदर्पण डा0 सत्यव्रत सिंह 6 : 10
3— संस्कृत आलोचना — बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 250 से उदधृत
4— नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम्।।
दशरूपक व्याख्या वत श्री निवासशास्त्री 3 : 44

नाटिका में रसाभिव्यंजन :– नाटिका का इतिव्रत इतिहास प्रसिद्ध तथा कवि कल्पित होता है । इसका नायक धीरललित प्रकति का तथा नायिका मुग्धा होती है। श्रृंगार रस इसमें अंगीरस के रूप में अभिव्यक्त होता है ।[1] अन्य रस इसके पोषक होते हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में रसोन्मेष :– नाट्य साहित्य के आदि कवि महाकवि भास के नाटकों में रसोन्मेष की प्रबल शक्ति सम्पन्नता है। उनका रस निमीलन सामाजिक को रसलीन करने की पूर्ण सामर्थ्य रखता है। भास श्रृंगार, वीर तथा करूण तीनों ही रसों के सिद्धहस्त कवि हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम में वीर रस का चारू निदर्शन प्राप्त होता है। भास ने नाटक में अद्योपान्त मुख्यतः वीर रस का निमीलन प्रस्तुत किया है। प्रथम अंक में हंसक यौगन्धरायण से प्रद्योत द्वारा राजा उद्यन के बन्दी बनाये जाने का वृत्तान्त कहता है। उसका यह वर्णन वीर रस की चर्वणा कराने में सर्वथा समर्थ है –हंसक : तत : आत्मजीवितनिर्दिष्टेन शपथेन ....वेलायां मोहं गतो भर्ता ।[2] प्रस्तुत स्थान में उद्यन का मात्र बीस पैदल सैनिकों के साथ सीमा प्रान्त में प्रवेश करना उसके अदम्य साहस व उत्साह को प्रदर्शित करता है जिससे वीर रस की परिपुष्टि होती है।

इसी प्रसंग में उद्यन का अपने पौरूष पर विश्वास कर शत्रु–दल को विनष्ट करने की घोषणा भी उसके असीम साहस की द्योतक तथा वीर रस की पोषक है – हंसक :–''अनुगच्छत माम, अहमिदानीं विषमारम्भं परस्योपन्यासं पराक्रमेण समीकरोति ''[3] उद्यन के बन्दी बनाये जाने का वृतान्त ज्ञात होने के उपरान्त यौगन्धरायण की वत्सराज को मुक्त कराने की प्रतिज्ञा भी 'उत्साह' नामक स्थाई भाव को पुष्ट कर वीर रस को अभिव्यक्त कराने में सर्वथा सक्षम है –

1– दशरूपकमं व्याख्याकार श्री निवास शास्त्री 3 : 47
2– भासनाटकचक्रम द्वितीयो भाग (प्रतिज्ञायोगन्धरायणे) आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भ संस्कृत सीरीज वाराणसी – 1 पृष्ठ 19 –23
3– वही पृष्ठ 21

यौगन्धरायण : – विजये ।

यदि शत्रुबल ग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव ।

मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः ।।[1]

तृतीय अंक में वासवदत्ता व नलागिरि हाथी सहित उदयन को मुक्त कराने की यौगन्धरायण की दूसरी प्रतिज्ञा भी वीर रस की अभिव्यक्ति कराती है –

यौगन्धरायण :–उभयमितिं ।

बाढम। इयं द्वितीया प्रतिज्ञासुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव।[2]

यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ।।

अपि च,

यदि तां चैव तां चैवायतलोचनाम् ।

नाहरामि नष्यं चैव नास्मि यौगन्धरायण : ।।[3]

चतुर्थ अंक में वासवदत्तापवाहनोपरान्त उज्जयिनी में उथल–पुथल मच जाती है तथा घमासान युद्ध छिड जाता है। ऐसे में उन्मत्तक का वेष त्याग कर यौगन्धरायण का शस्त्रों से सुसज्जित वीर योद्धा के रूप में आना तथा युद्ध करने का प्रसंग वीर रस का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत करता है –

निशितविमलखड्ग : संहृतोन्मत्तवेष : , कनकरचितचर्म व्यग्रवामाग्रहस्तः ।

विरचित बहुचीर : पाण्डारावद्धपट्टः , सतडिदिव पयोदः किंचिदुद्गीर्णचन्द्रः।।[4]

अहो महत् प्रवष्त्तं युद्धम् ।

हत्वा गजान् सगजिनः सहयांश्च योधा –

नक्षौहिणीमति विगाह्य बलान्मुहूर्तम् ।

नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहु –

र्भ्रष्टायुधोऽपि ननिवृत्त पदोऽभियातः ।।[5]

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायण 1 : 16
2 – प्रतिज्ञायौगन्धरायण 3 : 8
3 – वही 3 : 9
4 – वही 4 : 3
5 – वही 4 : 4

यौगन्धरायणः – कथं प्रधर्षितः स्वामी।

पीनांसस्य विकृष्ट पर्व महतो नागेन्द्रहस्ताकृते –

श्चापास्फालिकरस्य दूरहरणाद् बाणाधिकारोपिणः।

विप्राभ्यचर्ययितुः श्रमेषु सुहृदां सत्कर्तुरालिङ्गनै

र्न्यसतं तस्य भुजद्वयस्य वलयस्थानान्तरे बन्धनम्।।

यौगन्धरायणः –दिष्ट्या ! शरीर धर्षितं न तेज : ।

राजा प्रद्योत की पुत्री विवाह को लेकर चिन्ता करूण की द्योतक है उसका यह कथन कि कन्या के विवाह के विषय में माताऐं दुःखी ही रहती है करूण का उदाहरण है– दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः ।[1]

रौद्र रस :– हंसक यौगन्धरायण से बताता है कि उन सैनिको में से एक राजा को मारने को उद्यत हुआ उसने उद्यन का मुँह पलटकर दक्षिण पार्श्व में घुमाया फिर उनके केशों को पकडकर मारने के लिये झपटा –

हंसक :– अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम ! अन्योन्या......

प्रहारवेगमुत्पाद .यितुकाम आधावन् ।

हंसक :– ततो रूधिर पटलः..... हतो पतितः ।[2]

स्वप्नवासवदत्तम् में रसोन्मेष – 'स्वप्नवासदत्तम्' श्रृंगार रस का नाटक है। इसका श्रृंगार अर्थ श्रृगार है।[3] अपहृत राज्य की पुन : प्राप्ति के लिये ही उद्यन पद्मावती से विवाह हेतु प्रवृत्त होता है जिससे संभोग श्रृंगार द्योतित होता है किन्तु इसका पूर्ण परिपाक नहीं हो पाया। उद्यन वासवदत्ता की दृष्टि से इस नाटक का मूल रास, विप्रलम्भ श्रृंगार ही है। इसकी पुष्टि नाटक के अनेक स्थानो पर मिलती है किन्तु तृतीय अंक व षष्ठ अंक में इस रस की परिपुष्टि उच्च स्तर पर प्राप्त होती है। तृतीय अंक में जब वासवदत्ता को सपत्नी के लिये सुहाग माला गूथने के लिये कहा जाता है तो उस समय की

1– प्रतिज्ञायोगन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ

2 – प्रतिज्ञायौगन्धरायण, " प्रथम अंक, पृष्ठ – 26

3 – स्वप्नवासवदत्तम् – भूमिका पृष्ठ – 50 , चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी 1977

वासदत्ता की वेंदना की सह्रदय सहज ही अनुभूति करते हैं।[1] इस नाटक में पति–पत्नी के उत्कृष्ट प्रेम को प्रदर्शित किया गया है जो भारतीय भावना के अनुरूप है। पति के सुख के लिये अर्थात् अपहृत राज्य की पुन : प्राप्ति के लिये वासदत्ता जिस विरहानल में दिन–रात जलती है वह पति प्रेम की पराकाष्ठा है। उसका आत्म बलिदान[2] एक आदर्श सन्देश प्रस्तुत करता है। दूसरी तरफ उदयन का वासदत्ता के जल मरने की खबर सुनकर स्वयं भी प्राणोत्सर्ग के लिये अग्नि में प्रविष्ट होने को उद्यत होना पत्नी प्रेम का चरम निदर्शन है। भास ने इस प्रकरण को ब़डी ही चतुरता से प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के मुँह से कहलाया है।[3] उद्‌यन की विरहावस्था का वर्णन करते हुये ब्रह्मचारी बताता है कि राज उद्‌यन् नल, राम, दुष्यन्त तथा चक्रवाक से भी अधिक दु:खी है –

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका,
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ता :।
धृन्या सा स्त्री• यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ।।[4]

चतुर्थ अंक में उद्‌यन का विदूषक से वार्तालाप श्रृंगार की पुष्टि करता है। गुणशीलानुरागी नवोढा पद्‌मावती को प्राप्त करके भी उदयन वासदत्ता को विस्मरित नहीं कर पाता।

पद्‌मावती बहुमता मम् यद्यपिरूपशीलमाधुर्यै: ।
वाससदत्ता बद्धं न तु तावन्ये मनो हरति ।।[5]

---

1 –वासवदत्ता (आत्मगतम्) एतदपि मया कर्तव्यासीत्! अहो ! अकरूणा : खल्वीश्वरा: । स्वप्नवासेदत्तम व्या0 डॉ0 गंगासागर राय – तृतीय अंक 71

2– वासवदत्ता :– गतैषा। अहो। अत्याहितम्। आर्य पुत्रोऽपि नाम परकीय: संवृत्त: । अविदा। शय्यायां ममं दु:ख विनोदयामि, यदि निद्रां लभे: स्वप्नवासवदत्तम–व्या0 डॉ0 गंगासागर राय तृतीय अंक पष्ठ 79, वाराणसी ।

3 – ब्रह्मचारी –तत: प्रतिनिवृत्तो राजा ....यत्नेन वारित :। स्वप्नवासवदत्तम– प्रथम अंक पृष्ठ 39–40,

4 – वही 1 :13

5 – वही 4 : 4

वासवदत्ता के प्रति अपनी प्रगाढ़ अनुरक्ति की पुष्टि में वह कहता है –

दुखं त्यक्तुं बद्धमूलोनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं,
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ।।[1]

वासवदत्ता के प्रति अत्यधिक अनुराग के कराण उदयन कहता है कि वह जन्म जन्मान्तर तक उसे विस्मृत नहीं कर सकते।

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च में प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।।[2]

प्रद्योत द्वारा प्रेषित चित्रफलक को देखकर राजा अत्यन्त विह्वल हो जात है।[3]

जिससे विप्रलम्भ श्रृंगार की अभिव्यंजना होती है। वासवदत्ता के असह्य वियोग से तप्तहृदय उदयन वीणा को उलाहना देते हुये कहता है –

श्रुति सुखनिनदे ! कथं नु देव्या
स्वनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजो विकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युविताऽस्यरण्यवासम्।[4]

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति!या तपस्विन्या न स्मरति
श्रोणी समुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि,
खोदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि

---

1 – स्वप्नवासवदत्त – 4 : 6
2 – वही 6 : 11
3– राजा न सदृशी । संवेति मन्ये । भो कष्टम् ।
अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्ति दारूणा कथम्।
इदं च मुखमाधुर्य कथं दूषितमग्निना ? स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 13
4 – 6 : 1 पृष्ठ

वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि।।[1]

वीणा को देखकर उदयन का वियोग और उद्दीप्त हो जाता है। वह विलाप करते हुये कहता है –

राजा – चिरप्रसुप्तः कामो में वीणया प्रति बोधितः ।

तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया।। [2]

स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन वासवदत्ता की स्मृति में जगह–जगह पर विलाप करता दिखाई देता है तो वासवदत्ता भी राजा से वियुक्त होकर छिप–छिप कर सिसकियाँ लेती दिखाई देती है। भास की इस वासवदत्ता को खुलकर रोने का अवकाश नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है स्वप्नवासवदत्तम् में श्रृ।गार अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि इसमें संभोग श्रृंगार की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पायी तथापि विप्रलम्भ का इसमें चरम निदर्शन प्राप्त होता है। प्रथम अंक से आरम्भ करूण पूर्ण विप्रलम्भ षष्ठ अंक में अभिव्यक्ति से पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त कर लेता है। विप्रलम्भ अङगीरस के अतिरिक्त स्वप्नवासवदत्तम् में अन्य अङगीरसों का भी संयोजन हुआ है।

हास्य रस :– स्वप्नवासवदत्तम् में यत्र तत्र हास्य रस की छटा दिखाई देती है। यद्यपि यह हास्य दर्शक को लोट–पोट कराने की स्थिति तक न ले जाकर स्मित तक ही सीमित रखता है। द्वितीय अंक के आरम्भ में कन्दुक कीडा करती हुयी पद्मावती से वासवदत्ता का कन्दुक के व्याज से विनोद करना हास्य का उद्बोधक है –

वासवदत्ता–हलाअतिचिरं कन्दुकेन कीडित्वार्धिकसज्जातरागोपरकीयाविव हस्तौ संवृत्तौ।

चेटी–कीडतु कीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वृत्यतां तावत् अयं कन्याभाव रमणीयःकालः।

---

1 – स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 2

2– स्वप्नवासवदत्तम् – 5 : 3

पद्मावती — आर्ये ! किमिदानीं माामपहसितुमिव निध्यायसि ?

वासवदत्ता — नहि. नहि हला ! अधिकमद्य शोभते। अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि।[1] चतुर्थ अंक में विदूषक की उक्तियाँ तथा उसका व दासी का संवाद स्मितोद्बोधक है —

विदूषक : — इदानीं प्रसादेषूष्यते ....भो। सुखं नागयपरिभूतमकल्यवर्तं च ।[2]

x x x x x x x x x x

विदूषकः — स्नातस्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवतो वर्जयित्वा भोजनम् ।

चेटी : — किं निमित्तं वारयसि भोजनम् ?

विदूषक :— अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षि परिवर्त : इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः

चेटी :— ईदृश एवं भव ।[3]

षष्ठ अंक के अन्तिम दृश्य में वासदत्ताभिज्ञान के पश्चात उदयन वासदत्ता को पद्मावती के साथ महल में जाने को कहता है। इस पर यौगन्धरायण का मनोविनोद स्वरूप प्रतिवाद हास्य स्मित को उद्बुद्ध करता है

राजा :— कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश्य त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायण : — न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा

राजा :— किं भवानाह ? महासेन पुत्री खल्वेषा।[4]

यौगन्धरायण :— भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवान छविः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिक :।।[5]

वीर रस :— नाटक में कुछ स्थानों पर वीर रस भी परिलक्षित होता है। प्रथम अंक में पद्मावती की अभिलाषी तपस्विजनों को इच्छानुकूल दान देने की घोषणा दान वीरता का उदाहरण है।

---

1 — स्वप्नवासवदत्तम् — द्वितीय अंक पृष्ठ 57 — 59 चौखम्बा संस्कष्त भवन वाराणसी ।
2 — वही — चतुर्थ अंक पृष्ठ 81 —82 " "
3 — वही — चतुर्थ अंक पृष्ठ 84 —85 " "
4 — स्वप्नवासवदत्तम् — पष्ठ अंक पृष्ठ 206 — 207
5 — वही — 6 : 16

कान्चुकीय :— यदभिप्रेवं भवत्या । भो भो आश्रमवासिनस्तपस्विनः! श्रृण्वन्तु भवन्तः इहात्रभवती मगधराज पुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादित विस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।[1]

> कास्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथा निश्चितं
> दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद भवेत्।
> आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया।
> यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम।।[2]

पंचम अंक के अन्त में कान्चुकी तथा राजा का संवाद वीर की अभिव्यक्ति करता है यहाँ राजा युद्धवीर का प्रतीक है –

> राजा :— (उत्थाय) बाढम । अयमिदानीम् ,
> उपेत्य नागेन्द्र तुरङ्गतीर्णे तमारूणिं दारूणकर्मदक्षम् ।
> विकीर्ण बाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युद्धि नाशयामि ।।[3]

करूण रस :— प्रथम अंक में ब्रह्मचारी द्वारा कथित उदयन वृत्त से करूण रस का नियोजन प्रतीत होता है किन्तु इसका पूर्ण परिपाक नहीं होता क्योंकि वासवदत्ता दर्शकों के समक्ष जीवित रहती है अतः इसे विप्रलम्भ ही माना जायेगा।

नाटक के प्रारम्भ में ही राजपुरूषों द्वारा की गयी उत्सारणा के बाद यौगन्धरायण तथा वासवदत्ता का संलाप निर्वेद भाव दर्शाता है।

रत्नावली का रसोन्मीलन :— भावप्रवण कवि हर्ष प्रणय के चतुर चितेरे हैं। रत्नावली उनकी श्रृंगार रस से परिपूर्ण रोमांचक प्रणय नाटिका है। रोमाण्टिक ड्रामा के जितने कमनीय तथा उपादेय साधन होते हैं उन सबका उपयोग हर्ष ने अपने रूपकों में किया है।[4] भली प्रकार से तैयार की गयी भूमि में ही बीज निपातन से सुन्दर–पुष्ट प्रस्फुरण होता है। हर्ष ने इस बात का पूर्ण ध्यान रखा

---

1 – स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम अंक पृष्ठ 20–21
2 – वही – 1 : 8
3 – स्वप्नवासवदत्तम 5 :13
4 – संस्कृत साहित्य का इतिहास –बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 531

है। मदन महोत्सव के व्याज से जब सम्पूर्ण वातावरण आनन्दमय हो जाता है तभी हर्ष बडी ही निपुणता से सागरिका को उदयन का दर्शन करा देते हैं । और यहीं पर सागरिका के हृदय में प्रथम प्रेमास्फुरण होता है। नाटिका के प्रथम अंक में मदन महोत्वस तथा कामदेवार्चन की योजना श्रृंगार की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहीं पर उदयन वासवदत्ता की कोमल भावनायें श्रृंगार की अभिव्यक्ति करती हैं। उदयन द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य की भाँति–भाँति से प्रशंसा करना श्रृंगार की अभिव्यक्ति करता है ।[1] अपनी प्रिय पत्नी वासवदत्ता पर अभिभूत उदयन स्वयं को कामदेव से भी अधिक सौभाग्यशाली मानता है –

अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।
यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ।।[2]

वासवदत्ता की सौन्दर्य मंजरी पर महाकवि हर्ष मानो भ्रमर ही हो गये हों तभी तो उन्होंने रत्नावली नाटिका में श्रृंगार की ऐसी मनोहर गुञ्जार भरी है जिससे मनोद्भूत भाव उद्दीप्त होकर संभोग श्रृंगार में परिणत हो गये । संभोग श्रृंगार प्रस्तुत करने वाले चित्रों में[3] वासवदत्ता की रूप राशि आलम्बन विभाव, वसन्त ऋतु, मदनमहोत्सव तथा वासवदत्ता की कामार्चन विधि उद्दीपन विभाव, उदयन द्वारा वासवदत्ता की सौन्दर्य प्रशंसा अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भावें से परिपुष्ट होकर रति स्थायी भाव संभोग श्रृंगार के रूप में अभिव्यक्ति होता है।

सागरिका को लतापाश से मुक्त कराने के बाद उदयन का सागरिका के प्रति कथन एवं व्यवहार पूर्ण संभोग रस की चर्वणा कराता है राजा – (निर्वर्ण्य । सहर्षमात्मगतम्) कथं प्रिया में सागरिका (कंठात्पाशमाक्षिप्य)

अलमतिमात्रं साहसेनामुना ते,

---

1 – रत्नावली नाटिका – 1 : 19, 20, 21
2 – वही 1 : 22,
3– रत्नावलीनाटिका – शिवराज शास्त्री, प्रथम अंक, पृष्ठ 34 –35,

त्वरितमयि विमुंच त्वं लतापाशमेतम्।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवित देशे

क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ।।

(इति बाहुमाक्षिप्य कण्ठे कृत्वा स्पर्श नाट्यन्।)

सखे इयमनभ्रा वृष्टि : ।[1]

काम से पीडित सागरिका का अपने हृदय को आश्वासन तथा कामदेव को उपालम्भ देना उसकी कामव्यथा को ही दर्शाता है।[2]

चतुर्थ अंक में अग्नि से घिरी सागरिका का स्पर्श उदयन को परम तृप्ति प्रदान करता है तथा सामाजिक के लिये श्रंगार अपनी उच्चतम कोटि में चवर्णमाण होता है —

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः ।

यत : संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।।[3]

यद्यपि सागरिका का नयनाभिराम सौन्दर्य ही उदयन के प्रेम का कारण बनता है किन्तु सागरिका ही काम व्यथा से परिचित कराने वाले दृश्य उसके प्रेम को और प्रगाढ़ कर देते है।[4] हर्ष को प्रणय—सान्द्रता की गहन अनुभूति है तभी तो वे प्रणय के संभोग श्रृंगार तथा विप्रलम्भ श्रृंगार दोनों की चर्वणा कराते हैं, रत्नावली नाटिका में पूर्व राग विंप्रलम्भ श्रृषार वर्णित है जिसमें उदयन आलम्बन विभाव बसन्त, कदलीगृहलता मण्डपादि उद्दीपन, विभाव, सागरिका का अपने हृदय व कामदेव को उपालम्भ देना अनुभाव तथा हर्ष, विषाद, चिन्ता, शंका, लज्जा आदि संचारी भाव हैं। राजा उदयन व सागरिका दोनों ही परस्पर अनुरक्त हैं अत : दोनों ही एक दूसरे के लिये आलम्बन विभाव है।

---

1 — रत्नावलीनाटिका — रामचन्द्र मिश्र, 3 : 17

2 — रत्नावलीनाटिका — रामचन्द्र मिश्र — द्वितीय अंक, पष्ठ 56 से 59

3— रत्नावलीनाटिका — 4 : 18

4 — वही — 2 : 13

इस प्रकार निःसन्देह रूप से रत्नावली श्रृंगार रस की नाटिका कही जा सकती है। श्रृंगार अंगी रस के अतिरिक्त हास्य, वीर, करूण, भयानक आदि रस भी श्रृंगार के सहायक के रूप में अभिव्यक्त हुये हैं।

हास्य रस :– रत्नावली नाटिका में कई स्थानों पर हास्य रस की भी अभिव्यंजना हुई है प्रथम अंक में मदन महोत्सव के अवसर पर विदूषक का युवतियों के मध्य नृत्य करना तथा चेटियों से उसका संवाद हास्य रस को उद्बुद्ध करता है –

विदूषक : (उत्थाय चेटयोर्मध्ये नृत्यन्।) भवति मदानिके भवति चूतलतिके मामप्येतां चर्चरीं शिक्षयतम् ।

उमे – (विहस्य) हताश न खल्वेषा चर्चरी

विदूषक :– तत् किं खल्वेतत् ?

मदनिका :– द्विपदीखण्डं खल्वेतत्।

विदूषक :– (सहर्षम।) किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियन्ते ।

चेट्यौ :– (विहस्य) नहि नहि पठ्यते खल्विदम्।

(सविषादम्।) यदि पठ्यते तदलंममैतेन ।[1]

द्वितीय अंक में सारिका की आवाज सुनकर विदूषक का राजा से भाग चलने को कहना मन्द स्मित उत्पन्न करता है [2]

सागरिका से उदयन के प्रथम मिलन के अवसर पर वासवदत्ता असमय उपस्थित हो जाती है तथा नव मालिका के फूलने के सन्दर्भ में राजा पर विश्वस्त होकर वासवदत्ता की लौट जाने की इच्छा पर विदूषक का हंसना हास्य स्मिति उत्पन्न करता है। [3] चित्रपट देखकर वासवदत्ता का विदूषक व राजा से जो संवाद। होता है उसमें दर्शक हास्य की अनुभूति करता है ।[4] चित्रपट सन्दर्भ

1–रत्नावली नाटिका –रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक, पृष्ठ सं. 30–31

2 – विदूषकः – भोवयस्य एहि पलायावहे, रत्नावली – रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृष्ठ 73

3 – विदूषकः – ही ही भोः जितं जितमस्माभि : (इति बाहु प्रसार्य नृत्यति) रत्नावली– रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृष्ठ 104

4 – रत्नावली नाटिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक , पृष्ठ 105 –106

में रूठी हुई वासवदत्ता के चले जाने पर विदूषक की यह उक्ति भी सामाजिक को हास्य की अनुभूति कराती है –

मो दिष्टया वर्धसे । क्षेमेणस्माकमति् कान्ताऽकाल वातावली।[1]

वीर रस :– चतुर्थ अंक में विजय वर्मा राजा उदयन से कौशलपति के साथ हुये युद्ध का वर्णन करता है जिससे उत्साह नामक स्थायी भाव पुष्ट होकर वीर रस की अभिव्यक्ति कराता है।[2]

करूण रस :– तृतीय अंक में संकेतवृतान्त से लज्जित व भयभीत सागरिका का आत्महत्या के लिये प्रवृत्त होना करूण की स्थिति उत्पन्न करता है। उसका अपने माता–पिता को स्मरण कर विलाप करना सहृदय के शोक को उद्भूत कर करूण रस की चर्वणा कराता है –

हा तात हा अम्ब एषेदानीमहमनाथाऽशखा विपद्ये मन्दभागिनी ।[3]

इसी अंक में सागरिका के अनिष्ट की आशंका से सुसंगता एवं विदूषक का वार्तालाप एवं विलाप भी करूण रस की अभिव्यक्ति कराता है[4] चतुर्थ अंक मे अग्नि से सागरिका के अमंगल की आशंका से वासदत्ता द्वारा राजा उदयन से सागरिका की रक्षा हेतु प्रार्थना करना ।[5] तथा राजा उदयन द्वारा रक्षित सागरिका को वासवदत्ता द्वारा भावपूर्ण आलिगंन करना करूण रस की अभिव्यंज्जना कराता है।[6]

भयानक रस :– रत्नावली नाटिका में कतिपय स्थान भयानक रस से भी परिपूर्ण है द्वितीय अंक में वानर उत्पात का दृश्य भयानक रस की अभिव्यक्ति कराता है यहाँ पर वानर आलम्बन विभाव उसका उत्पाद उद्दीपन विभाव स्त्रियों का भयभति होना, नपुंसकों का भागना, वामन, किरातों तथ कुब्जों का

---

1 – रत्नावली नाटिका रामचन्द्र मिश्र –द्वितीय अंक, पृष्ठ 108
2 – (क) योद्धुं निर्गत्य ....रूमण्वान्क्षणेन ।। रत्नावली 4 : 5
 ख) अस्तृव्यस्तशिर...........................विपस्यो हत : ।। रत्नावी 4 : 6
3 – रत्नावली नाटिका – रामचन्द्र मिश्र, तृतीय अंक, पृष्ठ 146
4 – वही तृतीय अंक, पृष्ठ 158–160
5– रत्नावली नाटिका– रामचन्द्र मिश्र, चतुर्थ अंक , पृष्ठ 188 – 190
6 – वासवदत्ता (सास्रं बाहु प्रसार्य।) एहि अतिनिष्ठुरे इदानीमति तावस्नेहं दर्शय । (इति कष्ठे गृहणाति) रत्नावली चतुर्थ अंक पृष्ठ 200

व्यापार अनुभाव एवं सम्भ्रम,, त्रास, दीनता आदि व्यभिचारी भाव हैं ।[1]

चतुर्थ अंक में अन्तःपुर में आग लगजाने के कारण भयानक कोलाहल होता है स्त्रियाँ भय से आर्त्तनाद करती है । आग की लपटों एवं धूमराशि से सम्पूर्ण वातावरण भयानक लगने लगता है।[2]

अद्भुत रसः– चतुर्थ अंक का ऐन्द्रिजालिक वृत्त से राजा व वासवदत्ता आश्चर्य चकित हो जाते है इन्द्रजाल के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित इन्द्र आदि देवगणों का दर्शन करते हैं। यहाँ पर अद्भुत रस की व्यंजना होती है। एष ब्रह्म सरोजे ....दिव्यनार्यः।।[3]

रसाभास :– श्रृंगार आदि रसों का अनुचित रूप से वर्णन रसाभास कहलाता है।[4] रत्नावली के तृतीय अंक में माधवीलतामण्डप में उदयन सागरिका की भ्रान्ति से वासवदत्ता से प्रणय याचना करता है ।[5] यहाँ पर वासवदत्ता आलम्बन विभाव, लतामण्डप, प्रदोषवेला, चन्द्रोदयादि उद्दीपन विभाव, राजा की प्रणय याचना अनुभाव, हर्ष उत्कण्ठा आदि व्यभिचारि भाव हैं। इन सबके होते हुये श्रृंगार रस का आस्वाद नहीं प्राप्त होता क्योंकि 'रति' स्थायी भाव उभयनिष्ठ न होकर मात्र उदयन निष्ठ है। अतः यहाँ संभोग रस की अभिव्यक्ति न होकर संभोग रसाभास की ही प्रतीति होती है।

प्रियदर्शिका का रसोन्मीलन :– महाकवि हर्ष रोमांचक प्रणय नाटिका के सन्दर्भ में अविस्मरणीय हैं। उनकी प्रियदर्शिका (नायिका) भारतीय सौन्दर्य निधि की अनमोलरत्न है । यद्यपि वस्तु निबन्धन की सुदृढता एवं भावसौन्दर्य की उत्कृष्टता की दृष्टि से 'प्रियदर्शिका' रत्नावली को पार नहीं पाती तथापि रसोन्मीलन की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है। इस नाटिका में प्रमुख रूप

---

1 – रत्नावली, द्वितीय अंक श्लोक 2 एवं 3

2 – हर्म्याणां हेमश्रृंग ....अन्तः पुरेऽग्निः ।। रत्नावली चतुर्थ अंक श्लोक 14

3 – रत्नावली 4 : 11

4– तदाभासा अनौचित्य प्रबेन्तिता काव्य प्रकाश ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 4 :49 पृष्ठ 141

5 – (क) आरूह्म शैलशिखर ....कपुरस्तान्निशानाथः – 3 : 12

(ख) कि पदमस्यं ....बिम्बाधरे ।। 3 : 13

से रसराज श्रृंगार की अभिव्यक्ति होती है। पूर्वराग विप्रलम्भ से परिपुष्ट संभोग श्रृंगार इसका अंगीरस है।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में धारागृहोद्यान में अरण्यका का दर्शन ही उदयन को आसक्त करा देता है। यद्यपि शास्त्रसम्मत 'आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः 'के अनुसार सर्वप्रथम नायिका का अनुराग वर्णित होता है, किन्तु प्रियदर्शिका नाटिका में सर्वप्रथम नायक के अनुराग का वर्णन किया गया है।

अरण्यका की सुन्दरता पर मुग्ध उदयन की यह' उक्ति कि वह ध न्य है जो इस शरीर के स्पर्श से होने वाले सुख का पात्र होगा ।[1] उसकी पूर्वरागावस्था को दर्शाती है । तदुपरान्त भ्रमर–निवारण के व्याज से राजा अरण्यका का आलिङ्गन प्राप्त करता है ।[2] तथा कहता है कि –

अयि विसृज विषादं भीरू भृड.गारस्वैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रयद्मे पतन्ति ।
विकिरसि यदि, भूयस्त्रासलालायताक्षी,
कुवलयवन लक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ।।[3]

इन्दीवरिका के स्थान पर राजा को देखकर अरण्यका लज्जा का अनुभव करती है। परन्तु विदूषक द्वारा उदयन का परिचय कराने के पश्चात वह राजा को सस्पृह तथा सलज्ज भाव से निहारती है।[4] यहाँ पर राजा तथा अरण्यका परस्पर दर्शन आलम्बन विभाव कण्ठालिङ्गन, उद्यानादि उद्दीपन विभाव लज्जा आदि चेष्टायें अनुभाव तथा हर्ष , स्मृति, शङ्का आदि संचारी भाव हैं। इन विभावादि से अभिव्यक्त रति स्थायी भाव रसराज श्रृंगार के रूप में चर्वमाण होता है।

1– राजा : ....। वयस्य, धन्यः खल्वसौय एतदङ्स्पर्श सुख भाजन भविष्यति।
प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र , द्वितीय अंक पृष्ठ 32

2 – (राजा कष्टे गृहणाति।) प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र, पृष्ठ 35

3– प्रियदर्शिका –रामचन्द्र मिश्र, 2 : 8

4 – अरण्यका – (राजानमवलोक्य सस्पृहंसलज्जं चात्मगतम्) अयं खुल स महाराजो यस्यांह तातेन दत्ता। स्थाने खुल तातस्य पक्षपात :। प्रियदर्शिका – रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृष्ठ 36

नाटिका में विप्रलम्भ श्रृंगार के अनेक मर्मस्पर्शी दृश्य भी प्राप्त है। धारागृहोद्यान से अरण्यका के गमनोपरान्त राजा वापी के0 किनारे बैठकर अपनी प्रेयसी का अनेक प्रकार से स्मरण करता है।[1] अरण्यका का अपने हृदय को उपालम्भ देना[2] तथा उसका यह कथन–'सर्वथा मरणं कतो में हृदयस्यान्या निवृत्तिः[3] उसकी उदयन में गाढ़ानुरक्ति तथा काम–पीडा की अतिशयता का ही सूचक है। तृतीय अंक मे विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा उदयन अरण्यका पर अत्यधिक अनुरक्त हैं जिसकी वजह से समस्त कार्यभार का त्याग करके उसके दर्शनोपय को सोचते हुये दिन व्यतीत कर रहे हैं।[4] विदूषक सोचकर कहता है कि राजा ने कहा था कि यदि उसे खोजने पर भी नहीं देख सको तो उस दीर्घिका से अरण्यका के हाथों के स्पर्श से द्विगुण सुखद तथा शीतल कमलिनी लेते जाना।[5] ये सब चित्र विप्रलम्भ श्रृंगार की अभिव्यक्ति कराते हैं।

प्रियदर्शिका में श्रृंगार रस का अंगीरस के रूप में पूर्ण परिपाक हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य रसों का भी अङग रस के रूप में नियोजन हुआ है।

वीर रस :– प्रियदर्शिका में श्रृंगार के पश्चात मुख्य रूपसे वीर रस का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम अङक में विन्ध्यकेतु[6] से संम्बन्धित वर्णन तथा चतुर्थ अंङक की कलिङगोन्मूलन[7] संम्बन्धी वार्ता 'उत्साह' स्थायी भाव की अभिव्यक्ति कराकर वीर रस की चर्वणा कराती है।

1– ह्त्वा पद्मवन द्युति ....अन्धकारा दिशः । प्रियदर्शिका 2 : 10
2–– अरण्यका –(निःश्वस्य) हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मांदुःखितां करोषि।
प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक, पृष्ठ 42
3 – प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक, पृष्ठ 43
4 – प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक, पृष्ठ 47–48
5 – विदूषक : (विचिन्त्य) अथवा भणित एवांह वयस्येन – 'यदि तामन्विष्यन्न प्रेक्षसे तत्ततोऽपि तावदीर्धिकातस्तस्या : करतल स्पर्श द्विगुणित सुखशीतलानि नलिनीपत्राणि गृहीत्वागच्छ इति।
प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, तृतीय अंक, पृष्ठ 48–49
6– प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक, पृष्ठ 13–15
7– प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 90–91, तथा 93–94

विन्ध्यकेतु द्वारा अकेले ही वत्सराज –सेना से भयानक युद्ध करना[1] अदम्य उत्साह को द्योतित करता है। विन्ध्यकेतु ने अपनी खड्ग से वत्सराज की तीनों प्रकार की सेनाओ (पैदल, हाथी, घोडे) को तबाह कर दिया और लडते लडते वीर गति को प्राप्त हुआ।

एवं बलत्रितयमाकुलमेक एव
कुर्वन्कृपाण किरणच्छुरितांसकूटः।
शस्त्रप्रहारशतजर्जरितोरूवक्षा
श्रान्तश्चिराद्विनिहतो युधि विन्ध्केतुः ।। [2]

वीर रस के चार भेदों (दान, दया, धर्म, युद्ध) में से प्रियदर्शिका में केवल युद्धवीर का नियोजन हुआ है।

हास्य रस – नाटिका में यत्र तत्र विदूषक की उक्तियों में हास्य की छटा भी दर्शनीय है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में उपवास नियम में वर्तमान देवी वासवदत्ता द्वारा स्वस्तिवायन हेतु आमंत्रित विदूषक की यह उक्ति हास्य की अभिव्यक्ति कराती है–

विदूषक : – (सगर्वम्) भो ईदृशः खलु ब्राह्मणः यश्चतुर्वेद पञ्चमदेवषड्वेद ब्राह्मणसहस्त्र पर्याकुले राजकुले प्रथम महमेव देवीं सकाशात्स्वस्तिवायनं लभे।[3]

करूण रस :– प्रियदर्शिका' में करूण रस भी दृष्टव्य है। प्रथम अंङक में विन्ध्यकेतु विजय के प्रसङग मे राजा विजय सेन से यह पूछता है कि क्या विन्ध्यकेतु के कोई सन्तान है जिस पर इस सन्तोष का फल दिखाया जाय ? इसके उत्तर में विजयसेन जो वर्णन करता है [4] उससे सामाजिक अपने शोक को रोक नहीं पाता।

चतुर्थ अंङक में करूण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी हैं

---

1 – पादातं पत्तिरेव ....कदलीकाननच्छेदलीलाम् ।। प्रियदर्शिका– 2 : 9
2 – प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, 2 : 10
3– प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक, पृष्ठ 22
4 – प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, प्रथम अंक, पृष्ठ 16 –17

वासवदत्ता को कञ्चुकी से जब यह ज्ञात होता है कि अरण्यका उसकी बहन है तो उसका सहज स्नेह फूट पड़ता है, और विषपान से मरणासन्न प्रियदर्शिका की रक्षा हेतु वह राजा से करूण निवेदन[1] करती है। मूर्च्छित प्रियदर्शिका के समक्ष वासवदत्ता का रूदन एवं भाव विह्वल कथन[2] करूण रस की अभिव्यक्ति कराता है।

इसी सन्दर्भ में मरणासन्न प्रेयसी को देखकर राजा का रूदन सामाजिकों को करूणाप्लावित कर देता है –

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिश :
कण्ठोऽस्याः प्रतिरूध्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छादिभा :
एतस्याः स्वसितं ह्रतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता, [3]
मन्येऽस्याः विषवेग एवहिपरं सर्वंतु दुखं मम्।।

अद्भुत रस : – नाट्याचार्यों ने निर्वहण सन्धि मे अद्भुत रस के नियोजन का भी निर्देश दिया है । प्रियदर्शिका नाटिक के अन्त में मरणासन्न प्रियदर्शिका के विषवेग को समाप्त करने वाली नागलोक से सीखी गयी राजा की मन्त्र विद्या का प्रभाव[4] अद्भुत रस की अभिव्यक्ति कराता है।

तापसवत्सराज का रसोन्मीलन :– भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार किसी काव्य में केवल एक ही रस अङगी या प्रधान हो सकता है। अन्य किसी रस उसके अङग बनकर रह सकते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार यह अङगी रस केवल वीर या श्रृंगार ही हो सकता है–

'एक एव भवेदङगी श्रृंगार वीर एव वा [5]

परन्तु महाकवि भवभूति ने – 'एको रसः करूण एव निमित्त भेदात्' [6]

---

1 – वासवदत्ता : आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व । मम भगिनी विपद्यते।
प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 100

2 – प्रियदर्शिका– रामचन्द्र मिश्र, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 101

3– प्रियदर्शिका 4 : 9

4– प्रियदिर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 102–103

5– दशरूपक

6– उत्तराम चरितम् तृतीय अंक श्लोक 47

कहकर करूण को भी अङगीरस बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया । कदाचित भवभूति से अभिप्रेरित होकर ही अनङगहर्ष ने तापसवत्सराज0 में करूण रस को प्रतिष्ठित करने का श्लाघनीय प्रयास किया हैं अनङगहर्ष की इस रचना में आद्योपान्त करूण रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती है।

प्रथम अंक में 'तद्वक्त्रेन्दुविलोकेन'[1] से जो करूण प्रवाह प्रारम्भ होता है, द्वितीय अङक में उसका उद्दाम वेग दर्शनीय है। वासदत्ता के दाह विषयक समाचार को सुनकर राजा का भाव विह्ल विलाप साामाजिको के नयन धैर्य को तोड़ देता है –

> दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मितमधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं
> स्नेहार्द्रं ह्रदयं न चन्दनरसस्पर्शानि चाङगानि वा ।
> कस्मिंल्लब्धपदेन किं कृतमिंद क्रुरेण दग्धाग्निना,
> नूनं वज्रमयोऽन्य एव दहनस्तस्येदमाचेष्टितम् ।। [2]

इसी प्रसंङग में वासदत्ता के कृतक पुत्र हरिण [3] तथा उसके द्वारा पालित शुक [4] को उपस्थित कर करूण. के उद्दीपन विभाव की सुन्दर योजना की गयी हैं । तृतीय अङक में वासवदत्ता का स्मरण करते हुये राजा का रूदन[5] करूण की अभिव्यक्ति कराता है।

चतुर्थ अंङक में पद्मावती के विवाह के सन्दर्भ में राजा वासवदत्ता को स्मरण करते हुये कहता है –

> चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत्क्वचिन्निर्वृतं
> येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षस्थली कल्पिता ।
> येनोक्तासि विना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते

1– तापसवत्सराज परितम् – 1 : 14
2 – तापसवत्स रामचरितम् – 2 : 9
3 – धरावेश्म विलोक्य दीन वदनो – तापसवत्सराज0 – 2:11
4 – कर्णान्त स्थित पद्मराग कलिकां –तापस वत्सराज0 – 2: 13
5 – सर्वत्र ज्वलितेषु कृकृकृकृदह्यमेह ।। तापसवत्सराज0 – 3 : 10

सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमे कर्तुं किमत्युद्यत :।।[1]

पञ्चम अङ्क में सिद्ध–वाणी पर विश्वास करराजा की वासवदत्ता से सम्मिलन की भावुक कल्पना[2] की योजना, करूण–धारा की अविच्छिन्नता को समर्थ बनाती है इसी अंक में राजा का विलाप सान्द्र करूण रस के रूप में चर्वमाण होता है।

किं प्राणा न मया तवानुगमनं कर्तुं समुत्साहिता :,
बद्धा किं न जटा न वा प्रतितरू भ्रान्तं वने निर्जने ।
त्वत्सम्प्राप्तिविलोभितेन पुनरप्यूढं न पापेन किं
किं कृत्वा कुपिता यदध न वचस्त्वं मे ददासिप्रिये ।।[3]

षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में वासवदत्ता के वियोग से दुःखी एवं अग्नि में प्राणोत्सर्ग हेतु उद्यत राजा अपने हृदय को उपालम्भ देते हुये कहता है कि उस भयंकर समय में (मेरे) हृदय के फटकर सैकडों टुकडें क्यों नहीं हो गये –

त्वसम्प्राप्ति विलोभितेन ....तस्मिन्क्षणे दारूणे ।।[4]

इसी के साथ पद्मावती के प्रति अपनी उपेक्षा का भी वह क्षोभ व्यक्त करता है –

विस्रम्भान्नमान्य विपर्सितं ....दग्धा बराकी मया ।।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक में जिस प्रकार सीता के वियोग से दुःखी राम विलाप करते हैं तापसवत्सराजचरितम् में वासवदत्ता के वियोग से दुःखी राजा उदयन की स्थिति भी लगभग वैसी ही है। अनङ्गहर्ष प्रस्तुत नाटक में करूण रस की प्रतिष्ठा कराने में प्र्याप्त सफल हुये हैं। अतः यह निर्भान्त रूप से कहा जा सकता है कि अनङ्गहर्ष करूण के सिद्धहस्त कवि है।

---

1 – तापसवत्सराज चरितम् – 4 : 13
2– (क) तथाभूते तस्मिन्मुनिवचासि ....115 : 2
(ख) भ्रभंगरूचिरे..........115 : 3
3 – तापसवत्सराज चरितम् – 5 : 5
4– तापसवत्सराज चरितम् – 6 : 3
5 – " " – 6 : 4

"यद्यपि तापसवत्सराज चरितम् का प्रमुख रस करूण ही है पर भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा के अनुसार इसे 'करूण विप्रलम्भ' कहना ही अधिक संगत होगा। क्योंकि अन्त में इसकी परिणिति संयोग श्रृंगार में ही होती है तथा इसके बीच में पद्मावती के साथ उदयन के विवाह से नायिकान्तर की प्राप्ति भी संभोग श्रंगार ही है पर यह मानना पड़ेगा कि कवि ने संभोग श्रृंगार की योजना करके भी करूण को आदि से अन्त तक बडी निपुणता के साथ निभाया है।"[1] तापसवत्सराजचरितम् में अङगीरस करूण विप्रलम्भ के अतिरिक्त यत्र तत्र अन्य रसों का भी नियोजन हुआ है –

हास्य रस :– तृतीय अङक के प्रारम्भ में माणवक तथा लामकायन का संवाद 'हास' स्थायी भाव को उद्‌बुद्ध कर हास्य रस का आस्वाद कराता है। अपनी स्थिति से दुःखी माणवक जब क्रोधपूर्वक जाना चाहता है तब लामकायन उसे बलपूर्वक खींचकर कहता है–

पूर्वाह्णे कृतभोजन व्यतिकरान्नितत्यैव नीरोगता,
कण्डूतिस्त्वकचादपैति शिरसः स्नानं यदा रोचते।
जात्याचार कदर्थनाविरहितं ब्राह्मण्यमात्मेच्छया
धूर्तैः सत्वहिताय कैरपि कृतं साधुव्रतं सौगतम् ।।[2]

तृतीय अङक में ही विदूषक राजा से कहता है कि मुझे इस सन्यासीपने से छुटकारा दिलाओ। इससे मैं बहुत ऊब गया हूँ – मोचय मामस्मात्प्रव्रज्यावलम्बात् । दृढमस्मि निर्विण्णोऽस्मात् ।[3] इसी के आगे लौकिक तथा नैष्ठिक वेष के सन्दर्भ में वह राजा से कहता है –

विदूषकः : – भो नाहं भौतिकं जानामि न नैष्ठिकम्। यदा त्वमेतत्पारिव्रज्यं परित्यजसि तदा अहमपि। या पुनरेषा दास्याः पुत्री....................

1 – तापसवत्सराजचरितम् – भूमिका पष्ठ – 37, साहित्य भण्डार, मेरठ
2 – तापसवत्सराजचरितम् – 3 : 3
3 – " " – तृतीय अङक पृष्ठ '90

........अद्भुतं विलसिष्यामि।[1] इन सभी स्थलों पर मृदु परिहास प्रस्फुटित होता है।

वीर रस :— तापसवत्सराजचरितम् में यौगन्धरायण के परिप्रेक्ष्य में वीर रस का पुट झलकता है । पाञ्चाल नरेश के विरूद्ध संग्राम में उसका युद्ध कौशल अद्भुत था । उसी का स्मरण करते हुये कुंज्रक अपने मन में कहता है — 'कथमहं तादृशं तस्य पराकमं न कथयिष्ये।तस्य प्रभोःपरोक्षेऽपि उद्यद्भ्रुकुटीतरङ्गितललाट दृष्टकृतान्त लीलेव वैरिदहने शक्तस्य' पञ्चम अंक मे युद्ध प्रसङ्ग[2] में वीभत्सं की भी योजना की गयी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष रससिद्ध में पूर्णतः निपुण है। उन्होने अपनी रचनाओं प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता, प्रियदर्शिका, रत्नावली, एवं तापसवत्सराज में भावानुरूप रस सिद्ध की है। भास ने जहाँ प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में 'वीर' को अंगीरस बनाया है वही स्वप्नवासवदत्तम में श्रृंगार के उच्च स्वरूप का आस्वादन कराया हैं हर्ष की प्रणयप्रियता ने उनको श्रृंगाराभिमुख बनाया है। दोनो नाटिकाओं में उनकी श्रृंगारा—भिव्यन्जना सामाजिको को आनन्द से सराबोर कर देती है। अनंड्गहर्ष ने जरूर करूण विप्रलम्भ की अभिव्यन्जना की है। उनका यह भाव अपने उच्चतम् स्वरूप में निःस्यूत हुआ है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी है कि व्याख्येय रचनांए वीर, श्रृंगार एवं करूण के श्रेंष्ठतम स्वरूप की अभिव्यक्ति कराने में पूर्ण समर्थ है।

****

---

1 — तापसवस्तराचरितम् — तृतीय अङक पृष्ठ 94

2 — तापसवत्सराजचरितम् — पञ्चम अङक, पृष्ठ 179 —180

पञ्चम अध्यायः
भावाभिव्यञ्जना

प्राणिमात्र भावों का आयतन है अर्थात् संसार भावपूर्णता से ओतप्रोत है। भावों के अनेक रूप जगत में प्रतिक्षण अनुभूयमान हैं। कहीं पर प्रेम का मधुर समीरण है तो कहीं पर कोप का उत्कट बवंडर । कहीं स्नेह की सान्द्र शीतलता का असहसास है, कहीं द्वेषाग्नि का विस्तृत आकाश है। कहीं तारूण्य का स्निग्ध ा संलाप है तो कहीं बार्धक्य का असहाय विलाप है कहीं तप के पुञ्जीभूत परिणाम हैं कहीं भोग में लिप्त आराम (राजमहल) हैं। इसी प्रकारअनेक अनुकूल एवं प्रतिकूल भावें से सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। महाकवियों ने अपनी कृतियों में इन मनोगत भावों को समुचित स्थान दिया है। हम अपनी अभीष्ट रचनाओं में महाकवियों की भावाभिव्यञ्जना पर दृष्टि प्रेक्षण करेंगे।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्तम् में महाकवि भास की भावाभिव्यंजना—

महाकवि भास भारतीय भावनाओं के कवि हैं । उनकी रचनाओं में पितृभक्ति, स्वामिभक्ति, पतिव्रतत्व, प्रेम, क्षमा, त्याग, स्नेह, आदि का उदारता पूर्वक चित्रण मिलता है। सामाजिक जीवन की सुख—दुःख, हर्ष—विषाद, राग—विलाप आदि गम्भीर एवं सामान्य सभी प्रकार की भावनाओं से ओतप्रोत इनकी रचनायें भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधृत रचना है। यद्यपि राजनीति संवेदन शून्य मानी जाती है तथापि इस नीरस वस्तु को आधार बनाकर भास ने अपनी वर्णन कुशलता एवं भावाभिव्यञ्जना से प्रतिज्ञायौगन्धरायण को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है। यौगन्धरायण में देशप्रेम एवं स्वामिभक्ति की भावना कूट—कूट कर भरी है। उदयन के बन्दी बनाये जाने का समाचार सुनकर वह उसको मुक्ति कराने की प्रतिज्ञा करता है।[1]

स्वामी भक्त यौगन्धरायण के इस आवेश की सहज ही अनुभूति की

1 — यदि शत्रुबलग्रस्तोः .... नास्मि यौगन्धरायणः, प्रतिज्ञायौगन्धरायण —1 : 16

जा सकती है। उदयन के बन्दी बना लिये जाने पर भी वह सदैव उसके साथ रहने के लिये तत्पर रहता है –

> रिपुनगरे वा बन्धने वावने वा,
>
> समुपगत विनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम् ।
>
> जितमिति कृतबुद्धिं वञ्चयित्वा नष्पंतं,
>
> पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतां श्लाघनीयम् ।।[1]

स्वामी के प्रति उसकी यह निष्ठा तथा कर्त्तव्य परायणता समाज के लिये एक आदर्श है। नाटक में उसकी विनम्रता, धैर्य, साहस एवं निष्ठा आदि भावों का चित्रण हुआ है।

नटक में पारिवारिक पृष्ठिभूमि को भी उकेरने का काम किया गया है। द्वितीय अंक में महासेन एवं अंगारवती की वासवदत्ता–विवाह के प्रति चिन्ता दिखाई देती है। राजा बादरायण से कहता है कि वह पुत्री के लिये योग्य सुन्दर, दयावान एवं पराक्रमशील वर चाहता है। यहीं पर वह यह भी स्पष्ट करता है कि स्त्रियाँ सुन्दर वर की अभिलाषा करती हैं।[2] यहीं पर महासेन का यह कथन कि यद्यपि पिता के प्रयास से कन्या को सुख की प्राप्ति उसके भाग्य पर ही निर्भर है, उसके भाग्यवादी भावों की पुष्टि करता है –

> कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
>
> भाग्येषु शेष मायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ।।[3]

पुत्री का विवाह माता–पिता के लिये बहुत बडे अनुष्ठान की भाँति होता है। इस भावुक कृत्य के लिये जहाँ उन्हें प्रसन्नता होती है कहीं वे के कन्या विछोह की कल्पना कर दुःखी हो जाते हैं। भास ने बडे ही साधारण ढ़ंग से इस भावना को व्यक्त किया है –

> अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
>
> धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ।।[4]

---

1 – प्रतिज्ञायौगन्धरायण – 1 : 14
2 – प्रतिज्ञायौगन्धरायण – 2 : 4
3– प्रतिज्ञायौगन्धरायण – 2 : 5
4– प्रतिज्ञायौगन्धरायण – 2 : 7

माता के कोमल भावों को भी भास ने व्यक्त किया है। रानी अङ्गारवती का वासदत्ता के प्रति वासल्य भाव प्रत्येक भारतीय माँ की वात्सल्यता का प्रतिनिधित्व करता है। हर माँ ही तरह वह भी पुत्री का विवाह गुणी व्यक्ति के साथ करना चाहती है। इस सम्बन्ध में वह जल्दबाजी में लिये गये निर्णय के खिलाफ है तभी तो वह राजा से कहती है कि पुत्री का विवाह तो मुझे अभीष्ट है किन्तु विवाह हो जाने पर इसका वियोग मुझे संताप उत्पन्न कर रहा है।[1] फिर अभी तो मेरी बेटी छोटी है। वस्तुतः द्वितीय अङ्क में वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में महासेन व अङ्गारवती के मध्य हुये विमर्श की कहानी प्रत्येक घर में घटित होने वाली कथा है, चाहे वह राजा का घर हो या रंक का। पुत्री के विवाह योग्य हो जाने पर माता–पिता को उसकी चिन्ता सताने लगती है। वर की उपयुक्तता का चयन उनके लिये दुष्कर कार्य होता है। वे पुत्री को ऐसे हाथों में सौपना चाहते हैं जहाँ पर उनकी पुत्री सुखी व सुरक्षित रह सके तथा कभी उन्हें उपालम्भ न मिले।[2] भास ने इस भावना को प्रतिज्ञायौगन्धरायण में बडे सुन्दर ढ़ंग से व्यक्त किया है। "दुहितः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः"[3] कहकर उन्होंने माता की कोमल वात्सल्य भावना को अभिव्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त महासेन की उदारता, दया, करूणा तथा गुणों के प्रति आग्रह की भावना का निदर्शन हुआ है । महासेन को बन्दीवत्सराज के घायल होने की दशा का पता चलता है तो वह करूणार्द्र हो जाता है तथा उसकी चिकित्सा के प्रबन्ध का आदेश देता है।[4]

भावसौन्दर्य की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तं महाकवि भास की उत्कृष्ट रचना है। इसमें जहाँ पति–पत्नि के सान्द्र प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया गया है वहीं प्रणय के कोमल तन्तुओं को भी सहेजने का प्रयास किया गया है। वासवदत्ता एक आदर्श नारी है, जो अपने पति के अभ्युदय के लिये अपना सर्वस्व त्याग देती है, तथा अपने कोमल हृदय पर पत्थर रखकर वह पति के दूसरे विवाह की योजना में यौगन्धरायण का पग–पग पर साथ देती है। उसके लिये पति का प्रेम ही सर्वस्व है,

---

1– अभिप्रेतं मे प्रदानं वियोगों मां सन्तापयति।
प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या० डॉ० गंगासागर राय –द्वितीय अंक पृष्ठ 52
2–प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या० डा० गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 54
3– " " " द्वितीय अंक पृष्ट 59
4– " " " द्वितीय अंक पृष्ठ 66

और वही प्रेम उसे अनेक कष्ट सहने की शक्ति प्रदान करता हैं स्वप्न वासवदत्तं में वासवदत्ता यदि अपने पति के निमित्त अपने सुखों की तिलांजलि देती हुयी दिखाई देती है तो राजा की भी भावुक पत्नीपरायणता दिखायी देती है। राजा अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करता है तभी तो उसके जलकर मर जाने के खबर सुनकर स्वयं भी विलाप करते हुये उसी अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्यागने को उद्यत होता है।[1] वासवदत्ता वियोग से व्याकुल राजा, पत्नी, वियोग से दुःखी चक्रवाक, राम, नल, तथा दुष्यन्त से भी अधिक दुःखी है –

नैवेदानीं तादृष्शाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्री विशेषैर्वियुक्ता :
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्तिभर्ता
भर्तष्स्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ।।[2]

पति--पत्नी का ऐसा प्रेम समाज के लिये एक आदर्श स्थापित करता है। उदयन राजा है उसे अनेक सुन्दरियों की सहज ही संप्राप्ति ही सकती है किन्तु वह एकनिष्ठ है। अपनी पत्नी पर ही उसका सम्पूर्ण प्रेम अर्पित है । उसकी इस एकनिष्ठता के कारण ही यौगन्धरायण को वासवदत्ता दाह प्रवाद की योजना करनी पड़ी क्योंकि राजा उदयन को वासवदत्ता के रहते हुये कोई और स्त्री स्वीकार्य न होती। पद्मावती के साथ विवाह हो जाने पर भी वह वासवदत्ता को विस्मरण नहीं कर पाते।[3]

भास ने स्वप्नवासवदत्तं में व प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भारतीय मूल्यों की पूर्ण रक्षा की है। वे पति–पत्नी के प्रेम को उच्चतम शिखर की ओर ले गये हैं तथा स्वामिभक्ति की भावना को नया आयाम दिया है।

प्रियदर्शिका व रत्नावली में महाकवि हर्ष की भावाभिव्यञ्जना :— प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों प्रणय नाटिकायें हैं। इनमें प्रणय के कोमल भावों ने उच्चतम शिखर प्राप्त किया है। हर्ष ने इन दोनों ही नाटिकाओं में पति–पत्नी के आदर्श प्रेम को चित्रित करते हुये प्रेमी–प्रेमिका जन्य भावों को भी

1– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 डा0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 40
2– ,, 1 : 13
3 – स्वप्नवासदत्तम् 4 : 6

अभिव्यञ्जित किया है। दोनों ही नाटिकाओं की सर्जना समान कथानक तथा समान भावभूमि पर हुयी है। वासवदत्ता दोनों ही नाटिकाओं में पट्टमहिषी है। उस पर नायक उदयन का प्रगाढ़ अनुराग है। इस प्रीति का निदर्शन प्रियदर्शिका के द्वितीय अङ्क एवं रत्नावली के प्रथम अङ्क में प्राप्त होता है । उदयन को अपनी प्रिय पत्नी वासवदत्ता पुष्प के समान कोमलांगी प्रतीत होती है।[1]

वासवदत्ता से युक्त उदयन स्वयं को कामदेव से भी अधिक भाग्यशाली समझता है क्योंकि अनङ्ग होने के कारण कामदेव वासवदत्ता के कर–स्पर्श सुख से वंचित रह गया–

अनङ्गेऽयमनङ्गत्वमघ निन्दिष्यति ध्रुवम् ।[2]

यदनेन न संप्राप्तः पाणिर्स्पर्शोत्सवस्तव ।।

प्रीति का कितना हृदयग्राही वर्णन है। यह दाम्पत्य प्रेम भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। सपत्नी प्रत्येक स्त्री के लिये कष्ट का कारण होती है । पत्नी सदैव अपने पति पर एकाधिकार एवं उसका एकान्तिक प्रेम चाहती है। किसी अन्य स्त्री पर अपने पति की अनुरक्ति उसे कदापि स्वीकार नहीं । हर्ष ने दोनों ही नाटिकाओं में नारी की इस सहज़ भावना को बडी ही निपुणता से व्यक्त किया गया है। रत्नावली में वासवदत्ता अपने रूपपिपासु पति के समक्ष सागरिका को इसलिये नहीं आने देती क्योंकि उसे भय है कि राजा कहीं उस पर अनुरक्त न हो जाये। इसी लिये कार्माचन के समय सागरिका के आ जाने पर वह मन ही मन सोचती है –वासवदत्ता – (निरूप्य आत्मगतम्।) अहो प्रमादः परिजनस्य। यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टि गोचरे पतिता भवेत्।[3]

उसका यह भय नारिगत भावों का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य स्त्री पर राजा की अनुरक्ति जानकर वासवदत्ता का कोप उद्दीप्त हो जाता है। वह अरण्यका व सागरिका को बन्दीगृह में डाल देती है। उसका यह कोप सहज ही है। अरण्यका के विषपान व सागरिका के जलकर मर जाने की आशंका से

---

1 – रत्नावली 1 : 19

2– वहीं 1 : 22

3 – रत्नावली व्या० डॉ० रामचन्द्र मिश्र, द्वितीय अंक पृष्ठ 41

वासवदत्ता का राजा उदयन से उनकी प्राणरक्षा हेतु निवेदन करना।[1] नारी के कोमल भावों की ही अभिव्यक्ति है। वासवदत्ता जानती है कि अरण्यका व सागरिका की प्राणरक्षा उसके लिये कष्ट जन्य होगी फिर भी उनकी प्राण रक्षा का निवेदन करती है। हर्ष ने इस सन्दर्भ में स्त्रियोचित भावों की रक्षा की है।

उदयन एक निष्ठावान पति के रूप में चित्रित हुये हैं। यद्यपि उनका हृदय अरण्यका, सागरिका पर अनुरक्त है तथापि वे वासवदत्ता के प्रति उदासीन नहीं हैं। वे एक आदर्श पति की भाँति अपने प्रणय के रहस्योदघाटनोपरान्त पत्नी से भयभीत हो जाते हैं। तथा पत्नी के प्रसादन को ही अभीष्ट प्राप्ति का उपाय मानते हैं।[2]

उदयन की यह भावना समस्त समाज की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार से उदयन में अनुरक्त अरण्यका व सागरिका दुर्लभ वस्तु की कामना के लिये अपने हृदय को उलाहना देती है, धैर्य बंधाती है।[3] उनकी इस प्रकार की भावना को प्रतिदिन समाज में देखा जा सकता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रिय दर्शिका व रत्नावली में हर्ष ने वैदुष्य के साथ–साथ भाव सान्द्रता से सहृदयों को पूर्ण रूप से आच्छादित कर दिया है।

तापसवत्सराजचरितम् में भावाभिव्यञ्जन :– अनङ्गहर्ष भावप्रवण कवि हैं। तापसवत्सराज चरितम में उन्होंने मानवीय संवेदनाओं की हृदयस्पर्शिनी अभिव्यक्ति की है। सम्पूर्ण कषति में प्रेम एवं करूणा का सुन्दर नियोजन किया गया है जो कि मानव हृदय की सहज अनुभूति हैं। अनङ्गहर्ष की इस कालजयी रचना में प्रथम अङ्क से ही मानव हृदय से निसृत भावों की अभिव्यञ्जना होने लगती है। मंत्री यौगन्धरायण को सहयोग का वचन देकर वासवदत्ता भावी पति वियोग दुःख से दुःखी हो जाती है किन्तु वचन के अनुसार वह इस भाव को राजा

---

1 –(क) वासवदत्ता आर्यपुत्र परित्रायस्व परित्रायस्व रत्नावली व्या० डॉ० राजेश्वर शास्त्री चतुर्थ अंक पृष्ठ 217

(ख) प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 100

2– (क) प्रियदर्शिका – तृतीय अंक पृष्ठ 78

(ख) रत्नावली – तृतीय अंक पृष्ठ 163

3– (क) प्रियदर्शिका–व्याख्याकार– रामचन्द्र मिश्र, तृतीय अंक पृष्ठ 42

(ख) रत्नावली–शिवराज शास्त्री, द्वितीय अंक पृष्ठ 42

के सम्मुख प्रदर्शित नहीं होने देना चाहती । उसके इस कार्य में उसकी परिचारिका काञ्चन माला बडी ही निपुणता से उसकी मदद करती है।[1]

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विनीत भद्र द्वारा राजभवन से जाती हुयी वासवदत्ता की दशा का वर्णन[2] भी बडे मार्मिक भाव की अभिव्यक्ति कराता है। वासवदत्ता के जलकर मर जाने के समाचार से व्याकुल हृदय राजा का विलाप बडी ही हृदयस्पर्शनी व्यञ्जना कराने में सफल होता है–

प्रिये वासवदत्ते –

दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मितमधु प्रस्यन्दि वक्त्रं न किं
स्नेहार्द्रं हृदयं न चन्दनरसस्पर्शानि चाङ्गानिवा।
कस्मिँल्लब्धपदेन किं कृतमिदं क्रुरेण दग्धाग्निना
नूनं वज्रमयोऽन्य एवं दहनस्तस्येदामचेष्टितम ।।[3]

वासवदत्ता के प्रेम में पूर्णतः निमग्न राजा का पद्मावती विषयक अपने व्यवहार के संबन्ध में काम देव को उलाहना[4] उसकी द्वन्दात्मक मनः स्थिति को दर्शाता है। यद्यपि राजा उदयन वासवदत्ता के पुनर्मिलन की आशा से ही पद्मावती से विवाह करने को तैयार होता है तथापि वह इस द्वितीय विवाह को महापातक के समान समझता है।[5] उसका यह भाव उसकी पत्नी परायणता की अभिव्यक्ति कराता है राजा उदयन वासवदत्ता के प्रति अत्यासक्ति के कारण पद्मावती की उपेक्षा करता है, उसको इस बात का एहसास है कि उसके इस बर्ताव से पद्मावती को कष्ट है कहना न होगा कि अनङ्ग हर्ष के तापसवत्सराज में भावसान्द्रता का उत्कृष्ट दर्शन होता है। सहज कोमल भावों की अभिव्यक्ति से सम्पूर्ण काव्य व्याप्त है। नाटक में प्रेम एवं करूणा की कोमल अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर दर्शनीय है।[6]

---

1 – तापसवत्सराज– प्रथम अंक, पृष्ठ 29
2 – गृष्हीत्वा भुञ्चन्ती ....गृहमाभिपतन्त्यैव हिदृशा, 2 :1
3 – तापसवत्सराजचरितम् – 2 : 9
4 – वही 2 : 10 : 11
5 – चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं ......प्रियतमे कर्तुं किमायुधतः 4:13
6– (अ) तापसवत्सराजचरितम् 6 : 3
(ब) " " 2 : 11–13

विस्रम्भान्न विपर्सितं न च मनो निर्यन्त्रणं मन्त्रितुं
व्यावृत्तापि विवर्तिता न शयने वाष्पं त्यजन्ती शनैः ।
मामुदिश्य तथानया व्यवसितं तत्रोपरूद्धं शुचा
कष्टं केवलमेव राजतनया दग्धा वराकी मया ।।[1]

यह भाव न सिर्फ राजा की संवेदनशीलता का परिचायक है अपितु समाज की भावना का बोधक है।

अनङहर्ष ने नारी जगत के मृदुभावों को बड़ी ही सहजता से प्रकट किया है। प्रेम, त्याग, करूणा, औदार्य और समर्पण की भावभूमि पर सृजित तापसवत्सराज में राष्ट्रप्रेम की भावना का भी पुष्ट प्राप्त होता है। प्रेम एवं समर्पण से परिपूर्ण इस नाटक में यौगन्धरायण व रूमण्वान की स्वामिभक्ति एवं यौगन्धरायण की वीर भावना की भी अभिव्यक्ति हुयी है। अनङहर्ष मानव मात्र के कवि हैं। उनकी भावना व्यक्ति विशेष की न होकर सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करती है। करूण की आर्द्र अभिव्यक्ति में इनके समक्ष भवभूति के अतिरिक्त कोई नहीं बैठ सकता । इनकी भावाभिञ्ज़ना ने ही तापसवत्सराज चरितम् को प्रतिष्ठा प्रदान की है। ।

सारांशतः कहा जा सकता है कि भास हर्ष एवं अनङहर्ष तीनों ही कवि भावाभिव्यञ्जना में निपुण हैं। उनमें भावसान्द्रता का बाहुल्य एवं भावाभिव्यक्ति की प्रबल सामर्थ्य है। दूरदर्शी प्रतिभा के साथ–साथ उनमें तलस्पर्शनी अभिव्यक्ति का भी अभाव नहीं हैं।

वर्णन सामर्थ्य :–

सौन्दर्य वर्णन :– सौन्दर्य का विमर्श दो रूपों में किया गया है, प्रथम विषयगत अथवा वस्तुनिष्ठ और द्वितीय विषयिगत अथवा आत्मनिष्ठ। प्रथमकोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान वस्तु अथवा विषय में और द्वितीय कोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान मनुष्य के मन में मानते हैं। वास्तव में, सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनो ही मानना उचित एवं संगत होगा । पहले में नयनाकर्षण तथा दूसरे में अन्तर्मन का आकर्षण प्रधान होता है। आकर्षण ही वस्तुतः सौन्दर्य का

1– तापसवत्सराजचरितम् 6 : 4

प्राणतत्व है ।

भारतीय सौन्दर्य धारणा में मनुष्य तथा प्रकृति दोनों ही एक ही सौन्दर्य तत्व का अनुभव करते हुये रसलीन होते है और इसी कारण दोनो की सीमायें प्रायः एक दूसरे में मिल जाया करती है। संस्कृत साहित्य के कवि इसी अस्था से अनुप्राणित होकर सौन्दर्य के वर्णन में मनुष्य तथा प्रकृति को अभिन्न एवं समाशील मानते रहे हैं। प्रसंगानुरूप उन्होंने सौन्दर्य कों चाहे वस्तुनिष्ठ, चाहे आत्मनिष्ठ कुछ भी बताया हो उनकी काव्यसाधना सौन्दर्य के इस लोकोत्तर सृष्टिव्यापी तथा अविभाज्य स्वरूप की धुरी पर ही घूमती रही है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण का सौन्दर्य वर्णन :– प्रतिज्ञायौगन्धरायण की रचना राजनीतिक धरातल पर हुयी है । अतएव इसमें पारम्परिक सौन्दर्य चित्रण का अभाव है। इसका सौन्दर्य पारम्परिक चित्रों से हटकर विभिन्न रूपों एवं शैलियों में उपस्थित होकर आनन्दित करता है । इस नाटक का समस्त सौन्दर्य उदयन के स्वरूप एवं यौगन्धरायण की क्रियाशैली के रूप में प्रस्फुटित होता है। यौगन्धरायण का साहस उसका आत्मविश्वास स्वामिभक्ति एवं नीतिकुशलता आदि गुण उसके सौन्दर्य के ही प्रकारान्तर रूप हैं। राजनीति के हृदय विहीन पट पर चित्रित सौन्दर्य का यही स्वरूप उभरता है।[1] इसमें प्रकृति का सौन्दर्य वर्णन नागवन[2] के नामोल्लेख तक ही सीमित है। हंसक द्वारा नागवन में घटित घटना का वर्णन भी सौन्दर्य चित्रण की सामर्थ्य से परिपूर्ण है।[3] यौगन्धरायण द्वारा उदयन के स्वरूप का वर्णन ही उसके गुण एवं सौन्दर्य स्वरूप हैं–

पीनांसस्य विकृष्टपर्वमहतो नागेन्द्र हस्ताकृते –
श्चापास्फालिकरस्य दूरहरणाद्र बाणाधिकारोपिणः ।
विप्रभ्यर्चयितुः श्रमेषु सुहृदां सत्कर्तुरार्लिङ्गनै –
र्न्यसतं तस्य भुजद्वयस्य वलयस्थानान्तरे बन्धनम् ।।[4]

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायण–व्याख्याकार डॉ गंगासागर राय, 1 : 16
2 – " " प्रथम अंक, पृष्ठ 15
3 – " " प्रथम अंक , पृष्ठ 15 –16
4 – " " 1 : 8

स्वप्नवासवदत्तम् का सौन्दर्य चित्रण :— स्वप्नवासवदत्तं करूण विप्रलम्भ प्रधान रचना है अतः इसमें तदनुरूप सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। भास की इस प्रौढ़ कृति का सौन्दर्य चित्रण किसी परम्परा का वाहक न होकर एक विशिष्ट मार्गानुगामी है। इस नाटक में सौन्दर्य के अनेक हृदयावर्जक चित्र प्राप्त होते हैं। ये चित्र प्राकृतिक वर्णनों में भी है तथा श्रृंगारिक भावनाओं में भी। इसके अतिरिक्त पात्रों के मानसिक चारित्रिक सौन्दर्य भी दर्शनीय है। वस्तुतः भास सौन्दर्य चित्रण में मांसल सौन्दर्य की अपेक्षा आत्मिक व मानसिक सौन्दर्य, पर बल देते हैं।

प्रियदर्शिका व रत्नावली का सौन्दर्य चित्रण :— प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों ही प्रणय नाटिकायें हैं। सौन्दर्य वर्णन प्रणय व्यापार का अनिवार्य अङ्ग है। प्रियदर्शिका व रत्नावली में इसका भलीभाँति ध्यान रखा गया है। दोनों में ही परम्परा प्रथित वर्णन बड़ी सुन्दर शैली में प्रस्तुत किये गये हैं। राजा के स्नान घर की स्त्रियों के व्यापार के परिप्रेक्ष्य में जो सौन्दर्य उभरता है वह दर्शनीय है।[1] भ्रमर परित्राण के सन्दर्भ में राजा का अरण्यका के प्रति कथन उसके अप्रतिम सौन्दर्य की पुष्टि करते है।[2] द्वितीय अङ्क में रानी वासवदत्ता का सौन्दर्य चित्रण कितना मनोहर एवं हृदयाह्लादक प्रतीत होता है। –

क्षामां मङ्गलमात्रमण्डनभृतं .....प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम्।[3]

इसी के आगे अरण्यका के सौन्दर्य से अभिभूत राजा का अनिश्चय अद्भुत सौन्दर्य का चमत्कार उत्पन्न करता है।[4] हर्ष, वासवदत्ता के प्रणयकोप का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रयत्नपूर्वक रोका गया क्रोध छिप नहीं रहा है। आखों में लाली, वाणी में अस्पष्टता एवं छाती में कम्पन है –

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनोस्ताम्रा तथापि द्युति,
माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गदगदा वागियम् ।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः,
कोपस्ते प्रकट प्रयत्नाविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।[5]

---

1 – लीलामज्जनमङ्गलोपकरण 0, प्रियदर्शिका – 1: 11
2 – अयि विसृज विषादं 0 " – 2 : 8
3 – प्रियदर्शिका – 2 : 1
4 – पातालाद्भुवनावलोकनपरा0 – प्रियदर्शिका 2 : 6
5 – प्रियदर्शिका – 3 : 13

राजा एक ओर क्रुद्ध वासवदत्ता से भयभीत है और दूसरी ओर अरण्यका के मनोहर मुख को देखकर आकृष्ट है। वह धोर संकट में पड़ा हैं। उसकी द्विविधापूर्ण मनः स्थिति का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है –

स्वेदाम्भःकणभिन्नभीषण............क्षिप्तोऽस्म्यहं संकटे ।।[1]

रत्नावली नाटिका तो हर्ष की सौन्दर्य प्रियता का साक्षात्मूर्त स्वरूप है। इसमें मानवीय भावों से संयुक्त अनेक कमनीय दृष्यों का मनोहर वर्णन प्राप्त होता है।[2]

मदन महोत्सव के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण कौशाम्बी उल्लासमय है।[3] सर्वत्र आनन्द की छटा व्याप्त है। राजा, रंक सब एक रंग हो गये हैं। इस वर्णन को पढ़ते ही सारा चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। कामार्चन में संलग्न वासवदत्ता का अनुपम सौनदर्य राजा को भाव विभोर कर देता है –

प्रत्यग्रमज्जन विशेष ....विटपिप्रभवा लतेव ।।[4]

रत्नावली की सागरिका तो ब्रह्मा द्वारा रची तिलोत्तमा है। उसके चित्रस्थ सौन्दर्य को निहारता हुआ राजा मंत्रमुग्ध हो जाता है। सागरिका का नख शिख वर्णन कितना सहज एवं सुन्दर है –

कृच्छ्राद्रूरूयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले,
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्ग विषमे निष्पन्दतामगता ।
मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारूह्म तुङ्गौ स्तनौ
साकाक्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।।[5]

राजा को सागरिका के मुखचन्द्र में चन्द्रमा की समस्त विशेषतायें दिखाई देती हैं वह कहता है कि तुम्हारे मुखचन्द्र के रहते हुये चन्द्रमा उदय हो रहा है, यह इसकी मूर्खता है। प्रेमिका के मुख में अपरिमित सौन्दर्य विन्यास है –

किं पद्मस्य रूचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं,
वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरूते नालोकमात्रेण किम्।

---

1 प्रियदर्शिका – 3 : 15
2 – रत्नावली – 1 : 24
3 – " " – 1: 14
4 – " " 1 : 20
5– रत्नावली 2 : 11

वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतासुरभ्युद्गतो
दर्पःस्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे ।।[1]

सागरिका के सौन्दर्य पर राजा इतना मुग्ध है कि वह कल्पना करता है कि स्वयं ब्रह्मा भी इसे बनाकर आनन्द से गद्गद हो गये होंगे, उनके चारों मुखों ने एक साथ साधुवाद दिया होगा और आश्चर्य के कारण उनका सिर हिल गया होगा। कवि की यह सर्वथा नूतन कल्पना है –

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाजपत्रत्विष ,
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्रयललाभभूतामिमाम् ।।[2]

कहना न होगा कि सागरिका के सौन्दर्य चित्रण में कवि ने कलम तोड़ दी है। नाटिका में भाँति–भाँति से उसके सौन्दर्य के चित्र खीचे गये हैं। हर्ष सौन्दर्य के उपासक हैं। उन्होंने दोनों ही नाटिकाओं में शास्त्रीय विधानों एवं परम्परा प्रथित वर्णनों में सौन्दर्य का निवेश किया है ।

तापसवत्सराजचरितं का सौन्दर्य वर्णन :– तापसवत्सराजचरितम् में करूण की अविरल धारा प्रवाहित हुयी है। यह उत्कृष्ट कृति सहृदयों को सौन्दर्य की सान्द्र छाया में सुखद अनुभूति कराती है। यह सौन्दर्य प्राकृतिक चित्रणों, भावों की अभिव्यक्तियों तथा पात्रों की शारीरिक चेष्टओं में परिलक्षित होता है। वासवदत्ता के लावण्य पर मुग्ध राजा द्वारा प्रेम को असमाप्तोत्सव[3] कहना भाव सौन्दर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है वासवदत्ता के आङ्गिक सौन्दर्य की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है। उसकी दोनों आखें मुकलित कमल वन, कर कमलों से पूर्ण तालाब, सौन्दर्य उपवनी, मुख चन्द्र तथा दन्तपंक्ति चमेली के पुष्प हैं –

फुल्लेन्दीवरकाननानि नयने पाणी सरोजाकराः
सैन्दर्योपवनी शशाङ्कवदना जातीप्रसूती रदाः ।
प्रत्यङ्गेषु नवैव सम्प्रति शरल्लक्ष्मीरियं दृश्यते,

1– रत्नावली 3 : 13
2– ,, 2 : 16
3– तापसवत्सराजचरितम् तद्ववक्त्रेन्दुविलोकेन 1 : 4

तच्चिन्हैरधुना प्रसाधन विधौ बद्धो वृथैवादर : ।।[1]

प्रेम और सौन्दर्य का अन्योन्याश्रित सबन्ध है। जहाँ प्रेम होगा वहाँ सौन्दर्य अवश्य होगा और जहाँ सौन्दर्य होगा वहीं प्रेम का निवेश होगा। तापसवत्सराज प्रणयपूर्ण रचना है अतएव इसमें सौन्दर्य का पूर्ण निवेश हुआ है। आङ्गिक सौन्दर्य की अपेक्षा इसमें भावसौन्दर्य का उत्कृष्ट निवेश हुआ है –

उत्कम्पिनी भयपरिस्खलितां शुकान्ता
ते लोचने प्रतिदिशं विधुरे छिपन्ती ।
कूरेण दारूणतया सहसैव दग्धा
धूमान्धि तेन दहनेन न वीक्षितासि ।।[2]

अनङ्गहर्ष में भाव के साथ–साथ वर्णन कौशल का भी प्राचुर्य है। वे किसी वर्णन को इतने स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करते है कि सामाजिक गदगद हो जाता है। उनके वर्णन सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत श्लोक दृष्टव्य है –

सद्यः स्नातजपस्तपोधन प्रान्त ....।

तापसवत्सराज में प्राकृतिक सौन्दर्य के भी अनेक हृदया वर्जक चित्र देखे जा सकते हैं।

प्रकृति चित्रण :– प्रकृति प्राणिमात्र की चिर सहचरी है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही उससे मानव का सम्बन्ध रहा है। प्रकृति कभी मानव को अपनी स्निग्ध कोड में विश्राम देती है तो कभी उसकी विभिन्न कीडाओं में संगिनी बनती है। कभी वह प्रेरणापुञ्ज के रूप में मानव के समक्ष होती है तो कभी मानवीय भावों का मूर्तिमान स्वरूप होती है। प्रकृति का रमणीय अंचल मनुष्य को सदैव आकर्षित करता रहा है, यही कारण है कि संस्कृत वाङ्गमय का अधिकांश भाग प्रकृति के सुरम्य परिवेश में सृजित हुआ है। संस्कृत कवि कभी इसके वास्तविक रूप पर कभी इसके आश्रयण स्वरूप पर और कभी इसके उद्दीपन रूप पर भाव विभोर हुये है। रूप पर भाव विभोर हुये हैं। काव्य में तो इसके उद्दीपन रूप की लालित्यपूर्ण योजना हुयी है। सुख–दुःख, हर्ष विषाद, राग, करूणा, आदि प्रत्येक स्थिति में

1– तापसवत्सराजचरितम् 1 : 16
2– ″ ″ 2 : 16

प्रकृति ने मनुष्य का सम्पूर्ण साहचर्य निभाया है। निश्चित रूप से यही कारण है कि मनुष्य का प्रकृति के साथ तादात्म्य तथा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हुआ है मानवीय संवेदनाओं को प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन में महसूस किया जा सकता है। उसकी यही विशेषता मानव व प्रकृति को एकाकार करती है।

संस्कृत महाकवियों ने प्रकृति के वन वाटिका, नदी, निर्झर, पर्वत, सागर आदि विभिन्न रूपों के वर्णन में अपनी सम्पूर्ण कल्पना सामर्थ्य का निवेश कर दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में महाकवि भास, हर्ष एवं अनङ्गहर्ष की शोधाभिप्सित कृतियों प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासवदत्तं, प्रियदर्शिका, रत्नावली, तापसवत्सराजचरितम् में प्रकृति वर्णन प्रेक्षणीय है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण व स्वप्नवासवदत्तम् में प्रकृति चित्रण –

महाकवि भास प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का बडा मनोहर एवं हृदयाहादक वर्णन करते हैं। सूर्योदय, मध्याह्य, संध्यावेला, आश्रम, वन, निर्झर, सरिता ऋतुयें आदि भास के प्रिय प्राकृतिक दृश्य हैं। उनके वर्णनों में इतनी चारुता, स्वाभाविकता एवं सहजता है कि वर्णित चित्र मानस पटल पर प्रत्यक्ष सा हो उठता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण राजनीति की कठोर भावभूमि पर सृजित रचना है अतः इसमें प्राकृतिक चित्रों के वर्णन का अभाव सा है। प्रकृति चित्रण के नाम पर इसमें नागवन[1] का नामोल्लेख मात्र हुआ है। जबकि स्वप्नवासवदत्तम् में भास ने अनेक प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बडे ही सुन्दर, सजीव, हृदयार्जवक एवं मनोहारी ढ़ंग से किया है। तपोवन का वर्णन पढ़ते ही उसका चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित सा हो जाता है। वहाँ हरिण निर्भय तथा निश्चिंत होकर घूमते हैं, प्रेम पूर्वक यत्नों से पाले पोसे वृक्षों की शाखायें फल फूलों से लदी हुयी हैं, बहुत सी कपिला गायें घूम रही हैं, आसपास की जमीन अकृष्यमान है एवं वातावरण धूममय है –

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् प्रथम अंक पृष्ठ 15

निःसंन्दिग्धमिदं तपोवनमय धूमो हि ब्रह्वश्रय। ।।[1]

सूर्यास्त का कितना मनोरम चित्रण हुआ है। चिडियाँ घोसलों में गयी, मुनिलोग नहाने लगे, होम की अग्नि प्रदीप्त मालूम हो रही है।, तपोवन में धुआँ फैल रहा है और बहुत ऊँचे से गिरे हुये सूर्य भी अपनी किरणों को समेटते हुये रथ लौटाकर धीरे–धीरे अस्ताचल को जा रहे हैं–

खगाः वासोपेताः सलिलिमवगाढ़ो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्।।[2]

चतुर्थ अङक में सारस पंक्ति के चित्रण में भास ने अपूर्व सौन्दर्य का विन्यास किया है। यह सारस पंक्ति शरद ऋतु से निर्मल आकाश मण्डल में फैलायी गयी बलभद्र की भुजा के समान सुन्दर है –

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु
निर्मुच्यमान भुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ।।[3]

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि भास प्रकृति चित्रण में प्रवीण कवि हैं। यद्यपि प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्रकृति चित्रण का कहीं अवकाश प्राप्त नहीं होता तथा स्वप्नवासवदत्तं में भी प्रकृति के कुछ ही चित्र प्राप्त होते हैं तथापि वे चित्र बड़े ही हृदयाग्रही व स्वाभाविक बन पड़े हैं।

प्रियदर्शिका व रत्नावली में प्रकृति चित्रण :– प्रियदर्शिका व रतनावली प्रणयपूर्ण रचनायें हैं। प्रणय और प्रकृति का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कभी यह प्रकृति प्रणय के सन्निवेश में सहायक होती है तो कही प्रणय को उद्दीप्त करने की भूमिका निभाती हैं, कहीं विरही के आश्वासन एवं प्रिय मिलन की आशा का संचार करती है। महाकवि हर्ष ने वृक्ष, वन, पर्वत, प्रसाद, उपवन,

---

1– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 12
2– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 16
3– " " 4 : 2

सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न ग्रीष्म आदि का अत्यन्त प्रभावपूर्ण चित्रात्मक शैली में वर्णन किया है। इसका प्रकृति चित्रण नितान्त सूक्ष्म, सुन्दर एवं संश्लिष्ट है। प्रियदर्शिका में ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न का कितना स्वाभाविक वर्णन किया गया है भगवान सूर्य के मध्य में आ जाने पर छोटी–छोटी मछलियाँ जल में उदल रही है, मानों धूप के कारण वापी का पानी उबल रहा हो, मोर अपने पंख फैलाकर छाते का काम ले रहा है। प्यासा मृग का बच्चा थाले के जल के लोभ से पेडों की छाया में पहुंच रहा है। भौरां हाथी के कपोल को छोड़कर उसके कान में घुस रहा है –

आभात्यर्कांशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्तनैदीर्धिकाम्भ
श्छत्राभं नृप्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।
छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरूपैत्यालवालाम्बुलुब्धः
सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।।[1]

द्वितीय अङ्क में धारागृहाद्यान की रमणीय शोभा का मनोरम चित्रण हुआ है।[2] यहाँ अनवरत झरते हुये विविध फूलों से शिलातल सुवासित हो उठे हैं, सुगन्धि के लोभ से लीन भ्रमरगण के भार से बकुल तथा मालती पुष्प के समूह टूट रहे हैं। विकसित कमलों से गिरने वाले परागपुञ्ज से पीत अङ्गराज को धारण करने वाले तथा अस्पष्ट भाषी भ्रमरगण मदिरापान कर अनर्गल सा कुछ गा रहे हैं।[3] सप्तपर्ण का वृक्ष वर्षाऋतु की समानता रख रहा है।[4] वापी की शोभा की आनन्दित करने वाली है दायित्व के नूपुर का अनुकरण करने वाला हंस कानों को आनन्दित कर रहा है, तट के वृक्षों के छिद्रो से दिखने वाली प्रासादमाला आँखों को तृप्त कर रही है। सुगन्धित कमलामोद से नाक वापी की शोभा अनेकेन्द्रिय सुख समृद्धि का अनुभव कराती है।

श्रोतं हंसस्वनोऽयं सुखयति दयितानूपुरल्हादकारी
दृष्टिप्रीतिं विधत्ते तटतरूविवरालक्षिता सौधपालि।

---

1 – प्रियदर्शिका – 1 : 12
2 – " रामचन्द्र मिश्र पृष्ठ 22 से 24
3 – " – 2 : 2
4 " – 2 : 3

गन्धेनाम्भोरूहाणां परिमलपटुना जायते घ्राण सौख्यं
गात्राणां ह्लदमेते विदधति मरूतो वारिसम्पर्क शीताः ।।[1]

विकसित कमल के सदृश कान्ति वाली तथा स्वच्छ वापी उद्यान देवता की आँख सी सुशोभित हो रही है जो दर्शन मात्र से प्रसन्न कर रही है।[2]

रत्नावली में हर्ष का प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण परिलक्षित होता है। इसमें प्रकृति का सूक्ष्म एवं मनोहारी चित्रण मिलता है। प्रथम अंक में मकरन्दोद्यान की शोभा पराकाष्ठा पर है। वहाँ प्रणमान को तोड़ देने वाला मलयानिल बह रहा है, जो कामदेव का प्रियदूत एवं आम्रवृक्षों को मञ्जरित करने वाला है।[3]

मलयवायु के संचालन से विकसित होती हुयी आम्रमञ्जरियों के पराग समूह से शामियाना सा बना हुआ है। मत्तभ्रमरों का गुज्जार व कोकिल की मधुर कूकों का संगीत कानों का आनन्दित कर रहे हैं।[4] वसन्तकाल में मलय पवन के आघात से चलायमान शाखा समूहों से बारम्बार झूलते हुये वृक्ष मलवाले की तरह प्रतीत हो रहे हैं।[5]

मौलसिरी का वृक्ष पुष्प वर्षा से वातावरण को सुगन्धित कर रहा है।[6] दिवसावसान का बड़ा रमणीय मानवीकरण हुआ है। पूर्व दिशा, विरह के कारण पीले मुख से हृदय में अवस्थित प्रियतम को विदित कराती हुयी वनिता के समान उदयाचल में अपह्नुत दिशानाथ चन्द्रमा की सूचना दे रही है –

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङनिशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ।।[7]

दिवस की परिणिति का एक और सुन्दर चित्र रत्नावली में चित्रित है, अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति ....दिकचक्रमर्कः ।।[8] अस्ताचल को जाता हुआ सूर्य अपनी प्रियतमा कमलिनी को सांत्वना देता हुआ कहता है कि हे कमलनयने यह मेरे

---

1 – प्रियदर्शिका 2 : 4
2 – '' – 2 : 5
3 – रत्नावली – 1 : 13
4 – रत्नावली, व्या0 डा0 राजेश्वर शास्त्री पृष्ठ 34
5 – '' '' – 1 : 17
6 – '' – 1 : 18
7 – रत्नावली – 1 : 24
8 – '' – 3 : 5

जाने का समय है । मैं जा रहा हूँ । सुबह सोती हुई तुमको मैं ही विकसित करूँगा।

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरूहिण्या : ,
सूर्योऽस्तमस्तक निविष्टकरः करोति ।।[1]

सूर्य के अस्ताचल को जाने के पश्चात गाढ़ अन्धकार वक्षों, पर्वतों, नगरों को आच्छादित करता हुआ संसार के नेत्रफल का अपहरण कर लेता है।

तापसवत्सराजचरितम में प्रकृति चित्रण :– तापसवत्सराज चरितम् करूण विप्रलम्भ श्रृंगार की भावभूमि पर सृजित अनूठी रचना है। इन मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना के लिये प्रकृति का आश्रय लिया है। प्रथम अंक में शरद ऋतु से वासवदत्ता से कहता है कि तुम्हारी आँखे मुकुलित कमल वन, हाथ कमलों से भरे तालाब हैं। सौन्दर्य बगीची है। मुख चन्द्रमा तथा दंतपंक्ति चमेली के फूल हैं। प्रत्येक अंग में शरदकाल की नवीन शोभा परिलक्षित हो रही है –

फुल्लेन्दीवरकाननानि नयने पाणी सरोजाकरा :
सैन्दर्योपवनी शशाङ्कवंदना जातीप्रसूती रदाः ।
प्रत्यङ्गेषु नवैव सम्प्रति शरल्लक्ष्मीरियं दृश्यते
तच्चिन्हरैधुना प्रसाधनविधौ बद्धौ वृथैवादरः ।।[2]

सूर्यास्तोपरान्त ऊपर को उठते हुये धूम्ररेख की कान्ति के समान अन्धकार में छोटे–छोटे आग के कणों के समान पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाले, ताराओं के समूह से आकाश के व्याप्त हो जाने पर। दुःख के कारण जिनकी भौंरे रूपी तगड़ी खिसक रही है ऐसी कमलिनी रूपों प्रियतमाओं के झुक जाने पर , सूर्य के अग्नि जैसे संध्याकालीन प्रकाश में प्रवेश करने के कारण ऐसा प्रतीत होता है। मानो दिन श्री जल रही है।[3] अन्तःपुर में भी संध्या सुन्दर लग रही है।[4] मध्याह्न के समय

---

1 – रत्नावली 3 : 6
2 – तापसवत्सराजचरितम् – 1 : 16
3 – " " 1 : 21
4 – " " 1 : 22

आश्रम का चित्रण[1] भी बडे सजीव ढ़ंग से हुआ है। चढ़ी हुयी पिपीलिकाओं के भार से श्यामाक के फूल की पत्तियाँ झुक गयी हैं। चारों तरफ हरितिमा से व्याप्त कुटियों के खलिहान आश्रम बालाओं द्वारा स्वच्छ गोबर से लीपे जा चुके । पालतू पक्षियों द्वारा व्याकुल की जाती हुयी बालायें प्रिय मृगों के खाने से बचे हुये नीवार की बलि इधर–उधर विखेर रही हैं। प्यास, से व्याकुल हिरंण शावकों एवं पक्षी का बड़ा हृदयग्राही सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण है –

सद्यस्स्नातजपत्तोधन जटाप्रान्तस्त्रुताः प्रोन्मुखं
पीयन्तेऽम्बुकणाः कुरङ्गशिशुभिस्तृणाव्यथाविक्लवैः।
एतां प्रेमभरालसांच सहसा शुष्यन्मुखीमाकुलां
श्लिष्टां रक्षति पक्षसम्पुट कृतच्छायां शकुन्तः प्रियाम्।।[2]

दोपहर के समय की छाया का प्रियतमा के रूप में कितना सूक्ष्म विवेचन हुआ है। प्रथम भारी मान के कारण बहुत दूर तक गयी हुयी फिर वियोग के कारण (गर्मी की अधिकता के कारण) कमजोर की जाती हुयी बहुत दुबली की गयी, गोदी में आने को (मध्य मे आ जाने से) अङ्गो को सिकोडने वाली (बहुत छोटी दिखाई देने वाली) सभी अङ्गों से प्रेम करने वाली प्रियतमा के समान यह वृक्ष छाया को आश्रय दे रहा है–

आदौमानपरिग्रहेणगुरूणा दूरं समारोपितां
पश्चात्तापभरेण तानवकृता नीतां परं लाघवम्।
उत्सङ्गान्तरवर्तिनीमनुगमात्सम्पिण्डताङ्गीमिमां
सर्वाङ्ग प्रणयां प्रियामिव तरूच्छायां समालम्बते।।[3]

नाटक में गङ्गा, यमुना के संगम[4] के साथ–साथ कबूतरी की क्रीडा[5] व कामदेव के उपादान मौलसिरी, कुरबक, रक्ताशोक का सुन्दर उल्लेख हुआ है। अन्तःपुर की ज्वालाओं का नितान्त स्वाभाविक वर्णन हुआ है।[6]

अनङ्ग हर्ष कोमल हृदय तथा भावुक कवि हैं। उनके नाटक में प्रकृति के अनेक

1– तापसवत्सराजचरितम् – 3 : 9
2– ,, ,, 3 : 18
3–तापसवत्सराजचरितम् – 3 : 17
4– ,, ,, 6 : 15
5– ,, ,, 3 : 13
6– ,, ,, 2 : 3, 4, 5

सरस तथा मृदु चित्र प्राप्त होते हैं। अनङ्गहर्ष की प्रकृति मानव का हर दशा में साथ निभाने वाली तथा उसकी मार्मिक संवेदनाओं को महसूस करने वाली है।

भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष का प्रणय चित्रण —प्रणय मानव ह्रदय में व्याप्त एक नैसर्गिक वृत्ति है। मानव जीवन को सरस बनाने एवं उसे उदात्त मार्ग की ओर अग्रसर कराने वाली चित्तवृत्ति प्रेम ही है। यह वृत्ति कवियों को रचना के लिए विशाल पृष्ठभूमि प्रदान करती है। महाकवि भास, हर्ष एवं अनंग.हर्ष की कृतियों प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तमं, प्रियदर्शिका रत्नावली एवं ताप़सवत्सराज में इस वृत्ति के स्पन्दन को महसूस किया जा सकता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की रचना राजनीतिक पृष्ठभूमि पर हुयी है। फलतः इसमें प्रणय के निवेश का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। इसमें प्रणय का चित्रण सूचना[1] के रूप में बहुत ही थोड़े से अंश में हुया है। किन्तु नाटक में इस प्रणय व्यापार का व्यापक परिणाम परिलक्षित होता है। स्वप्नवासवदत्तम् में भास के कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुयी है। प्रणय प्रधान इस रचना मं दाम्पत्य प्रेम का आदर्श स्थापित होता है। नारी त्याग और तपस्या की जाज्वल्यमान विभूति है। स्वप्नवासदत्तम् में इसका स्पष्ट दर्शन होता है। वासवदत्ता अपने प्रेम के निमित्त अपने समस्त दर्शन होता है। वासवदत्त अपने प्रेम के निमित्त अपने समस्त राजसी सुखों को तिलांजलि दे देती है। यहाँ तक कि वह अपने प्राणों के आधार पति को भी किसी अन्य स्त्री के निमित्त छोड़ देती है पति प्रेम की यह पराकाष्ठा है। वासवदत्ता के वियोग की असहय वेदना से व्यतिथ राज़ा की दशा पति पत्नी के अलौकिक प्रेम को परिलक्षित करता है—

नैवेदानीं तादृशास्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्री विशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धऽप्यदग्धा।।[2]

पद्मावती जैसी रूप शील एवं प्रीति से युक्त युवती से विवाह हो

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 95–99
2 –स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 13

जाने के पश्चात भी वह अपनी प्रिय पत्नी को विस्मरित नही कर पाता –

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलतामाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु ताबन्में मनो हरति।।[1]

स्वप्नवासदत्त्म् में उदात्त प्रगाढ़ एवं पवित्र दाम्पत्य प्रेम का चित्रण हुआ है। उनके प्रेम में जो गम्भीरता, तीव्रानुभूति कसक एवं बिह्वलता है। वह इस उदात्त भावना को उच्चतम शिखर प्रदान करती है। वस्तुतः भास ने स्वप्नवासदत्तं में वासवदत्ता एवं उदयन के जिस सान्द्र प्रीति का चित्रण किया है, वह भारतीय आदर्शो का पोषक है।

महाकवि हर्ष प्रणय के कुशल चितेरे है। संस्कृत कवियों की दृष्टि में प्रेम दिव्यलोक की वस्तु होने के साथ ही इस भूतल पर विचरणशील भौतिक पदार्थ है। संस्कृत कवि काम को मानव जीवन को क्षुब्ध करने वाली भौतिक क्षुधा के रूप में ग्रहण करता है और इसीलिए काम के इस शारीरिक प्रभाव का चित्रण करने में वह परांगमुख नहीं होता।[2] महाकवि हर्ष ने इस मार्ग का अनुगमन किया है। प्रियदर्शिका व रत्नावली का कथानक एवं भावभूमि समान है। अतएव इनमें प्रणय का लगभग समान भाव चित्रित हुआ है। प्रणय में प्रेमीजन का स्पर्श असीम आनन्दोत्पादक होता है। अरण्यका का करस्पर्श राजा को अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।[3] रत्नावली के प्रथम अंक में कार्माचन के अवसर पर वासवदत्ता के प्रति उदयन की भाव पूर्ण उक्तियें[4] उसके पत्नी प्रेम को परिलक्षित करती है। राजा सागरिका के अनिन्द्य सौन्दर्य पर कामाभिभूत है। सागरिका के सौन्दर्य को लक्ष्य करते हुए उसका कथन उसकी सान्द्र प्रेम भावना को प्रदर्शित करता है–

किं पद्मस्य रूचं न हन्ति ....तदप्येवास्ति बिम्बाधरे।।[5]

रत्नावली में सागरिका के उदात्त प्रेम का चित्रण हुआ है। प्रेम के संकटापन्न होने की स्थिति में वह मरण व्यवसाय को ही उचित मानती है।[6]

1– स्वप्नवासवदत्तम 4 : 4
2– संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 120
3– प्रियदर्शिका 3 : 11–12
4– रत्नावली 1 : 20, 21, 22
5– '' 3 : 13
6– '' 2 : 1

स्पष्ट है कि हर्ष प्रणय भावना के भावुक कवि है। उनका प्रणय चित्रण मनोभावों के सूक्ष्म निरीक्षणों एवं सुन्दर अभिव्यक्तियों पर आधृत है। प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनो ही नाटिकाओं मे प्रेम की गहन अनुभूति का चित्रण हुआ है। हर्ष ने प्रणय व्यापार के सभी उपादेय साधनों का प्रयेग अपनी नाटिकाओं में प्रवीणता से किया है।

तापसवत्सराजचरितम् की रचना करूण विप्रलम्भ की कोमल भावभूमि पर हुयी है। इसमें करूण विप्रलम्भ के चित्र स्थान–स्थान पर मिलते है परन्तु इनके मूल में प्रणय भाव ही है। दाम्पत्य प्रेम एवं त्यागभावना का इसमें आदर्श निरूपण हुआ है। कर्मपथ से स्खलितपति को उसके मार्ग में सन्निविष्ट कराना एक आदर्श पत्नी का धर्म है। वासवदत्ता इस धर्म को बखूबी निबाहती है। पति के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग देती है। यह उसके प्रेम की पराकाष्ठा है। वस्तुतः वियोग ही सच्चे प्रेम का पोषक एवं परिणिति विधायक है। राजा उदयन का वासवदत्ता में असीम प्रेम है। दाह प्रवाद से आहत राजा स्वयं भी प्राणोत्सर्ग को उद्यत हो जाता है।[1] सोते–जागते, सुबह–शाम हर क्षण उसे पत्नी वासवदत्ता का वियोग सताता रहता है। उसके साथ व्यतीत किये गये हर क्षण की वह याद करता रहता है।[2] राजा की उक्तियाँ उसके ह्रदयस्थ असीम प्रेम भावना को अभिव्यक्त करती है।

तद्वक्त्रेन्दुविलोकनेन दिवसों नीतः प्रदोषस्तथा
तद्गोष्ठयैव निशा विनोद सहिता याताः पुरानन्दाः
तां संप्रत्यपि मार्गदत्तनयां द्रष्टं प्रवृतस्य में
बद्धोत्कष्ठमिदं मनः किमथवा प्रेमा समाप्तोत्सवः।।[3]

तथा

फुल्लेन्दीवरकानानि नयने पाणी सरोजकराः
सौन्दर्योपवनी शाशाड्.वदना जाती प्रसूता रदाः।
प्रत्यडे.षु नवैव सम्प्रति शरल्लक्ष्मीरियं दृश्यते
तच्चिहैरधुना प्रसाधनविधौ बद्धो वृथैवादराः।।[4]

1– तापसवत्सराजचरितम् – 2 : 21
2– तापसवत्सराजचरितम् – 2 : 5
3– तापसवत्सराजचरितम् – 1 : 14
4 –तापसवत्सराजचरितम् – 1 : 16

राजा की पत्नी के प्रति प्रेम अत्यन्त दृढ़ हैं वह उसकी पुनः प्राप्ति के लिए ही पद्मावती से विवाह को तैयार होता है अन्यथा वह तो दूसरे विवाह को महापातक के समान मानता है'–

चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत क्वचिन्नि वृत्तं
येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षः स्थली कल्पिता
येनोक्तासि बिना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते
सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमें कर्तुं किमव्युद्यतः।।[1]

तापसवत्सराजचरितम् में पद्मावती का त्यागपूर्ण प्रेम चित्रित हुआ है। वह अपने प्रेमी राजा की प्राप्ति हेतु अपने राजसी वैभव को त्यागकर तापस वेश धारण कर लेती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है भास, हर्ष एवं मायुराज प्रणय के सूक्ष्म द्रष्टा एवं मृदु अभिव्यक्तियों में अत्यन्त निपुण है। इनकी रचनाओं में जहां पति–पत्नी के चिर नूतन प्रेम की अभिव्यन्जना हुयी है। वहीं प्रेमी–प्रेमिका जन्य भावों की भी निर्मल अभिव्यक्ति हुयी है।

सूक्तियाँ – संस्कृत भाषा निसर्गतः बड़ी कोमल एवं मधुर है। प्रतिभासम्पन्न कवि के हाथ में पड़कर उसमें भाव प्रकाशन की क्षमता का सन्निवेश हो जाता है। कवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष की कृतियों में कोमलकान्त पदावली से युक्त भावगाम्भीर्य से सरोबोर सूक्तियों का समावेश हुआ है। इनकी कालजयी रचनाओं की सूक्तियां दृष्टव्य है–

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में सूक्तियाँ –

1– अनागतार्थान्यशुभानि पश्यतां
तं गतं कालमवेक्ष्य निर्वृतिः। 3 : 2

2– कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः। 4 : 22

3– दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः। द्वितीय अंक पृष्ठ 49

4– न ह्यनारूह्य नागेन्द्र वैजयन्ती निपात्यते। 4 : 19

5– नीते रत्ने भाजने को निरोधः। 4 : 11

1 –तापसवत्सराजचरितम् 4 : 13

6– मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति। 1 : 18

7– समूलं वृक्षमुत्पाटय शाखाश्छेत्तुं कुतः श्रमः। 4 : 20

8– स्नेहदुर्बलं मातृहृदयं। प्रथम अंक पृष्ठ 32

स्वप्नवासदत्तं में सूक्तियाँ –

1– अनतिक्रमणीयों हि विधिः अंक 4

2– अयुक्त परपुरूष संकीर्तनं अंक 3

3– अस्यस्निग्धस्य वर्णस्य विप्पत्तिर्दारूणा कथम् 6 : 13

4– अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते अंक 1

5– अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्यपरिजनोऽपि सदाक्षिण्य एवं भवति। अंक 4

6– आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानि महापुरूष ह्रदयानि भवन्ति। अंक–2

7– कः कं शक्तो रक्षितं मृत्युकाले। 6 : 10

8– कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। 104

9– गुणानां वा विशालांनाम, सत्काराणां च नित्यशाः।

10– कर्तारः सुलभा लोके, विज्ञातारस्तु दुर्लभाः। 4 : 9

11– तपोवनानि नामतिथिजनस्य स्वगेहम्। अंक 1

12– दत्तं वेतनं परिखेदस्य। अंक 4

13– दुखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः। 4 : 6

14– न परूषाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्। 1 : 5

15– न हि सिद्धंवाक्यानुत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि। 5 : 11

16– परस्परगता लोके दृश्यते रूप तुल्यता। 6 : 14

17– प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। 1 : 7

18– प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते। 6 : 7

19– सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। अंक 2

20– सत्कारों हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। अंक 4

21– सर्वसाधारणमाश्रमपदं नाम अंक 1

22– सविज्ञानमस्य दर्शनम् । अंक 1

23– स्त्रीस्वभावस्तु कातरः। 4 : 8

24– दुःखं न्यासस्य रक्षणम्। 1 : 10

25– सुखमर्थोभवेददातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः 1 : 10

प्रियदर्शिका में सूक्तियाँ :–

1– अतिदुर्जनः खलु लोकः। चतुर्थ अंक

2– अहो कार्यस्य गुरूता । तृतीय अंक

3– कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामना साद्य स्थितिं करोति। तृतीय अंक

4– कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं। 2 : 6

5– त्वद्विधानामेव गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति। प्रथम अंक।

6– दुःख याति मनोरथेषु तनतां संचिन्त्यमानेष्वापि – 3 : 5

7– निर्दोषदर्शना कन्यका । द्वितीय अंक

8– प्राविशन्ति शंकमाना राजकुलं प्राशो भृत्या। 1 : 8

9– प्रायो यत्किंचिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः। 3 : 1

10– वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवांछितानि। 4 : 8

11– विषमा खलु गतिर्विषस्य। चतुर्थ अंक ।

12– सदृशाः सदृशे रज्यन्त तृतीय अंक

रत्नावली में सूक्तियाँ :–

1– अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।

2– आत्मा किल दुखमालिख्यते।

3– आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतयभिमुखीभूतः।

4– इयमनभ्रावृष्टि :।

5– ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते।

6– एषा खलु त्वयाऽपूर्वा श्रीः समासादिताः।

7– कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः।

8– कस्मात् परिहासशीतलमेयं जनं लघु करोषि।

9– किं पुनः साहसिकानांपुरूषाणां न सम्भाव्यते।

10– किमिदिमकारणमेव पतंगवृत्तिः क्रियते।

11— ग्राम्यों यथाऽहं कृतः।

12— घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवत्येव।

13— तपति प्रावृषि नितरामश्यर्णजलागभोदिवसः।

14— दिष्टया वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या।

15— दुखगाहाः गतिर्दैवस्य।

16— न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।

17— न खलु सखीजने युक्त एवं कोपानुबन्धः।

18— निःशेषं यान्तु शान्ति पिशुन जनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः।

19— प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति।

20— भोः किमेतैवक्रभणितैः।

21— भद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।

22— मनश्चलं प्रकृत्यैव।

23— रमयतितरां संकेतस्था तथापि कामिनी।

तापसवत्सराज चरितम् में सूक्तियाँ –

1— अये कथमयं क्षतेक्षारावसेकः।

2— अस्ति क्वचितकेनचिदुपायेन पर लोकगतः प्राप्यते।

3— अशुभस्य काल हरणं मुहुर्तमपि बहु मन्यन्ते नयवेदिनः।

4— किमथवा प्रेमासमाप्तोत्सवः।

5— गृहिभिस्सह सांगत्यमन्तरायो विरागिणाम्।

6— न भगवती भवितण्यता अतिक्रमितुं पार्यते।

7— वियोगः विषये किन्तु स्तियाः कातराः।

8— स्वार्थः स्वयं चिन्त्यताम्।

9— ज्ञातिकुलप्रवृत्तिः अवश्यं अदुःखितमपि स्त्रीजने रोदयति।

सौन्दर्य एक अनुभूति की संज्ञा है। इसका मानक अथवा परिमाण निध ाारित नही किया जा सकता। यह तो सह्रदयों में प्रीति का संवाहक एवं आनन्द है। वह सौन्दर्य चाहे शारीरिक हो, मानसिक हो अथवा प्राकृतिक हो। भारतीय संस्कृति भावात्मक सौन्दर्य को सर्वोच्च महत्ता प्रदान करती है। प्रस्तुत अध्याय में भास, हर्ष

एवं अनंगहर्ष की सौन्दर्य निदर्शनी दृष्टि के प्रक्षेप में प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका का रत्नावली एवं तापसवत्सराज में काव्य सौन्दर्य का निरूपण किया गया है। इन कृतियों में विलास की अपेक्षा कर्तव्य बोध की भावना प्रमुखता से अभिव्यक्त है। यह भावना समाज में आदर्श स्थापित कर उसे एक दिशा प्रदान करती है। प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। कवियों की सूक्ष्म भावान्वेषणी वृत्ति ने प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन को महसूस कर उसमें निहित उदात्त भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। अन्तर्जगत एवं बाह्याय जगत के रागात्मक समन्वय की अभिव्यंजना में इनकी कलम अत्यन्त प्रवीण हो गयी हैं अपने कल्पनाप्राचुर्य एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण से इन्होने प्रकृति के विभिन्न रूपों का भावपूर्ण चित्रण किया है। प्रणय जैसी नैसर्गिक वृत्ति इन कवियों ने उदात्ततापूर्ण चित्रिण किया है। इसमें संतुलन एवं मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा गया है। जो सामाजिक मान्यताओं के सर्वथा अनुरूप है। सूक्तियां भी भावसौन्दर्य का एक अंग होती है। इन कृतियों में वर्णित सूक्तियाँ तत्कालीन मान्यताओं पर प्रक्षेप करती है। अतः इनका समावेश करना आवश्यक बन पड़ा है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि त्याग, समर्पण एवं प्रेम की भावना से पूर्ण ये रचनाएं मनुष्य को उत्कृष्ट संदेश तथा समाज को नवीन दिशा व गति प्रदान करती है।

षष्ठ अध्याय

रूपक : भाषा शैली तथा गुण–दोष

भाषा विचारों मान्यताओं, भावनाओं एवं सम्वेदनाओं का आधार भूत माध्यम है। भाष विहीन समाज की संकल्पना भी नही की जा सकती, अतएव भाषा की महत्ता स्वयंसिद्ध है। भाषा के सुदृढ़ स्तम्भ पर ही एक गतिशील समाज की संरचना सम्भव है अतएव प्रत्येक युग एवं काल में निर्विवाद रूप से भाषा की महत्ता स्वीकार की जाती रही है। यद्यपि भाषा का कलेवर प्रत्येक काल में परिवर्तित एवं परिवर्धित होता रहा है। महाकवि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष के समय में भाषा का क्या स्वरूप था, इस पर समग्र रूप से दृष्टि प्रेक्षण किया जाएगा।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्तं में महाकवि भास की भाषा शैली– महाकवि भास की भाषा अत्यन्त सरल, सरस एवं सुबोध है। उनके वाक्य छोटे–छोटे किन्तु सरस एवं चुस्त है, जो अनायास ही भावबोध कराने में पूर्ण समर्थ है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्तम में भाषा का सौष्ठव सर्वत्र सुशोभित होता है। यथा –अहो नु खल्वन्नभवत्या राजवंशश्रितं धीरवाक्यमभिहितम्। अत्र भवत्या सम्भावनां पूजयामि। विजये! आपस्तावत्।[1] अथवा 'ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटल शरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि हा प्रिये। हा प्रियशिष्ये! इति किमापि बहु प्रलपितवान्'।[2]

भाषा की भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है। प्रसाद गुणोपेत इनकी भाषा में कहावतों का भी प्राचुर्य रहता है। ये कम से कम शब्दों में भावाभिव्यक्ति कराने में महारथी है। यथा –

काष्ठादग्निर्जायते मध्यमानाद् भिमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।

सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां, मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति।[3]

अथवा

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।

1&izfrKk;kSxU/kjk;.ke~ xaxkUkxj jk; izFke vad i`"B 37

2&LoIuoklonRre~ ^ izFke vad i`"B 42

3& izfrKk;kSxU/kjk;.ke~ 1 % 18

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुलर्भाः।।[1]

भास की संस्कृत वैयाकरणों[2] के नियमानुसार सामान्यतः शुद्ध है परन्तु कहीं–कहीं उनके अपणिनीय प्रयोग भी मिलते है। ये प्रयोग प्रायः सर्वत्र छन्द के आग्रहवश किये गये है। इस प्रकार हमें शास्त्र विरूद्ध संधिरूप पुत्रेति तथा अवन्त्याधिपतेः और परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद के अनेक रूप जैसे– गमिष्ये, गर्जसे, द्रक्ष्यते, पृच्छसे, भ्रश्यते आदि मिलते है इसी प्रकार आत्मनेपद् के स्थान पर परस्मै पद के प्रयोग भी प्राप्त होते है जैसे – आपृच्छ उपलप्स्यति, परिष्वज। णिजन्त और साधारण क्रियाओं के प्रयोग में भी यंत्र तत्र अनियमितता प्राप्त होती है।

भास के नाटको मे पायी जाने वाली प्राकृते प्रायः शौर सेनी है।[3] किन्तु प्रतिज्ञायौगन्धरायण में मागधी का रूप प्राप्त होता है। अश्वघोष और कालिदास की तुलना में उनकी भाषा का प्रभेदक लक्षण उसका संक्रमणकालीन रूप है। अश्वघोष अघोष व्यंजनो का (एक दृष्टान्त को छोड़कर) कभी घोषी करण नही करते। जबकि भास 'ट' और 'त' दोनो को 'ड' और 'द' में बदल देते हैं। यथा– हला अदिचिरंम कन्दुएण कीलिआ अहि असञ् जादराया परकेर आ वि अ दे हत्था संबुत्ता[4] अश्वघोष की रचनाओं में व्यन्जनो का कभी लोप नही होता परन्तु भास की रचनाओ में प्रायः स्वरमध्यस्थ क, ग, च, त, द, प, ब, व और य का लोप हो जाता है। इनकी प्राकृतो मे प्रायः 'य' 'ज' में परिवर्तित हो जाता है। आदि तथा मध्य में स्थित 'न' नियमित रूप से 'ण' में परिवर्तित हो जाता है। महाप्राण ख, ध, थ, ध तथा भ 'ह' में परिवर्तित हो जाते हैं। बिन्दुओ की पुष्टि हेतु कतिपय प्राकृत वाक्यांश उद्‌धृत किया जा सकते हैं–

अहोः ! अकरूणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाण भुदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सथा जादा। जाव पविसामि।[5]

अथवा

अभिप्पेदं मे पदाणं। विओओ मं सन्तावेदिः अह कस्स उण दिण्णा।[6]

1– स्वप्नवासवदत्तम् 4 : 9
2– ए0 बी0 कीथ संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 116
3– " " पृष्ठ 117
4– स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 57
5– : " " पंचम अंक 150
6– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् " द्वितीय अंक 52

यद्यपि भास में व्याकरण सम्बन्धी कतिपय न्यूनताएं दृष्टिगोचर होती हैं। तथापि उनकी भाषा की रम्यता, गतिशीलता तथा प्रभावोत्पादकता का रंचमातृ भी ह्रास नही होता। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के समय संस्कृत बोलचाल की भाषा थी अतः जनसाधारण मे प्रचलित कुछ शब्द उनकी नाटकीय भाषा मे सम्मिलित हो गये। छन्दोभंग से बचने के लिए सन्धि नियमो का उल्लंघन करना उस समय विशेष आपत्तिजनक नही माना जाता था। यह भी सम्भव है कि भास के समय तक पाणिनीय व्याकरण को पूर्ण प्रतिष्ठा एवं मान्यता प्राप्त न हुई हो। डा0 कीथ ने अपाणिनीय प्रयोगो का कारण ऐतिहासिक काव्यो–रामायण महाभारत मे ऐसे प्रयोगो का होना स्वीकार किया है।[1] अतः भास की भाषा को किसी भी प्रकार से न्यून नही कहा जा सकता।

भाषा की रम्यता के साथ–साथ उनकी शैली भी सरस, सुबोध एवं मनोहर है। उनके वर्णन समासाधिक्य, क्लिष्टता एवं अस्वभाविकता से सर्वथा दूर है। प्रसाद, माधुर्य एवं ओज गुण से परिपूर्ण उनकी शैली में सर्वत्र स्वभाविक प्रवाह है। उनके वर्णन कवित्व अथवा वैदुष्य के प्रदर्शन के बजाय कथानक को गति प्रदान करते है। थोडे शब्दो में ही अपना उददेश्य पूर्ण कर लेने में भास को महारथ हासिल है। उनकी शैली रामायण तथा महाभारत से विशेष प्रभावित है। परवर्ती कवियों की भाँति वे शब्दाडम्बर में नही उलझते। उन्होने अलंकारो का न्यास कविताकामिनी के भार स्वरूप न करके सौन्दर्याधायक के रूप में किया है। यथा–

कातराः येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्र श्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।।[2]

भावनाओं के वर्णन मे भास मनोवैज्ञानिक की भूमिका निभाते है। उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन सूक्ष्म एवं उच्चकोटि का है। प्रिय से वियुक्त व्यक्ति की दशा का कितना सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से हुआ है–

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोनुऽरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद विमुच्येह बाष्पं

1– ए0बी0 कीथ संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 116
2– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 7

प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम।।[1]

भास की शैली में मानवीय भावो के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। कन्या के विवाह के सन्दर्भ में माता–पिता का ऊहापोह कितने सुन्दर शब्दो मे अभिव्यक्त है–

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः।।[2]

भास की शैली कालजयी उक्यिो से भरी पडी है। जिनका विन्यास नाटको मे जीवन्तता का सेचार करता है जैसे–

नीते रत्ने भाजनें को निरोधः।[3]
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति।[4]
प्रद्वेषो बहुमानो वा सडकल्पादुपजायते[5]

सामाजिक यथार्थता को भास कभी नही भूलते तभी तो वे कहते है कि कृतज्ञता ज्ञापित करने वाले लोग दुर्लभ होते है। यह एक कटु सत्य है–

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्त्तारः सुलभा लोके विज्ञातरस्तु दुलर्भाः।।[6]

जीवन के यर्थाथ तथ्यों को वे दैनिक जीवन से जोड़कर वर्णन को स्वाभाविक एवं सुबोध बना देते है।

कःकं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति
एवं लोकस्तुल्य धर्मो वनानां
काले काल` छिद्यते रूह्यते च।।[7]

भास की वर्णन शक्ति बड़ी सशक्त है। जिस दृश्य पर उनकी तीक्ष्ण नजर पड़ती है उसकी विशेषताओ के वे शीघ्रता से ग्रहण कर लेते है तथा वर्णनीय विशेषताओं

1– स्वप्नवासवदत्तम् 4 : 6
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 2 : 7
3– " 4 : 11
4– " 1 : 18
5– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 7
6– " 4 : 9
7– स्वप्नवासवदत्तम् 6 : 10

का निर्णय करके वे उन्हें सरल भाषा में कह देते है। तपोवन का वर्णन कितना स्वाभाविक बन पड़ा है–

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्य चकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बहाश्रयः।[1]

उपर्युक्त वर्णन को पढ़ने के साथ ही तपोवन का दृश्य आंखो के समक्ष चित्रित सा हो उठता है। इसी प्रकार का एक अन्य वर्णन दृष्टव्य है जिसमें सूर्यास्त के समय के तपोवन का स्वाभाविक चित्रण बड़े ही कोमल शब्दों में किया गया है–

खगाः वासोपेताः सलिलमवगाढ़ो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्ठो दूराद रविरपि च सङि्क्षप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तु शिखरम्।[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भास वैदर्भी रीति के कवि है। भाषा की मनोहरता एवं सुबोधता में वे अन्य कवियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। यद्यपि उनकी रचना शैली में यत्र–तत्र दुरूहता भी दिखाई देती है, जो कि व्याकरण के विरूद्ध शब्दों के प्रयोग से हुई है। तथापि उससे किसी भी प्रकार उनकी शैलीगत चारूता में अपकर्ष नही हुआ है।

प्रियदर्शिका तथा रत्नावली में महाकवि हर्ष की भाषा एवं शैली –

प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनो श्रृंगार प्रधान प्रणय नाटिकायें है। प्रसाद एवं माधुर्यगुण से युक्त इनकी भाषा प्रौढ़, परिष्कृत एवं भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है। भाषा की प्रौढ़ता एवं शैली की रमणीयता का उद्धरण दृष्टव्य है–

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युतिर्माधुयेऽपिसति
स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम्।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः

1– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 12
2– " " 1 : 16

कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते।।[1]

हर्ष की संस्कृत एवं प्राकृत दोनो ही व्याकरण सम्मत है। पुष्टि हेतु कतिपय अंश उद्धृत है–

मम कंठगताः प्राणाः पाशे कंठगते तव।
अतः स्वार्थं प्रयत्नोऽयं त्यज्यतां साहसं प्रिये।।[2]

प्रियदर्शिका व रत्नावली के स्त्री पात्र सामान्यतः शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करते है किन्तु पद्यों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग करते है – कञ्चणमाले, कधेहि कधेहि। णं सच्चंजिव्व मन्तेदि तादो ? जइ वीणं वाद अन्तो अवहरेदि में वच्छराओं तदो अवस्सं बन्ध यणादो मुञ्चेमिन्ति [3]

तथा

घणबन्धणसंरूद्धं गअणं दद्ठूढ माणसं एउं। अहिलसइ राअहंसो दइअं घेऊण अप्पण वसइं।।[4]

सागरिका –

सहि अवणेहि इमाइं णलिणीवत्वाइं मुणालवलआइं अ। अलंए देहिं। कीस अअएणे अनाणं आसासेसि। णं भणामि।[5]

तथा

दुल्लहजणाणुराओं लजा गुरूई परव्वसा अप्पा। पिअसहि विसमं व्येमं मरणं सरणं णवरमेक्कम।।[6]

सामान्यतः हर्ष वैदर्भी रोति के कवि है कुछ स्थलों को छोड़कर उनकी भाषा सरल सुबोध एवं समासाधिक्य से रहित है। वर्णन वैविद्ध्य में उनकी भाषा भी तदनुरूप हो जाती है। यथाचित्रपट में चित्रित नायिका को देखकर नायक के ह्रदय पर हुए प्रभाव की अभिव्यक्ति कितने सरल शब्दों में हुई है।

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिंक नः।

1– प्रियदर्शिका 3 : 13
2– रत्नावली 3 : 16
3– प्रियदर्शिका व्या0 रामचन्द्र मिश्र तृतीय अंक पृष्ठ 64
4– " " 3 : 8
5– रत्नावली व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री द्वितीय अंक पृष्ठ 65
6– रत्नावली 2 : 1

मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव।।[1]

परन्तु युद्ध के वर्णन में हर्ष की भाषा का दूसरा रूप देखने को मिलता है। उसमें दीर्घ समासावलि एवं संयुक्ताक्षरों की योजना हुई है–

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमांगे क्षणं व्यूढ़ासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्वह्विनि।
आहयाजिमुखे स कोसलपतिर्भिन्नाप्रतीपीभवन्नेकनैव रूमण्वता शरशतैर्मत्त द्विपस्थो हतः।[2]

हर्ष की शैली मे कवित्व की प्रौढ़ता एवं उच्चकोटि की कल्पना सामर्थ्य की स्पष्ट छाप है। वे परम्परा प्रथित वर्णनों मे विशेष आग्रह रखते है। वन, उपवन, तपोवन, सूर्योदय, मध्याह्र सूर्यास्त, सन्ध्या, ग्रीष्म, वसन्त आदि का वर्णन सारगर्भित शैली में किया है– आभात्यर्काशुतापक्वर्थादव ....कर्णपालीं गजस्य।।[3]

वसन्त ऋतु के मदनमहोत्सव का चित्रण कितना सुन्दर है–

धारायन्त्रविमुक्त सन्ततपयः पूरप्लुते सर्वतः सघः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्रांगणे।
उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारूणै सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कृट्टिमम।।[4]

हर्ष प्रणय की मर्मिक व्यञ्जना में निष्णात है। वे सौन्दर्य के लोपुप भ्रमर है। उनकी कविता कामिनी का लावण्य पदे–पदे स्फुट है–

कृच्छादूरूयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽ स्यास्त्रिवलीतरंगविषमें निस्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारूह्य तुंगौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने।।[5]

भावुक कवि हर्ष ने कमनीय भावना से ओत प्रोत अपनी कविता कामिनी को अलंकारो से सजाया है। उनका अलंकार विन्यास पाण्डित्य प्रदर्शन न होकर सौन्दर्याधायक एवं चारूता के उत्कर्ष का हेतु है जो कि इनकी प्रमुख विशेषता है–

आरूह्य शैलशिखरं त्वद्दनापह्रतकान्ति सर्वस्वः।
प्रतिकर्तुमिबोधर्घ्यकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः।।[6]

1– रत्नावली 2 : 9
2– रत्नावली 4 : 6
3– प्रियदर्शिका 1 : 12
4– रत्नावली 1 : 11
5– रत्नावली 2 : 11
6– रत्नावली 3 : 12

वे प्रकृति और मानव के सामजस्य मे विशेष आग्रह रखते है। उनकी प्रकृति चेतन और मानवीय भावनाओं से तदाकार होने वाली है। राजा को सागरिका के मुख में चन्द्रमा की समस्त विशेषताएं दिखायी देती है। वह कहता है कि तुम्हारे चन्द्रवदन कें रहते हुए यह दूसरा चन्द्रमा क्यों उदित हो रहा है ? उदय से क्या यह अपनी जड़ता नही प्रकट करता क्या तुम्हारा मुख कमलों की कान्ति को नहीं नष्ट कर देता है ? क्या वह नेत्रों को आनन्द नहीं देता है ? क्या देखने मात्र से कामो की वृद्धि नही करता है ? अर्थात् चन्द्रमा के जो विदित कार्य है वे सब तुम्हारे मुख में विद्यमान है। यदि अमृत धारण करने के कारण चन्द्रमा को गर्व है तो वह अमृत भी तुम्हारे इस विम्बाध ार में है –

किं पद्मस्य रूचिं न हन्ति नयानन्दं विधत्ते न किं
वृद्धि वा झषकेतनस्य कुरूते नालोकमात्रेण किम।
नक्त्रेन्दौ तव सत्ययं सदपरः शीतांशुरभ्युदगतो
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति किम्बाधरे।।[1]

इसी प्रकार चन्द्रोदय के समय पूर्व दिशा की रमणीयता का वर्णन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण एवं सुन्दर अभिव्यक्ति शैली का परिचायक है –

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्. निशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिवं हृदयस्थितं रमणी।।[2]

हर्ष की शैली कथानक को अविच्छिन्न बनाने वाली है। कहीं–कहीं पर इनके वर्णन नाटकीयता की दृष्टि से अप्रासंगिक प्रतीत होते है किन्तु उनमें कवित्व की चारूता एवं कल्पना के उत्कर्ष को स्पष्टतः देखा जा सकता है जो कथानक में स्वाभाविकता वर्तमान रखते है तथा उसे गतिशील बनाये रखते है। सारिका वृत्तान्त एवं वानर प्रसंग से कथानक में नवीन मोड़ दिखाया गया है जो उद्देश्य पूर्ति में प्रमुख भूमिका निभाते है। वर्णन वैचित्र्य का एक सुन्दर उद्धरण दर्शनीय है।

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः श्रृंखलादाम कर्ष
न्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किडि.कणीचक्रवालः।

1– रत्नावली 3 : 13
2– रत्नावली 1 : 24

दत्तांत्कोऽड.गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः

प्रभ्रष्टोऽयं प्लवंग प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः[1]

महाकवि भास की शैली छोटे–छोटे वाक्यो में आग्रह रखती है किन्तु हर्ष छोटे तथा बड़े दोनो प्रकार के वाक्यों में रूचि रखते है। लेकिन उनके बड़े वाक्य भी अरोचक नहीं लगते। इनके वर्णन वैचित्रता एवं सूक्ष्म निरीक्षणों पर आधृत है। प्रियदर्शिका एवं रत्नावली दोनो में अन्तःपुर का कथानक रत्नावली की अपेक्षा कुछ शिथिल है किन्तु उसकी शैली किसी भी प्रकार से शिथिल नहीं कही जा सकती। कवित्व एवं अभिनेयता की दृष्टि से प्रियदर्शिका उच्चकोटि की रचना है। रत्नावली नाटिका तो निःसन्देह ही सर्वोत्तम नाटिका है। हर्ष ने इसमें शास्त्रीय अनिवार्यताओं का ध्यान रखते हुए भी वस्तु रस तथा अभिनेयता में किसी भी प्रकार का अपकर्ष नही आने दिया है। अतः कहा जा सकता है कि हर्ष की शैली सरस एवं सुगम्य है। जो पाठकों तथा दर्शको से तादात्म्य स्थापित करने में पूर्ण समर्थ है।

तापसवत्सराजचरितम् में महाकवि अनंगहर्ष की भाषा एवं शैली :– तापसवत्सराजचरितम् विप्रलम्भ श्रृंगार एवं करूण का पुञजीभूत परिणाम है इसमें मानवीय संवेदनाओ का सूक्ष्म रेखाकंन किया गया है। कोमल भावनाओ पर आधारित होने के कारण कवि ने इस नाटक मे सर्वत्र सरल एवं सुबोध भाषा के प्रयोग का प्रयत्न किया है। इसकी भाषा प्रसंगनुकूल भावगाम्भीर्य से पूर्ण तथा निरन्तर प्रवाह से युक्त है। भाषा की मनोहरता एवं कोमलता का प्रस्तुत पद्य में सुन्दर निदर्शन हुआ है –

मुषितमश्रु जलैर्नयनाञ्जनं श्वसित धूसरितोऽधरपल्लवः।

तनुरियं तनुतामिव लम्भिता किमिव मन्युमना इव लक्ष्यसे।[2]

अथवा

किं कर्णे नवकेतकीदलरूचा शोभा न सम्पादिता।

प्रत्यंग्र न मृणालनालवलयं पाणौ समारोपितम्।।[3]

कवि ने सर्वत्र प्रसंगनुकूल भाषा की योजना की है कोमलभावों की अभिव्यक्ति के लिए जहां कोमलकान्त भाषा का प्रयोग किया है, वही उग्र एवं प्रचंड दृश्यों के वर्णन

1– रत्नावली 2 : 2

2– तापसवत्सराजचरितम् 1 : 17

3– " " 1: 15

में उन्होने भाषा को भी वैसा ही स्वरूप प्रदान कर दिया है। अग्नि की लपलपाती ज्वालों के वर्णन में भाषा का विन्यास दर्शनीय है–

धूमौधान्निर्गताभिः कवलितककुभः कालवक्त्रातिभाभि –
ज्र्वालाजिहालताभिर्दिवमखिलजगद् ग्रासोलोलेलिहानः।
हाहाकारैःर्जनानामनुसृतविषमोद्गार गम्भीरनादः
कल्पान्तभ्रान्तचामीकरशिखरनिभोयाति विस्तारमग्निः।।1

नाटक में सीधी सरल हृदया पद्मावती की भाषा अत्यन्त सहज है, तो कुशल राजनीतिज्ञ यौगन्धरायण की भाषा में चतुरता का गाम्भीर्य दिखाई देती है–

कौशाम्बीं परिभूय नः कृपणकैर्विद्वेषिभिः स्वीकृतां
जानास्येव तथा प्रमाद–परतां पत्युर्नयद्वेषिणः।
स्त्रीणां च प्रियविप्रयोगविधुरं चेतः सदैवमात्र मे
वक्तुं नोत्सहते मनः परमतो जानातु देवी स्वयम्।2

यहां पर यौगन्धरायण ने अपने का कारण सीधे–सीधे न कहकर किस प्रकार कूटनीतिज्ञ की भाँति वक्तुनोत्सहे। कहकर सम्पूर्ण बात कह डाली है।

तापसवत्सराज की भाषा भावाभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ है। इसमें स्वाभाविक प्रवाह है, जो कथानक को गतिशील बनाये रखता है। 'भाषा की दृष्टि से जो एक उल्लेखनीय बात इस नाटक के उपलब्ध संस्करण में पायी गई है वह यह है कि पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से इसके अनेक रूप ऐसे है जो कि उसके साथ संगत नहीं बैठते। संस्कृत भाषा पर अनंगहर्ष के ऐसे आसाधारण अधिकार को देखते हुए यह विश्वास नहीं होता कि मूललेखक ने ही इन्हें इस रूप में निबद्ध किया हो। वस्तुतः लगता है कि बाद में किसी लिपिकार की असवाधानी से ऐसा हो गया है। अधिकतर रूपों का सम्बन्ध 'आत्मने पद' एवं परस्मैपद'' के प्रयोगो से है। यथा– 'निवेदयिष्ये' 'गमिष्ये' 'भविष्ये' उत्पादयिष्ये' 'पृच्छिष्ये' 'रोदिष्ये' 'करिष्ये' 'दृश्यते' इत्यादि। कहीं–कहीं रूच्यर्थ में षष्ठी का प्रयोग किया गया है। यथा– जधा अय्यउत्तस रोअदि (यथा आर्यपुत्रस्य रोचते) 'प्रिया' के सम्बोधन में 'प्रिये' के स्थान पर 'प्रिया' 'उक्त्वा' के स्थान पर 'बदित्वा' आदि

1– तापसवत्सराजचरितम् 2 : 4
2– " " 1 : 7

अनेक त्रुटियां देखी गयी है। संस्कृत और प्राकृत के प्रयोग के दृष्टि से भी बड़ी गड़बड़ी देखी गयी है। एक ही पात्र कहीं शुद्ध संस्कृत बोलता है कहीं शुद्ध प्राकृत। कभी–कभी एक ही पात्र साथ–साथ संस्कृत और प्राकृत के मिश्रित वाक्यों का प्रयोग करता है। पर लगता है। भाषा की यह सारी अव्यवस्था 'अनंगहर्ष' की नहीं अपितु उत्तरवर्ती लिपिकारों की असावधानी अथवा अज्ञान की देन है।

उपर्युक्त व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को छोड़कर अन्य सभी रूपों में इसकी भाषा निर्दोष कही जा सकती है। कालिदास, भवभूति आदि लब्ध प्रतिष्ठ कवियों की रचनाओं में ही ऐसे सुश्लिष्ट एवं परिमार्जित भाषा पाई जाती है।[1] इसकी सुश्लिष्टता एवं व्यंजकता के कछ उत्कृष्ट उद्धरण प्रस्तुत है–

तृतीय अंक में पद्मावती की उपस्थित में वासवदत्ता को सांकृत्यायनी द्वारा 'चिरमविधवा भवतु, कृतार्थेन भार्त्रा सह संघट्टताम्–[2] का आशीर्वाद देना अत्यन्त गूढ. गम्भीर एवं अर्थपूर्ण भाषा का परिचायक है। इसी प्रकार यौगन्धरायण का 'देवि ! प्रत्यासन्न एव ते मनोरथः किमद्यापि रद्यते।[3] कहना गूढ़ गिरा का बोधक है। तापसवत्सराजचरितम में प्रसाद एंव माधुर्य की छटा सर्वत्र दिखाई देती है। सम्पूर्ण नाटक में छोटे–छोटे सरस, सरल एंव सुबोध वाक्यो की योजना हुयी है, जो अपना उद्देश्य पूर्ण करते है। अनंगंहर्ष का वैदर्भी के प्रति विशेष आग्रह है, पांचाली एंव गौडी से उनको संवरण कम ही रहा। प्रसंग के अनुरूप ही भाषा एंव शैली को प्रयोग करना उनकी विशेषता है। श्रृंगार एंव करूण की कोमल संवेदनाओ की अभिव्यक्ति के लिए वे सरस भाषा एंव सहज वाक्यो का चयन करते हैं–

विसृज पाशमिम कुरू में प्रियं
प्रणयमेकमिमं प्रतिमानय।
असहने किमिदं क्रियते त्वया।
प्रणयवानयमस्मि तवागतः।[4]

मानवीय भावो की प्रकृति से समरसता दिखानें के लिए वे सहज भाषा एंव मृदु स्वभावोक्ति

1– तापसवत्सराजचरितम् भूमिका पृष्ठ 34–35
2– तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 84
3– षष्ठ अंक पृष्ठ 205
4– " " 4 17

शैली का प्रयोग बडे ही सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् करते है।

आदौ मानपरिग्रहेण गुरूणा दूरं समारोपतिां
पश्चात्तापभरेण तानवकृता नीतां परं लाघवम्।
उत्संगान्तरवर्तिनीमनुगमात्सम्पिण्डितांगीमिमां
सर्वांगप्रणयां प्रियामिव तरूच्छायां समालम्बते।।[1]

तापसवत्सराजचरितम् में यंत्र–तत्र समस्तपद शैली में गठित दीर्घसमासावलिं संयुक्त वाक्यों का प्रयोग हुआ है, किन्तु वे किसी भी प्रकार से रसापकर्ष के हेतु नही है। लावणक दाह की प्रचण्ड ज्वालाओं के वर्णन में कवि ने वैसी ही प्रचण्ड शैली का अनुगमन किया हैं–

धूमौधान्निर्गताभिः कवलित ककुभ कालवक्त्रातिभामि
ज्र्वालाजिहवालताभिर्दिवमाखिलजगद् ग्रासलोलेलिहानः।
हाहाकारैर्जनानामनुसृतविषमोद्गारगम्भीरनादः
कल्पान्तभ्रान्तचामीकशिखरनिभोयाति विस्तारमग्निः।।[2]

पंचम अंक में कुंजरक द्वारा युद्ध वर्णन में भी इसी प्रकार की भाषा व शैली का प्रयोग किया गया है।[3]

तापसवत्सराचरितम् कोमल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में सफल नाटक है किन्तु इसमें कुछ शैलीगत न्यूनतांए परिलक्षित होती है। संस्कृत नाटकों में पद्यो की स्थिति निश्चित होते हुए भी तापसवत्सराजचरितम् में जिस रूप में पद्य–नियोजन हुआ है, वह किसी भी प्रकार से श्रेष्ठ नही कहा जा सकता। कुछ अंशो को छोड़कर द्वितीय अंक पूर्ण रूप से काव्यात्मक हो गया है। जो नाटकीय शैली से परे हैं इसमें श्रृंगार व करूण की मृदु भावभिव्यक्ति के लिए दीर्घ एवं क्लिष्ट छन्द 'शार्दूलविक्रीडित की योजना सर्वथा अनुपयुक्त है। इसके अतिरिक्त इसमें स्वगत कथन अत्यन्त दीर्घ है। तथा कुछ संवाद भी अनावश्यक है जो कथानक के प्रवाह को मन्द कर देते हैं।

शैलीगत कुछ न्यूनताओं के होते हुए भी तापसवत्सराजचरितम् एक श्रेष्ठ नाटक है।

<u>**छन्द–योजना** – 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' अर्थात छन्द वेद के चरण है। बिना छन्द</u>

1– तापसवत्सराजचरितम् 3 : 17
2– तापसवत्सराजचरितम् 2 : 4
3– " " पंचम अंक पृष्ठ 179

के काव्य में गति सम्भव नहीं है। कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए छन्द को ही माध्यम बनाता है। छन्द का आकार–प्रकार काव्य के महत्व को निर्धारित करता है। प्रस्तुत अध्याय में यह विचार किया जायेगा कि महाकवि भास हर्ष एवं अनंगहर्ष ने अपनी रचनाओं प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासदत्तम् प्रिददर्शिका, रत्नावली एवं तापसवत्सराज चरितम् में अपने भावों के निवेश में किन छन्दों को माध्यम बनाया है–

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में छन्दयोजना :– महाकवि भास की रचनाओं पर रामायण एवं महाभारत का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। छन्द योजना के सन्दर्भ में भी इसकी पुष्टि होती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में अनुष्टुप बसन्ततिलका उपजाति, मालिनी वंशस्थ आदि छन्द प्रयुक्त हुए है। जो निःसन्देह नाटक के कलात्मक सौन्दर्य मे अभिवृद्धि करते है। पुष्टि हेतु कुछ छन्द उद्घृत किये जा सकते है–

बसन्ततिलका–

व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चेतकार्य
संख्यातवीरपुरूषं च न चानुरक्तम्।
व्याजं ततः समभिन्दति युद्धकाले
सर्व हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम।।[1]

शादर्ल विक्रीडितः :– शक्ता दर्पयितु स्वहस्तरचिता भूमिः कटप्रच्छदा
पर्याप्तो निगलस्वनाचरणयोः कन्दर्पमालावितमु।
कः श्रुत्वा न भवेहिं मन्मथपटुः प्रत्यक्षतों बन्धने
रक्षार्थ परिगण्यमानपुरूषे राजेति शब्दापनम्।।[2]

उपजाति – एतानि तान्यापतितानि काले भाग्यक्षयान्निष्फलमुद्यतानि।
तुरंगमस्येवरणे निवृत्ते नीराजनाकौतुकमंगलानि।।[3]

वैश्व देवी –

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो
वांगः सौराष्ट्र मैथिलः शूरसेनः।
एते नानार्थैर्लोभ्यन्ते गुणैर्मां

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1 : 4
2– " " 3 : 4
3– " " 1 : 12

कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा।[1]

शालिनी :—

अग्नि बद्ध्वा वत्सराजाभिधानं
यस्मिन काले सर्वतो रक्षितव्यम।
तस्मिन काले सुप्तमासीदमात्यै
र्नीते रत्ने भाजने को निरोधः।।[2]

स्वप्नवासवदत्तम में छन्द योजना —

स्वप्नवासवदत्तम् छन्द के सन्दर्भ में रामायण से विशेष रूप से प्रभावित है इसमें कुल 57 पद्य है जिनमें 26 पद्य, श्लोक छन्द में निबद्ध है। यथा—

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरण शरणं न वश्मेकम्।।[3]

बसन्ततिलका —

स्वप्नवासदत्तम् में ग्यारह बार इस छन्द का प्रयोग किया गया है—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपयनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्म पीड़ा
मिच्छेत तपस्विषु कुलवतमेतदस्याः।।

शार्दूल विक्रीडितः —

स्वप्नवासवदत्तम् में इस छन्द का प्रयोग 6 बार हुआ है —

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षभिघाटौषचैः।
रोगे दृष्टि विलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रूजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुन्चति।।[5]

आर्या :— इसमें आर्या का प्रयोग तीन बार किया गया है।—

1— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 2 : 8
2— " " 4 : 11
3— स्वप्नवासवदत्तम् 2 : 7
4— " " 1 : 6
5— " " 5 : 4

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियभिरूपगूढ़ाः।

पादन्यासविसण्णा वयमिव कान्तावियुक्ता स्युः।।[1]

शिखरिणी – इस नाटक में तीन बार शिखरिणी का प्रयोग हुआ है–

अनाहारे तुल्यः प्रततरूदितक्षामदनः

शरीरे संस्कारं नृपति समदुःखं परिहन।

दिवा वा रात्रौं वा परिचरति रत्नैर्नरपतिं

नृपः प्राणान् सद्यास्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः।।[2]

इनके अतिरिक्त स्वप्नवासदत्तम् में शालिनी (3) पुष्पिताग्रा (2) तथा उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वैश्वदेवी व हरिणी का एक–एक बार प्रयोग हुआ है।

प्रियदर्शिका में छन्द योजना :– महाकवि हर्ष जटिल छन्दों के पक्षपाती है। शार्दूलविक्रीडित इनका प्रिय छन्द है। प्रियदर्शिका में इन्होने सात प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। जिनमें से शार्दूलविकीडित बीस बार, आर्या नौ बार, स्रगन्धरा आठ बार तथा प्राकृत आर्या तीन बार प्रयुक्त है। इनके अतिरिक्त इन्द्रवज्रा बसन्ततिलका मालिनी और शिखरणी का भी विधान किया गया है। प्रियदर्शिका से कतिपय छन्दों विषयक उद्धरण प्रस्तुत है–

शार्दूलविक्रीडित –श्री हर्षो निपुणः कविः परिषदत्येषा गुणग्राहिणी

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।

वस्त्वेकैकमपीह वांछितफल प्राप्तेः पदं किं पुन–

र्मदभाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।।[3]

आर्या – तत्क्षणमपि निषक्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण।

प्रविशन्ति शंकमाना राजकुलं प्रायशो भृत्या।।[4]

बसन्ततिलका – एवं बल त्रितयमाकुलमेक एवं। कुर्वन्कृपाण किरणच्छुरितांसकूटः।

शस्त्रप्रहारशतजर्जरितोरूवक्षाः । श्रान्तश्चिराद्विनिहतोयुधि विन्ध्यकेतः।।[5]

1– स्वप्नवासवदत्तम् 4 : 3
2– " " 1 : 14
3–प्रियदर्शिका 1 : 3
4– " " 1 : 8
5– " " 1 : 10

स्रग्धरा– श्रोतं हंसस्वनोऽयं सुखयति दीयतानूपुरल्हादकारी
दृष्टिप्रीतिं विधत्ते तटतरूविवरालक्षिता सौधपाली।
गन्धेनाम्भोरूहांणां परिमलपटुना जायते घ्राणसौख्यं
गात्राणां ह्लादमेते विदधति मरूतो वारिसम्पर्कशीताः।।[1]

शिखरिणी :– स्वभावस्था दृष्टिर्न भवति गिरो नातिविशदा–
स्तनुः सीदत्येषा प्रकटपुलकस्वेदकणिका।
यथा चायं कम्पः स्तनभरपरिक्लेशजनन–
स्तथा नाद्याप्यस्या नियतमखिलं साम्यति विषम।।[2]

गीति :– घनबन्धनसंरूद्धं गगनं दृष्टवा मानसमेतुम।
अभिलषति राजहंसो दैता ग्रहीत्वात्मनो वीसतम्।[3]

रत्नावली में छन्द योजना – छन्द की दृष्टि से भी रत्नावली हर्ष की प्रौढ़ रचना है। इसमें तेरह प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ। जिनमें से शार्दूलविकीडित 23 बार, सुग्धरा 11 बार, श्लोक (अनुष्टुप) 9 बार, शिखरणिरी 6 बार, मालिनी 3 बार, पृथ्वी 2 बार तथा उपजति, प्रहर्षिणी शालिनी व हरिणी 1–1 बार प्रयुक्त हुए है। नाटिका में प्रयुक्त प्रमुख छन्दों के उद्धरण प्रेक्षणीय् है–

शार्दूलविक्रीडित – पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां
शंभोः सस्पृहलोचनत्रययथं यान्त्या तदाराधने।
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलस्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन्कुसुमान्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तर पात वः।।[4]

स्रग्धरा – एष ब्रह्य सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं
दोभिर्दत्यान्तकोडसौ सधनुरसिगदाचक्रचिन्हैश्चतुर्भिः।
एषोऽत्यैरावतस्थत्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथाऽन्ये
नृत्यन्ति व्योम्निं चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः।।[5]

श्लोक :– मनश्चलं प्रकृत्यैव दुर्लक्ष्यं च तथापि में।

1– प्रियदर्शिका 2 : 4
2– " " 4 : 10
3–प्रियदर्शिका 3 : 8
4–रत्नावली 1 : 1
5– " " 1 : 11

कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः।।[1]

वसन्ततिलका— यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरूहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति।।[2]

शिवरवरिणी— परिम्लानं पीनस्तनजघनसंगदुभयत
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशांगयाः संतापं वदपि नलिनीपत्रशयनम्।।[3]

हरिणी— प्रगयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कष्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहो
रमयतितरां संकेतस्था तथाहि कामिनी।।[4]

उपजाति— परिच्युतस्तत्कु चकुम्भमध्यात्
किं शोषमायासि मृणालहार।
न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य
तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात्।।[5]

पृथ्वी— दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष—
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समंव्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम्।।[6]

तापसवत्सराजचरितम् में छन्द—योजना— तापसवत्सराजचरितम् छन्द की दृष्टि से समृद्ध रचना है। इसमें कुल 10 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

1— रत्नावली 3 : 2
2— " 3 : 6
3— " 2 : 13
4—रत्नावली 3 : 9
5— " 2 : 15
6 " 2 : 16

जिनमें से शार्दूविक्रीडित सर्वाधिक 48 बार प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें जिन छन्दों की योजना की गयी है उनमें से अनुष्टुप (श्लोक) का 15 बार, आर्या 12 बार बसन्ततिलका 6 बार, स्रग्धरा 5 बार, हरिणी 4 बार, द्रुतविलम्बित 9 बार, शालिनी 2 बार, तथा इन्द्रवज्रा का 1 बार, प्रयोग हुआ हैं।

प्रमुख छन्दों में निबद्ध तापसवत्सराजचरितम् के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

शार्दूलविक्रीडित– तथाभूते तस्मिन्मुनिवचसि जातागसि मयि
प्रयत्नान्तर्गुढां रूषमुपगता में प्रियतमा।
प्रसीदेति प्रोक्ता न खलु कुपितेत्युक्तिविधुरं
समुद्भिन्ना पीतैर्नयनसलिलैः स्थास्यति पुनः।।[1]

श्लोक या अनुष्टुप– सर्वं येन परित्यज्य वनमङ्गीकृतं शुचा।
परिबोधनया तस्या किमात्मा खेद्यते त्वया।।[2]

आर्या– शोकेन कृतस्तम्भस्तथा स्थितो येन वर्धितक्रन्दैः।
हृदयस्फुटनभयार्ते रोदितुभ्यर्थितस्सचिवैः।।[3]

वसन्ततिलका– उत्कम्पिनी भयपरिस्खलितांशुकान्ता
ते लोचने प्रतिदिशं विधुरे क्षिपन्ती।
क्रूरेण दारूणतया सहसैव दग्धा
धूमान्धि तेन दहनेन न वीक्षितासि।।[4]

शिखरिणी– गृहीत्वा मुञ्चन्ती कथमपि गृहाशोकलतिकां
निवर्त्य व्यावृतैः प्रियमपि बलादेणकशिशुम्।
दूतों देवीत्येवं वदति सचिवे दुःखविषं
प्रवृत्ता सन्नाङगी गृहमभिपतन्तयैव हि दृशा।।[5]।

स्रग्धरा– तारव्यो धौतमुक्तास्त्वच इह विगलद्वारयो यान्ति शोषं
साम्नां बद्धानुबन्धं ध्वनिरिह तटिनीमध्यभाजां मुनीनाम्।
आयाताध्यर्मर्ध्यं रटितमिति शुकैराश्रमाभ्यागतानां

1– तापसवत्सराजचरितम् 5 : 2
2– " 4 : 15
3– " 2 : 7
4–रत्नावली 2 : 6
5– " 2 : 1

पात्रादेंवोच्चकण्ठाशिखिन इह बलिं तापसीनां हरन्ति।।[1]

इन्द्रवज्रा— या निर्दयेनोदयनेन देवी
त्वत्तः खोलनापहृता छलेन।
तस्यापि सा मूढमतेः प्रसह्य
दैवेन सम्प्रत्यपह्य नीता।।[2]

शालिनी— दृष्टा यूयं निर्जिता विद्विषन्तः
प्राप्ता देवी भूतधात्री च भूयः।
सम्बोन्धोऽभूदर्शकेनापि सार्धः
किं दुष्प्रायं यन्न लब्धं भवद्भ्यः।।[3]

अलंकार निरूपणः— अलंकार शरीर के सौन्दर्याधायक होते हैं। कविता—कामिनी के सौन्दर्य में उत्कर्षाधायक तत्व ही अलंकार है। आचार्य मम्मट काव्य में अलंकार की स्थिति 'हारादिवद्[4] मानते हैं। कविराज विश्वनाथ भी अलंकारों को शब्द एवं अर्थ की शोभा में अतिशय वृद्धि करने वाले धर्म स्वीकार करते हैं। किन्तु काव्य शास्त्र का अलंकार सम्प्रदाय तो अलंकारों को काव्य का अपरिहार्य एवं स्थिर तत्व मानता है। उनके मत मे अलंकार विहीन काव्य की कल्पना, उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान ही हास्यास्यपद है। इस सन्दर्भ में जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में लिखा है—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलं कृति।।[5]

काव्यशास्त्र में अलंकारों की स्थिति के सन्दर्भ में चाहे जितना भी मतवैभिन्न रहा हो किन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि संस्कृत कवि परम्परा का अलंकारों के प्रति विशेष अनुराग रहा है। कवियों ने अपनी कविता कामिनी को भाँति—भाँति अलंकारों से सजाने में रूचि दिखायी है। इस सन्दर्भ में महाकवि भास, हर्ष एवं अनग्ङहर्ष की समीक्ष्य कृतियों, प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासवदत्तम्, प्रियदर्शिका, रत्नावली, एवं

1— तापसवत्सराजचरितम् 3 : 16
2— " 2 : 17
3— " 6 : 9
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्। हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।
काव्यप्रकाश अष्टम उल्लास सूत्र 87
4— काव्यप्रकाश व्या0 आचार्य विश्वेश्वर पृष्ठ 400 से उदधृत

तापसवत्सराजचरितम में अलंकार निरूपण की समीक्षा की जाएंगी।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासदत्तम में अलंकार निरूपणः–

भास के नाटको में सर्वत्र अलंकारो की सुन्दर छटा दर्शनीय है। भास परिमित शब्दों में ही अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेते है। उन्होने अतिशय वर्णनों से सदा दूरी बनाये रखी है। उनकी इस भावना को अलंकारो के प्रति उनकी उदासीनता नही कहा जा सकती। उनके नाटकों में अनुप्रास उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति आदि अलंकारो का सुन्दर एवं भावपूर्ण नियोजन हुआ है। हां वे अलंकारो के लिए वर्णन के पक्ष में नही है। उनका अलंकार निरूपण, भाव एवं रस के अनुरूप एवं उनके चारूत्व के उत्कर्ष के साधन के रूप में हुआ है। अलंकार उनकी कविता के साधन के रूप में हुआ है। अलंकार उनकी कविता में कही भी बोझ नही बनते बल्कि अलंकारो से सजी उनकी कविता कामिनी मन्दस्मिति एवं मनोहारी गति से युक्त है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासदत्तम् में भी अलंकारो का इसी प्रकार विन्यास हुआ है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में विशेष रूप से उपमा व अर्थान्तरन्यास अलंकारो का प्रयोग हुआ है। उपमा अलंकार का सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है–

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः।।[1]

नाटक में अर्थातन्रन्यास की भी सुन्दर योजना हुयी है–

अग्नि बद्ध्वावत्सराजभिधानं
यस्मिन्काले सर्वतो रक्षितव्यम्।
तस्मिन् काले सुप्तमासीदमात्यै
र्नीतेरत्ने भाजने को निरोधः।।[2]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण का विन्यास प्रौढ़ राजनीतिक पृष्ठभूमि पर हुआ है अतः इसमें अलंकार नियोजन का अवकाश कम ही प्राप्त हुआ है किन्तु स्वप्नवासदत्तम् की रचना प्रणय की कोमल भावना एवं समर्पण त्याग की उदात्त भावभूमि पर हुयी है। अतः इसमें

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 3 : 8
2– " 4 : 11

अलंकार योजना का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति एवं अर्थान्तरयास अलंकारो की भावानुरूप सुन्दर योजना हुयी है।

उत्प्रेक्षा :– ऋज्वयतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम्।।[1]

स्वभावोक्ति :– तपोवन के वर्णन में स्वभावोक्ति की सुन्दर योजना हुयी है–
खगाः वासोपेताः सलिलमवगाढ़ो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्त किरणो
एवं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्त शिखरम्।।[2]

उपमा –

संसार की परिवर्तनशील गति की रथ के पहिये के अरो से कितनी सुन्दर उपमा की गयी है–

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी –
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।।[3]

अर्थान्तरन्यास – कातरा ये प्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्र श्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।।[4]

परिकर – महासेनस्य दुहिता शिष्या च में प्रिया।
कथं सा न मयाशक्या स्मर्तु देहान्तरेष्वपि।।[5]

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 4 : 2
2– " 1 : 16
3– स्वप्नवासवदत्तम् 1 : 4
4– " 6 : 7
5– " 6 : 11

प्रियदर्शिका एवं रत्नावली में अलंकार योजना – हर्ष श्रमसाध्य अलंकारो से विमुख ही रहे है। उन्होने अपनी कविता में अलंकारो की उतनी ही योजना की है जितनी उसके सौन्दर्य पर भारी न पड़े। उनकी कविता कामिनी अलंकारो से सुसज्जित होकर सहजता से ही सहृदयो को आकर्षित कर लेती है। उनकी रचनाओं में उपमा रूपक उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारो का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है।

प्रियदर्शिका में प्रयुक्त अलंकारो में से कुछ के उदाहरण प्रस्तुत है–

अनुप्रास :– पादातं पत्तिरेव प्रथमतरमुरः पेषमात्रेण पिष्ट्वा
दूरन्नीत्वा शरौघैहिरणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः
सर्वत्रोत्सृष्ट सर्वप्रहरणनिवहस्तर्णमुत्खाय खंडगं
पश्चात्कर्तु प्रवृत्तः करिकरकदलीकाननच्छेद लीलाम्।।[1]

श्लेष – एतेन बालविद्रुमपल्लवशोभापहारदक्षेण।
हृदये मम त्वायायं न्यस्तो रागः स्वहस्तेन।।[2]

उपमा– उद्यानदेवतायाः स्फुटपंङकजकान्तिहारिणी स्वच्छा।
दृष्टिरिव दीर्घिकेयं रमयति मां दर्शनेनैव।।[3]

रूपक– दृष्टं चारकमन्धकारगहनं ना तन्मुखेन्दुधुतिः।
पीडा ते निगलस्वनेन मधुरास्तस्या गिरो न श्रुताः।।
क्रूरा बन्धनरक्षिणोऽद्य मनसि स्निग्धाः कटाक्षाः न ते।।
दोषान्पश्यसि बन्धनस्य न पुनः प्रद्योत पुत्रया गुणान।[4]

अर्थान्तरन्यास – प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युकर्षमाश्रयान्महतः।
मत्तेकुम्भतटगतमेति हि श्रृंगारतां भस्म।।[5]

उत्प्रेक्षा :– आभाति रत्नशतशोभिशातकुम्भ –
स्तम्भावसक्तपृथु मौक्तिकदामरम्यम्।
अध्यासितं युवतिभिर्विजितासरोभिः

1– प्रियदर्शिका 1 : 9
2– " 3 : 12
3– " 2 : 5
4– " 1 : 7
5– " 3 : 11

प्रेक्षागृहं सुर विमान समानमेतत्।।[1]

अप्रस्तुतप्रशंसा – अभिनवरागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन।

उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दायितम्।।[2]

रत्नावली की रचना प्रणय की सूक्ष्म अनुभूतियों की भावभूमि पर हुयी है। अतः इसमें अलंकार योजना का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। इसमें प्रयुक्त कतिपय अलंकारों के उद्वरण दर्शनीय है।

उपमा :– प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः

कौस्तुभरागरूचिर स्फुरदंशुकान्ता।

विभ्राजसे मकरेतनमर्चयन्ती

बाल प्रवालविटपिप्रभवा लतेव।।[3]

रूपक :– मूले गण्डूषेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्टया।

मध्वाताम्रे तरूण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति।।[4]

दृष्टान्त :– तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने।

तपति प्रावृषि नितंरामभ्यर्ण जलागमो दिवसः।।[5]

श्लेष :– अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे

दृष्टो मनाड्. मणिविभूषणरश्मिजालैः।

पातालमुद्यतफणाकृति श्रृंड्गकोऽयं

मामद्य संस्मरयतीह भुजंग लोकः।।[6]

विभावना – मनश्चलं प्रकृत्यैव दुलक्ष्यं च तथापि में।

कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखे।।[7]

1– प्रियदर्शिका 3 : 2
2– " 3 : 9
3– रत्नावली 1 : 20
4– " 1 : 18
5– " 3 : 10
6– " 1 : 12
7– " 3 : 2

समासोक्ति :— आरूह्य शैलशिखरं त्वद्वदनापह्वत कान्ति सर्वस्वः।
प्रतिकर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः।।[1]

स्वभावोक्ति :— पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं
क्रमात्क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति।
उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं
तमः संघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः।।[2]

तापसवत्सराजचरितम् में अलंकार निरूपणः:— अनंगहर्ष ने तापसवत्सराजचरितम में सर्वत्र अलंकारो की योजना बड़े ही स्वाभाविक ढंग से की है। करूण रस की भावभूमि में अलंकारो की क्लिष्टकल्पना के लिए अवकाश न होने के कारण कवि ने प्रायः स्वभावोक्ति अथवा सादृश्य मूलक अलंकारो की योजना का ही प्रयास किया है। कुछ उद्धरण दृष्टव्य है—

रूपक — फुल्लेन्दीवरकाननानि नयने पाणी सरोजकारा—
स्तन्वीयं जघनस्थलोरूपुलिना रोमावली निम्नगा।
प्रत्यङ्गेषु नवैव सम्प्रतिशरल्लक्ष्मीरियं दृश्यते
तच्चिन्हैरधुना प्रसाधनविधौ बद्धौ वृथैवादराः।।[3]

उत्प्रेक्षा :— मुषितमश्रुजलैर्नयनान्जनं श्वसितधूसरि तोऽधरपल्लवः।
तनुरियं तनुतामिव लम्भिता किमिव मन्युमना इव लक्ष्यते।[4]

उपमा रूपक व उत्प्रेक्षा की सुन्दर छटा प्रस्तुत पद्य में है

"आदौ मानपरिग्रहेण गुरूणां दूरं समारोपितां
पश्चात्तपभरेण तानवकृता नीतां परं लाघवम्।
उत्सडगान्तरवर्तिनीममनुगमात्सम्पिण्डिताड.गीमिमां
सर्वागप्रणया प्रियामिव तरूच्छाया समालम्बते।।[5]

1— रत्नावली 3 : 12
2— " 3 : 7
3— तापसवत्सराजचरितम् 1 : 16
4— " 1 : 17
5— " 3 : 17

विरोधालंकार — सर्वत्र ज्वलितेषु वेश्मसु भयादालीजने विद्रुते
त्रासोत्कम्पविहस्तया प्रतिपदं देव्या पतन्या सदा।
हा नाथेति मुहुः प्रलापपरया दग्धं वाराक्या तथा
शान्तेनापि वयन्तु तेन दहनेनाद्यापि दह्यमहे।[1]

असंगति अलंकार — प्रायः पथ्यपराङगमुख विषयिणों भूपा भवन्त्यात्मना
निर्दोषान् सचिवान् भजन्त्यतिमहाल्लोकापवाद ज्वरः।
वन्द्याः श्लाघ्यगुणस्त एवं विपिने सन्तोषभाजःपरं
बाह्यऽयं वरमेव सेवकजनो धिक्सर्वथा मन्त्रिणः।[2]

उपमा :— करतलकलिताक्षमालयोः समुदितसाध्वससन्नहस्तयोः।
कृतरूचिरजटानिवेशयोरपर इवेश्वरयोः समागमः।।[3]

संवाद एवं अभिनेयता :— संवादो के द्वारा हो नाटक का कथानक आगे बढ़ता है और नायक को फल की प्राप्ति होती है। भरतमुनि संवादो के लिए तीन बातें महत्वपूर्ण मानते है। प्रथम यह कि संवाद कहीं भी ऐसा नही होना चाहिए जिसके अर्थ समझने में सामाजिको को श्रम करना पड़े। सुनते ही कथन का भाव स्पष्ट हो जाना चाहिए। द्वितीय, यह कि संवाद नीरस नही होने चाहिए और न ही केवल सूचना देने वाले होने चाहिए अर्थात संवाद रस से संयुक्त होना चाहिए। तृतीय महत्वपूर्ण बात यह है कि संवाद योजना करते समय अलंकारो के बलात् प्रयोग से बचना चाहिए।

संवाद मे औचित्य का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए क्या कब और कैसे कहना चाहिए ? इन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए रचित संवाद सहृदयों को आकृष्ट करते है। यद्यपि संवाद के लिए काव्य के समस्त गुण आवश्यक होते है परन्तु उनमें से दो गुणों की आवश्यकता अनिवार्य है प्रथम, प्रसाद तथा द्वितीय कुतूहल। 'प्रसाद' के द्वारा वक्ता की बात श्रोता के हृदय में प्रविष्ट करती है वह उसे भली–भाँति समझता है तथा उसका आनन्द लेने के लिए प्रवृत्त होता है। 'कुतूहल' के द्वारा सामाजिक की प्रवृत्ति नाटक देखने की ओर स्वतः जागरूक रहती है।

1- तापसवत्सराजचरितम् 3 : 10
2– " 1 : 5
3– तापसवत्सराजचरितम् 4 : 20

महाकवि भास ने संवाद के लिए अनिवार्य तथ्यों का पूर्ण ध्यान रखा है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं स्वप्नवासदत्तम् में प्रसादगुणोपेत उनके संवाद छोटे, किन्तु भावाभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम है। उनके संवाद कहीं पर भी दुरूह नही हुए है और न ही उनमें कहीं अस्पष्टता आने पायी है। यथा[1] –

धात्री – जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए ! दिण्णासि।

वासवदत्ता – अय्ये ! कस्स ?

धात्री :– वच्छराअस्स उद अणंस्स।

वासवदत्ता – अह कुसलो सो राआ ?

धात्री – कुसली सो आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ।

वासवदत्ता – अच्चाहिदं

धात्री – ण हु किन्चि। यह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदित्ति।

उनके चुटीले तथा औचित्यपूर्ण है जो कथानक को सहज ही प्रवाहित करते है। एक संवाद की समाप्ति के साथ ही सामाजिक के ह्रदय में आगे कही जाने वाली बात का कौतूहल जागृत हो जाता है। दोनो ही नाटकों में उनकी संवाद शैली प्रवाह पूर्ण एवं प्रभावशाली है। शीघ्र उत्तर–प्रत्युत्तर तथा चुभते हुए संवादों की योजना में वे पूर्ण सफल हुए है। यथा[2]

यौगन्धरायणः – अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी – न खलु तावत्।

यौगन्धरायणः – यद्यनवसिता, विद्या, किंमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्ममचारी – तत्र खल्वतिदारूणं व्यसनं संवृत्तम।

यौगन्धरायणः – कथमिव ?

ब्रह्ममचारी – तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति स्म।

यौगन्धरायणः – श्रूयते तत्र भवानुदयनः। किं सः ?

ब्रह्मचारी – तस्यावन्ति राजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढ़मभिप्रेता किल।

1– स्वप्नवासवदत्तम डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 65 , 66

2– " प्रथम अंक पृष्ठ 37 , 38

यौगन्धरायणम् — भवितब्यम् ! ततस्ततः

संवाद की दृष्टि से हर्षरचित प्रियदर्शिका तथा रत्नावली भी श्रेष्ठ नाटिकायें है। यद्यपि प्रियदर्शिका का कथा संविधान अधिक दृढ़ नहीं है तथापि उसका संवाद सौष्ठव प्रेक्षणीय है। रत्नावली तो सब तरह से श्रेष्ठ नाटिका है। उसके संवाद रसान्वित एवं ह्रदय ग्राह्रा है। उसके संवादो में औचित्य पूर्णता एवं कुतूहल सामर्थ्य का अद्भुत संयोग है। भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ रत्नावली के संवाद समाजिको को सहज ही ग्राह्य है। यथा[1] —

वासवदत्ता — (सरोषमवगुण्ठनमपनीय) अज्जउत्त सच्चं एव अहं साआरिआ। तुमं उग्ग साअरिओक्खित्तहिअओ सव्वं ए वं साअरिआमअं पेक्खसि।

राजा — (सवैलक्ष्यमपवार्य) कथं देवी वासवदत्ता। वयस्य किमेतत्।

विदूषक : — (सविषादम्) भो वअस्य किं अवरं । अम्हाणं जीविअसंसओ जादो एसो।

राजा — (उपविश्यान्जलिं द्ध्वा) प्रिये वासवदत्ते प्रसीद प्रसीद।

वासवदत्ता — (तन्मुखाभिमुखं हस्तौ प्रसार्याश्रूणि निधारयन्ती) अज्जउत्त एवं भण। अण्णगदाइ इमाइं अक्खराइं।

''तापसवत्सराजचरितम् में'' करूण की अजस्र धारा प्रवाहित होती है। इसमें स्वगत कथनों की बहुलता एवं दीर्घता का प्राचुर्य है, तथापि इसके संवाद भावसम्प्रेषण में पूर्ण समर्थ है। उनके माध्यम से सामाजिक भावग्रहण कर रसास्वादन में प्रवृत्त हो जाता है। छोटे–छोटे वाक्यों से संवलित संवाद नाटक के चारूत्व में अतिशय वृद्धि करते है। सरल एवं सरस संवादो की छटा दर्शनीय है–[2]

चेटी — (पटलकमपनीय) देवि ! इदं शरत्समयोचितं प्रसाधनं, प्रसाधयतु देवी।

वासवत्ता — अपनय, अनवसरः साम्प्रतमेतस्य।

चेटी — भर्तृदारिके, कथमिव।

वासवदत्ता — (ससंवरणम्) आगत एवं आर्यपुत्रः। (उत्थाय) जयतु आर्यपुत्रः।

अभिनेयता :— कोई नाटक तभी सफल कहा जा सकता है, जब वह अभिनेयता की

1- रत्नावली नाटिका रामचन्द्र मिश्र तृतीय अक पृष्ठ 139

2-- तापसवत्सराजचरितम् प्रथम अंक पृष्ठ 25

निकर्ष पर खरा उतरा हो। संस्कृत नाटकों की अभिनेयता में महाकवि भास को कोई पार नहीं कर पाया। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं 'स्वप्नवासवदत्तं रंगमंच पर पूरी तरह से अभिनेय है। भास अपने वर्णन चातुर्य एवं नाट्यनैपुण्य के अद्भुत संयोग से अनुपस्थित पात्रों या परोक्ष घटनाओं को रंगमंच पर उपस्थित या घटित कराये बगैर सामाजिकों के मन में उनका आभास प्रत्यक्ष चित्रण सा करा देते है। उदाहरणार्थ, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में वासवदत्ता और उदयन रंगमंच पर कभी नही आते किन्तु सामाजिको को उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास बना रहता है। उनके नाटको में नाटकीय एवं अप्रत्याशित घटनाओं को मनोहारिणी छटा दर्शनीय है। अतिशय वर्णन से वे नितान्त दूर ही रहे। इस प्रकार के वर्णनो की वे मात्र सूचना देकर काम चला लेते है।

महाकवि हर्ष विरचित प्रियदर्शिका तथा रत्नावली भी अभिनय की दृष्टि से सफल नाटिकाएं है। इनमें घटनाओं का संयोजन रंगमंच की दृष्टि से उत्कृष्ट है। रत्नावली में तो अभिनेयता के सभी गुण विद्यमान है। कवित्व के प्रदर्शन के समय भी सामाजिक रसानुभूति में बाधा नही महसूस करता। इसके वर्णन चारूत्वपूर्ण तो है ही साथ ही आनन्दानुभूति में वृद्धि करने वाले है। महाकवि हर्ष प्रियदर्शिका में सारिका के मुख से कही जाने वाली बातों को विदूषक व राजा के मुख से इस प्रकार कहलाते है कि सामाजिको को लगता है कि वास्तव में सारिका ही कह रही है। अतः कहा जा सकता है कि हर्ष की नाटिकांए अभिनेयता की दृष्टि से पूर्ण सफल है।

तापसवत्सराज को रंगमंच की दृष्टि से उत्कृष्ट नाटक नही कहा जा सकता। इसमें कुछ अप्रासंगिक प्रसंगो का नियोजन हुआ है जो नाटकीय दृष्टि से उचित नहीं कहे जा सकते। जैसे द्वितीय अंक की घटनांए नाटकीय की दृष्टि से आवश्यक नही है। चतुर्थ अंक भी अभिनयात्मक कम ही है, जबकि छठा अंक अभिनय की दृष्टि से उत्कृष्ट है तापसवत्सराज नाटक में अनेक नाटकीय दुर्बलताओं का दर्शन होता है, जिनमें से अभिनायात्मक क्षमता की कमी भी एक है। नाटक में स्वगत कथन इतने दीर्घ हो गये है कि वक्ता ही अकेले सम्पूर्ण कथा को कह जाता है। नाटक में यह दोष आदि से अन्त तक दिखाई देता है। रंगमंच पर एक ही व्यक्ति द्वार लम्बे-लम्बे वर्णनों को प्रस्तुत करना अभिनेयता की दृष्टि से सर्वथा अग्राहा है। तापवत्सराज में ऐसे अनेक वर्णन है। पंचम अंक

में कुंजरक द्वारा युद्ध का वर्णन नाटक को नीरस बना देता है। पंचम अंक की घटना को कुछ वाक्यों अथवा संक्षिप्त विष्कम्भक द्वारा प्रस्तुत किया जाता तो नाटक अभिनेयता की कसौटी पर खरा उतरता।

वस्तुतः महाकवि भास हर्ष एवं अंनगहर्ष ने पात्रानुकूल भाषा, भावानुकूल शैली, संवादो की तारम्यता तथा अभिनेयता की दृष्टि से अपनी–अपनी कृतियों को पूर्णतः सफल बनाने का प्रयत्न किया है।

****

सप्तम अध्याय –
समाज एवं संस्कृति

रूपककारों का देश, धर्म तथा सम्प्रदाय एवं उनके काल का संक्षिप्त इतिहस :– साहित्य समाज का दर्पण होता है अर्थात् रचनाकार तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक व्यवस्था से अप्रभावित नही रह सकता। प्रस्तुत अध्याय में तत्कालीन व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। यद्यपि प्रथम अध्याय में रचनाकारों का परिचय दिया चुका है तथापि उनके समय के इतिहास पर दृष्टि डालने से पूर्व उनके देश, काल धर्म तथा सम्प्रदाय का उल्लेख करना समीचीन है, जिससे विषय असम्बद्ध सा न लगे।

1– महाकवि भास :– देश धर्म तथा सम्प्रदाय एवं उनके काल का संक्षिप्त इतिहास :– महाकवि भास, भारत माता के हृदयस्थ हार में जड़ित अनमोल रत्न है, जो युग–युग तक अपनी आभा से उसकी क्रान्तिवृद्धि करते रहेंगे। निःसन्देह उन्होने देश की पवित्र भूमि के किस भाग को अलंकृत किया यह अभी भी विवाद का विषय बना है। उनके काल निर्धारण में भी विद्वानों में मत वैभिन्न है। परन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि भास कालिदास से पूर्ववर्ती है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रं में उनका नाम बड़े आदर पूर्वक लिया है।[1]

शूदक का मृच्छकटिक नामक नाटक भास के चारूदत्त नाटक का ही परिवर्धित रूप ज्ञात होता है। इसका कारण यह ज्ञाता होता है कि भास–कृत चारूदत्त अपूर्ण था। उसे शूद्रक ने ही पूर्ण एवं परिवर्धित किया। प्रो0 विन्सेन्ट ए0 स्मिथ मानते है कि शूद्रक 220 ई0पू0 गद्दी पर बैठा था और 197 ई0पू0 में उसका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार मृच्छकटिक का रचनाकाल तृतीय शताब्दी ईसापूर्व सिद्ध होता है। अतः भास का समय तृतीय शताब्दी ई0पू0 के पूर्वाद्ध के बाद ही रखा जा सकता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासदत्तम् ऐतिहासिक घटनाओं पर आश्रित है। अतः भास की पूर्व सीमा इनके द्वारा भी निर्धारित की जा सकती है। भास ने इन नाटको में तीन राजाओं का उल्लेख किया है–

1– प्रथितशसा ....परिषदो बहुमानः।
संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी पृष्ठ 283

1– कौशाम्बी के राजा उदयन 2– उज्जयिनी के राजा प्रद्योत

3– मगध के राजा दर्शक।

इन तीनो राजाओं का उल्लेख पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में मिलता है। विष्णुपुराण और वायुपुराण के अनुसार उदयन और प्रद्योत समकालीन थे। बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों के अनुसार प्रद्योत और अजातशत्रु ये दोनो बुद्ध और महावीर के समकालीन थे।

भास ने प्रद्योत, दर्शक व उदयन को समकालीन चित्रित किया है। वी0ए0 स्मिथ के मतानुसार दर्शक और उसके उत्तराधिकारी का राज्य काल 475 ई0पू0 से 450 ई0पू0 है। अतः यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत दर्शक और उदयन ये तीनो 475 ई0पू0 से 450 ई0पू0 के मध्य में समकालीन रहे। इस प्रकार भास का समय 450 ई0पू0 से पहिले नही माना जा सकता है।[1]

भास के नाटकों का सामाजिक चित्रण छठी शताब्दी ई0पू0 से चौथी शताब्दी ई0पू0 के भारत की ओर संकेत करता है। उनके नाटकों के भरतवाक्य नन्दवंश के किसी राजा की ओर संकेत करते से प्रतीत होते है। अन्तः साक्ष्यों एवं बहिः साक्ष्यों के आधार पर भस का समय पाँचवी शताब्दी ई0पू0 निर्धारित किया जा चुका है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस काल की परिस्थिति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

पांचवी तथा चौथी शताब्दी ई0पू0 में भारत पर मगध साम्राज्य का शासन था [2] सांस्कृतिक दृष्टि से मगध में आर्यो तथा अनार्यो की सभ्यता का अद्भुत मिश्रण हुआ। मगध में आर्य सभ्यता का प्रसार धीरे–धीरे और वहाँ तक पहुँचते–पहुँचते उसकी शक्ति ओर श्रेष्ठता की भावना लुप्त हो गयी। जिसके कारण मगध में ब्राह्मणों के पतिक्रियावादी विचार श्रेष्ठता न प्राप्त कर सके और वहां उदारता तथा समन्वय का वातावरण बना रहा। इसी उदारता के वातावरण में बौद्ध और जैन धर्मो का उत्थान हुआ।

भारत की आर्थिक सम्पन्नता और बड़े नगरों का निर्माण ई0पू0 छठी शताब्दी की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। भारतीय सभ्यता क्रमशः ग्राम सभ्यता से नगर सभ्यता की ओर अग्रसर हो रही थी। निः सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि इन नगरों के निर्माण का प्रमुख कारण बड़े राज्यों के निर्माण करने में सफल हुए तब बड़े नगरों का निर्माण था।

1– संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिदेव द्विवेदी पृष्ठ 284

2– प्राचीन भारत – एल0पी0 शर्मा पृष्ठ 102

शक्ति शाली राजा जब बड़े–बड़े राज्यो के निर्माण करने में सफल हुए, तब बड़ें नगरो का निर्माण भी हुआ। कुछ नगरों का निर्माण बड़े राज्यों की राजधानियों के रूप में हुआ, तथा कुछ का निर्माण दृढ़ और विस्तृत राज्यों के संरक्षण में व्यापारिक केन्द्रो के रूप में हुआ। इस प्रकार राजनीतिक विकास के साथ–साथ आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहा।

भारत की आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि का एक कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि होना भी था, किन्तु इसका मूल कारण भारत का पश्चिम, उत्तर–पश्चिम तथा एशिया के राज्यों से बढ़ता हुआ व्यापार था। भारत का एक व्यापारिक मार्ग राजगृह से कौशाम्बी और उज्जैन के मार्ग से भड़ौच के बन्दरगाह तक था। जहाँ से भारत ने समुद्री मार्ग से पश्चिमी देशों से व्यापार किया। एक अन्य व्यापारिक मार्ग कौशाम्बी से गंगा की घाटी को पार करता हुआ पंजाब से तक्षशिला तथा स्थल मार्ग से उत्तर–पश्चिम के देशों से व्यापार की सुविधा प्रदान करता था। पूर्व की ओर से गंगा की घाटी से विभिन्न स्थानों से गुजरते हुए एक मार्ग वर्मा तक और दूसरा भारत के पूर्वी समुद्री तट तक था। इस समय भारत को विदेशी व्यापार में पर्याप्त सफलता मिली।

इस काल की बढ़ती हुयी सम्पन्नता से सामाजिक ढांचा भी प्रभावित हुआ फलस्वरूप नगरों का निर्माण हुआ। इस समय के नगरों में चम्पा, कौशाम्बी, राजगृह, उज्जयिनी, वैशाली, श्रावस्ती, कम्बोज, वाराणसी, कोसल तथा पाटलिपुत्र प्रमुख थे।

ई0पू0 छठी शताब्दी तक मुद्रा प्रणाली का उदय हो चुका था। उस समय चाँदी तथा अन्य धातुओं के सिक्के प्रचलित थे। यह मुद्रा व्यवस्था, विनिमय की सुविधा प्रदान करके, व्यापार तथा उद्योगों की प्रगति में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुयी। इससे समाज में सम्पन्न व्यापारी तथा उद्योगपति वर्ग की स्थापना हुयी। परिणाम स्वरूप नगरों में संगठित तथा जागृत वर्गो का निर्माण हुआ और विभिन्न उपजातियां बनीं।

इन बदलती हुयी आर्थिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विभिन्न प्रादेशिक ओर लोकप्रिय भाषाओं का विकास हुआ। संस्कृत भाषा उस समय तक श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों तथा पुरोहितों की भाषा मात्र रह गयी थी। इसके अतिरिक्त प्राकृत पाली तथा मागधी इस समय की विकसित तथा लोक प्रिय भाषांए थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि भास इतिहास के उस काल

(ई0पू0 छठी शताब्दी) के प्रतिनिधि है जो न केवल राजनीतिक परिवर्तनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा, अपितु, सामाजिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों की दृष्टि से भी महत्वूर्ण है। इन परिवर्तनों ने भावी जनजीवन को गम्भीरता से प्रभावित किया।

2— महाकवि हर्षः देश, धर्म तथा सम्प्रदाय एवं उनके काल का संक्षिप्त इतिहास :— नाटककार के रूप में हर्ष, हर्षवर्द्धन या हर्षदेव को प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द का रचयिता माना जाता है। ये हर्षवर्धन स्थाणीश्वर (थानेश्वर) और कन्नौज के राजा प्रभाकरवर्धन के पुत्र और राज्यवर्धन के छोटे भाई है। महाकवि बाण इनके आश्रित कवि है जिन्होने इनके जीवन को आधार मानकर 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की है। जो इनके जीवन के विविध पक्षों का परिचय कराती है। हर्ष एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। इस विद्या व्यसनी सम्राट का शासन काल 606 ई0 से 648 ई0 तक है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनके सम्बन्ध में प्रतिपादित मुख्य तथ्यों को उद्घाटित किया जा सकता है।

बाणभट्ट हर्ष को शैव मानते है जबकि ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष प्रारम्भ में हिन्दू धर्म का अनुयायी, शिव व सूर्य का उपासक था परन्तु कालान्तर में उसका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया था। वह प्रत्येक वर्ष विद्वानों को वाद—विवाद के लिए एकत्रित करता था। उसने पशु वध का निषेध किया था, तथा इसके साथ ही अनेक बौद्धमठों एवं स्तूपों की भी स्थापना की थी।

हर्ष ने अपने समय में ह्वेनसांग के सम्मान मे कन्नौज मे एक धार्मिक सभा बुलायी थी जिसमे बौद्व एवं हिन्दू विद्वानो को आमंत्रित किया गया था ह्वेनसांग की अध्यक्षता वाली यह सभा 21 दिन तक चली यहाँ प्रतिदिन बुद्व की प्रतिमा का जूलूस निकाला गया जिससे असन्तुष्ट ब्राहाणो ने अन्तिम दिन एक मुख्य पाडाल मे आग लगा दी। उसी समय एक व्यक्ति ने हर्ष की मृत्यु का असफल प्रयास भी किया अन्त मे अनेक भिक्षुओ एवं ब्राहाणों को दान देकर इस सभा का विसर्जन किया गया कन्नौज की सभा बौद्व धर्म के पक्ष मे सिद्व हुयी थी परन्तु हर्ष प्रत्येक पाँचवे वर्ष प्रयाग मे धार्मिक सम्मेलन का आयोजन करता था उसने ऐसी छह सभाओं का आयोजन किया प्रयाग की सभाएं उसकी धार्मिक सहिष्णुता की परिचायक है यहाँ पहले दिन बुद्व की दूसरे दिन शिव की और तीसरे दिन सूर्य की पूजा की जाती थी इन सभाओ मे हर्ष प्रतिदिन प्रचुर मात्रा मे धन दान दिया करता था इस प्रकार हर्ष एक उच्चकोटि का सम्राट तथा धार्मिक सहिष्णु व्यक्ति था जो

बौद्व धर्म की ओर आकृष्ट होते हुए भी सभी धर्मो को समादर करता था।

यशस्वी व प्रतापी सम्राट हर्षवर्धन का शासनकाल 606 ई0 से 647 ई0 तक माना जाता है।[1] बाण भट्ट की रचना हर्षचरितम चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरणो नालन्दा बासखेडा के अभिलेखो तथा तत्कालीन सिक्को से इसकी पुष्ट होती है इसके समय के इतिहास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

हर्ष के समय में सभ्यता तथा संस्कृति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। गुप्तकाल से चली आ रही परम्पराएं इस समय भी विद्यमान थी। इस समय तक वर्णाश्रम व्यवस्था पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी। अन्र्जातीय विवाह तथा खान–पान सम्भव था परन्तु उसमें कुछ कठोरता आ गयी थी। स्त्रियों की स्थिति पहले की अपेक्षा निम्न स्तर पर थी। सती प्रथा का अधिक प्रचलन था। पर्दा प्रथा नहीं थी। किन्तु स्त्रियों के व्यवहार पर बन्धान थे। नैतिक दृष्टि से व्यक्ति चरित्रवान् थे। उनका भोजन सात्विक व वस्त्र साधारण थे। मांस मदिरा, लहसुन तथा प्याज का अधिक प्रयोग नही होता था।

हर्ष के समय साधारणतया देश सम्पन्न था। अच्छी कृषि, विभिन्न उद्योग और विदेशी व्यापार अब भी उनकी सम्पन्नता के मुख्य आधार थे। पेशावर, तक्षशिला तथा उत्तर पश्चिम के नगर हूणों के आक्रमण के कारण नष्ट हो गये थे तथा मथुरा और पाटलिपुत्र की स्थिति गिर गयी थी, परन्तु प्रयाग, बनारस और कन्नौज सम्पन्न नगर थे। राजधानी कन्नौज एक विस्तृत, सुरक्षित तथा वैभवपूर्ण नगर था। उसमें सुन्दर और विशाल भवन, बगीचे और तालाब थे। वहाँ अत्यन्त सम्पन्न तथा विद्वान व्यक्ति रहते थे। व्यक्तियों की साहित्य तथा कला में रूचि थी।

हर्ष के समय भारत में हिन्दू, बौद्व तथा जैन तीनों ही धर्म लोकप्रिय थे। हिन्दू धर्म की प्रगति हो रही थी तथा प्रयाग और बनारस उसके केन्द्र स्थल थे। विष्णु, विष्णु के अवतार तथा शिव हिन्दुओं के लोकप्रिय देवता थे। इस समय विभिन्न स्थानों पर बड़े–बड़े हिन्दू मन्दिरों की निर्माण हो चुका था। बौद्व धर्म के दो सम्प्रदाओं में से हीनयान की अपेक्षा महायान सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय था। कश्मीर, जालंधर, कान्यकुब्ज, श्वेतपुर तथा गया आदि बौद्वो के प्रमुख स्थान थे। नालन्दा बौद्व शिक्षा एवं ज्ञान का प्रमुख केन्द्र था तथा उसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली थी। जैन धर्म भी भारत के विभिन्न भागों में

1– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – चन्द्रशेखर पाण्डेय पृष्ठ 165

प्रचलित था।

इनके समय में भी विदेशो में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। दक्षिण पूर्वी एशिया में हिन्दू धर्म प्रगति पर रहा तथा नालन्दा से अनेक विद्वान चीन और तिब्बत गयें। अनेक विद्वानों ने स्थानीय भाषाओं में बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अनुवाद किया तथा बौद्ध धर्म के प्रसार में सहयोग दिया।

महाकवि अनंगहर्षः—देश,धर्म तथा सम्प्रदाय एवं उनके काल का संक्षिप्त इतिहास — तापसवत्सराजचरितम् की प्रस्तावना से केवल इतना ही पता चलता है कि इसके प्रणेता नरेन्द्र वर्धन के पुत्र 'अनंगहर्ष' अपरानामक श्री मातृराज थे। राजशेखर ने कलचुरि राजवंश में उदभूत किसी 'माउराज' की प्रशस्त स्तुति की है।'माउराज' मातृराज का असली नाम प्रतीत होता है। यदि यह ठीक हो, तो ये कलचुरि वंश के कोई राजा प्रतीत होते है। तापसवत्सराजचरितम की प्रस्तावना के अनुसार अनंगहर्ष उत्तम आचरण वाले, सदा विद्वानो को प्रसन्न करने वाले, प्रीतिपात्रों को सन्तुष्ट करने वाले, सहृय, निरभिमानी एवं कलाओं के प्रेमी थे।

संस्कृत के अन्य महाकवियों की भॉति ये भी अपने जन्म, स्थान आदि के सम्बन्ध में आत्मनिरपेक्ष ही रहे। फलतः इनके समय का भी अनुमान लगाया जाता है।

नवीं तथा बारहवीं शताब्दी के मध्य के लगभग सभी कश्मीरी कवियों और आचार्यो द्वारा इनके नाटक के अंशो का उद्घृत किया जाना तथा कश्मीर की शारदा लिपि में ही इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि का प्राप्त होना इस बात की ओर संकेत करता है कि अनंगहर्ष कश्मीर या उसके निकटवर्ती प्रदेश के निवासी रहे होंगे। तापसवत्सराज में गंगा, यमुना, प्रयाग, मगध, कोशल, पाञ्चाल आदि का वर्णन प्राप्त होता है, इससे प्रतीत होता है कि ये उत्तर भारत के ही निवासी थे। नाटक में सामाजिक चित्रण के लिए विशेष अवसर न होने के कारण इस पृष्ठिभूमि पर उनके काल या स्थान पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

अनेक तथ्यों को उद्घाटित करते हुए विद्वानो ने अनंगहर्ष का रचनाकाल 8वीं शताब्दी के मध्य स्वीकार किया है। इतिहासकारों ने 647 ई0 से 1200 ई0 तक के अधिकांश राजकुलों को राजपूत माना है जिसके कारण इस युग को 'राजपूत युग' के नाम

से जाना जाता है।[1] परन्तु इस मत के कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस समय के मध्य में हुए अनेक शासक, ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण और क्षत्रियों की मिश्रित सन्तान थे। नि.सन्देह इस युग में ऐसे भी राजवंश हुए जो विदेशी आक्रान्ताओं अथवा मिश्रित रक्त की संन्तान थे, परन्तु वे सभी हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति ये अभिन्न अंग बन गये थे उन सभी ने प्राचीन क्षत्रिय कुलो के होने का दावा किया था और उन सभी को क्षत्रियों में स्थान प्रदान भी किया गया था। बाद में उन विभिन्न राजवंशो में से अनेक को 'राजपूत' कहकर पुकारा गया। परन्तु राजपूत शब्द किसी एक कुल और मुख्यतया निम्न कुल का द्योतक न था अपितु एक नवीन परम्परा और प्रवृत्ति का प्रतीक था। जिसका पालन इस युग के विभिन्न राजवंशो ने किया जिसके कारण वे राजपूत कहलाये। उन सभी ने क्षत्रिय धर्म का पालन किया तथा उनमें से कुछ शासकों ने विस्तृत साम्राज्यों के निर्माण का भी प्रयत्न किया। अधिकांश शासकों ने विदेशी आक्रान्ताओं से देश की एवं इसकी संस्कृति की रक्षा का प्रयत्न किया। इस काल की विभिन्न परिस्थितियों वंश हिन्दू संस्कृति में अनेक तत्वों को समाहित किया गया जिससे उसके परम्परागत ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जो इस काल की पृथक विशेषताओं के कारण बने। इन पृथक परिस्थितियों ओर विशेषताओं के कारण ही यह युग राजपूत काल कहलाया वस्तुतः ये विशेषताएं 10 वी शताब्दी के अन्तिम चरण में गुर्जर प्रतिहार वंश के नष्ट हो जाने के पश्चात प्रकट हुयी। अतः वास्तव में राजपुत युग 10 वीं. शताब्दी के अन्तिम चरण में स्वीकार किया जाना चाहिए परन्तु क्योंकि गुर्जर प्रतिहारों ओर उनके समकालीन कुछ अन्य राजवंशो को भी राजपूत ही माना गया इस कारण सामन्यतया राजपूत युग का आरम्भ 8वीं शताब्दी के मध्य से मान लिया गया है। इस काल की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

इस युग में आर्थिक गिरावट के बावजूद भी भारत सम्पन्न था। कृषि–उद्योग तथा विदेशी व्यापार ने भारत को समृद्धशाली देश बना दिया था भारत विदेशो को कपडा चन्दन, लौंग, कर्पूर, नारियल, मखमल, हांथीदांत मोती तथा बहुमूल्य पत्थर निर्यात करता था तथा वहाँ से सोना, हीरे, रेशमी वस्त्र, खजूर, घोडे, आदि आयात करता था। विदेशी

1– मायूराज समोजझे नान्यः कलचुरिः कविः।
उदन्वतः समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः।।
संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 554 से उदधृत

व्यापार भारत के पक्ष मे था। चीन, दक्षिण, पूर्व एशिया तथा पश्चिमी एशिया के विभिन्न राज्यों से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे। भारत की सम्पन्नता का मुख्य आघार कृषि थी।

भारत की इस आर्थिक सम्पन्नता का सदुपयोग नही किया गया। जनसाधारण की स्थिति बहुत निम्न स्तर पर थी जब कि राजाओं, सामन्तो, मन्दिरों और धार्मिक मठों में सम्पत्ति एकत्रित हो गयी थी। जिसका उपयोग न तो जनता की भलाई के लिए हो सकता था। और न ही राज्य की समृद्धि के लिए।

वर्णाश्रम व्यवस्था इस समय भी समाज का मुख्य आधार थी, इसकी स्थापना करना राजा का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र थे। इनके अतिरिक्त अनेक उपजातियों का निर्माण हो चुका था तथा जातीय बन्धन कठोंर हो गये थे। इसके अतिरिक्त सभी जातियां अपनी–अपनी श्रेष्ठता का दावा करती थी। जिसके कारण समाज विभिन्न वर्गो मे विभाजित हो गया था, और इन वर्गो में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा एवं गम्भीर मतभेद थे। स्त्रियां पतिव्रता होती थी। तथा पत्नी की दृष्टि से उनका समाज मे सम्मान था। उच्च परिवारों की स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने एवं अपने वर का चयन करने का अधिकार था। लडकी का जन्म दुःखद माना जाता था। बहु पत्नी प्रथा, सती प्रथा, तथा जौहर प्रथा आदि की प्रथाएं उच्च वर्गो में प्रचलित हो गयी थी । समाज में बालहत्या एवं बाल विवाह होने लगे थे। गणिकाओं तथा देवदासियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। सामान्य वर्गो में स्त्रियों का सम्मान था परन्तु सम्पन्न वर्गो में स्त्री, पुरूष की दासी बनती जा रही थी।

इस समय समाज में कानूनी व्यवस्था एवं राजनीतिक एकता के अभाव में सभी अच्छी व खराब सामाजिक परम्पराओ का समर्थन धर्म के आधार पर किया गया फलतः समाज मे जड़ता आ गयी और परिवर्तन व प्रगति की गति अवरूद्ध हो गयी समाज के ये दोष मुख्यता दसवी शताब्दी के निकट तथा इसके पश्चात अधिक प्रकट हुए। भारत की राजनीतिक, धार्मिक व बौद्धिक दुर्बलता का प्रभाव समाज पर गम्भीरता से पडा जिसने समाज की प्रगति को सदियों के लिए स्थगित कर दिया।

उस समय जनसाधारण के लिए तो सदाचार, व नैतिकता महत्वपूर्ण थे परन्तु उच्चवर्ग मे विलासिता के प्रभाव से नैतिकता पतनोन्मुख थी। सामाजिक मान्यताओं विभिन्न वर्गो एवं उनके आचारो के अन्तरों के फलस्वरूप सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना

लुप्त हो गयी थी। तथा भारतीय समाज एकाकी, विभाजित, दुगुर्णो व कूपमण्डकता का शिकार बन पड़ा था।

इस काल में हिन्दू धर्म सबसे प्रबल रहा। अधिकांश राजवंशों ने पौराणिक हिन्दू धर्म का समर्थन किया, जिसका सृजन बहुत कुछ गुप्त काल में हुआ था। बौद्ध ध ार्म कहीं-कहीं प्रचलित था, मुख्यतया पालशासकों के संरक्षण में यह पूर्वी भारत में पर्याप्त समय तक लोकप्रिय रहा। जैन धर्म गुजरात और दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय रहा। इस दृष्टि से यह काल भी धार्मिक सहिष्णु रहा। हिन्दू बौद्ध व जैन धर्मो के मतावलम्बी धार्मिक वाद-विवाद करते हुए भी साथ-साथ मिलकर रहते थे। बौद्ध धर्म में महायान और तान्त्रिक बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय था जबकि जैन धर्म में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय समान रूप से प्रचलित थे।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल अधिक सम्पन्न था। शिक्षा और विद्वानों को संरक्षण प्रदान करना सम्राट अपना कर्तव्य समझते थे। कुछ सम्राट तो स्वयं ही विद्या व्यसनी थे। नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्ती, धारानगरी, बलभी, कांची आदि विद्या के प्रमुख केन्द्र थे जिनमें देश विदेश के विद्वान और विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति की लालसा से एकत्र होते थे। ललित कलाओं की दृष्टि से भी यह काल प्रगति का रहा। इस काल में वास्तुकला तथा मूर्तिकला का प्रमुखता से विकास हुआ। इस काल के बने हुए महल, किले, मन्दिर, और उनमें प्रतिष्ठापित मूर्तियां इस क्षेत्र में भारत की अभूतपूर्व प्रगति को सिद्ध करती है। चित्रकला में अजन्ता और बाघ की गुफाओं के कुछ चित्र इस काल के माने जाते हैं। गायन और नृत्यकला का भी इस काल में विकास हुआ। गणिकाएं और देवदासियाँ इन कलाओं में पारंगत होती थी।

इस प्रकार यह काल सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि से अपकर्ष का काल रहा परन्तु साहित्य, ललित कला मूर्ति कला और स्थापत्य कला की दृष्टि से सम्पन्न था। जिसके कारण इस युग का, भारतीय समाज एवं संस्कृति के इतिहास मे एक विशिष्ट स्थान है।

रूपकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक व्यवस्था– साहित्य समाज का दर्पण होता है। कोई भी साहित्य तात्कालिक सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता हैं। समीक्ष्य कृतियों-प्रतिसायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका रत्नावली व

तापसवत्सराजचरितम् में तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार प्रतिबिम्बित हुयी है, इस पर बिन्दुवार विचार प्रस्तुत है–

वर्णाश्रम व्यवस्था– भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तम् न केवल प्राचीन भारत की राजनीतिक व भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं अपितु उनसे तात्कालिक समाज सभ्यता एवं संस्कृतिक का भी ज्ञान होता हैं नाटकों के अनुसार भास के समय वर्णाश्रम व्यवस्था थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में जाति प्रथा का अस्तित्व था, ब्राह्मण[1] आदि जातियां भी थी। ब्राह्मण धार्मिक कार्यो के अतिरिक्त शान्ति स्थापना के लिए भोजन भी करते थें।

आश्रम व्यवस्था के अर्न्तगत तपोवन में वानप्रस्थी तथा सन्यासी रहते थे। ब्रह्मचारी, गुरू के साथ रहकर आश्रम में वेदाध्ययन करते थे। अध्ययन पूर्ण करने के बाद ही ब्रह्मचारी आश्रम से लौटते थे।[2] तपोवन में रहने वाले पूर्णतः सन्तुष्ट रहते थे फलतः वे याचना नही करते थे।[3] वस्तुतः इस समय नैतिकता तथा आदर्श का अधिक महत्व था।

महाकवि हर्ष की प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनो ही नाटिकाए राजा के अन्तःपुर की प्रणय कथाओ पर आधारित है कवि द्वारा निरूपित पात्र भी अन्तःपुर के विलासपूर्ण वातावरण मे विचरण करते है वे सामान्य जनजीवन से सर्वथा अलग है स्वयं राजा होने के कारण कवि हर्ष सामान्य जनजीवन की भावनाओ से दूर लगते है फलतः इन नाटिकाओं से सामाजिक दशा पर विशेष प्रकाश नही पडता।

तापसवत्सराजचारितमृ मे वर्ण तथा आश्रम दोनो ही व्यवस्थाओ का उल्लेख हुआ है। वासपवदत्ता के दाह का समाचार सुनकर राजा उदयन स्वयं तापस वेष धारण कर तपोवन में प्रवेश करता है।[4] इसी प्रकार यौगन्धरायण के ब्राह्मण वेष धारण करने का भी उल्लेख हुआ है।[5] आश्रम मे किसी के प्रवेश पर अपनी इच्छानुसार कोई भी आ जा सकता था तथा अपनी इच्छानुसार किसी की भी पूजा कर सकता था। आश्रम में आने वाले अतिथियों का अर्ध्यादि से पूजन किया जाता था।

परिवार तथा विवाह विधियाँ– प्रतिज्ञायौन्धरायणम् स्वप्नवासवदत्तम्, प्रियदर्शिका,

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम व्या0 गंगासागरराय प्रथम अंग पृष्ठ 40
2– स्वप्नावासवदत्तम्– व्याख्या डॉ0 गंगासागर राय – प्रथम अंग पृष्ठ– 37
3– " " " प्रथम अंक पृष्ठ– 23
4–तापसवत्सराजचरितम्, तृतीय अंक पृष्ठ 60
5– तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 68

रत्नावली तथा तापसवत्सराज, ये सभी कृतियां राज परिवारों की कथा से सम्बद्ध है अतः जन सामान्य की पारिवारिक व्यवस्था इनमें प्रतिबिम्बित नही है। जबकि ये कृतियां वैवाहिक व्यवस्था को उद्घाटित करती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तं से विवाह के सम्बन्ध में जो तथ्य उद्घाटित होते हैं उनके अनुसार विवाह का कार्य धार्मिक प्रक्रिया के साथ सम्पन्न होता था। विवाह के लिए कन्या अथवा वर पक्ष दोनो की तरफ से दूत संप्रेषण होता था। प्रतिज्ञायौगन्धरायण से पता चलता है कि वर पक्ष ही कन्या के पिता के पास दूत भेजता था।[1] वर का चुनाव बहुत सोच समझकर किया जाता था इस सम्बन्ध ा मे कन्या का पिता उसकी माता से भी परामर्श लेता था[2]। सभी परिजनो को भी विवाह सम्बन्धी परामर्श देने का अधिकार था। वर के चुनाव मे वर के गुण कुल चरित्र रूप एवं शौर्यादि की विशेष रूप से जाच की जाती है।[3]। उस समय राजनीतिक उद्देश्य हेतु प्रायः वैवाहिक सन्धियाँ भी होती थी स्वप्नवासवदत्तम् मे व तापसवत्सराजचरितम् मे उदयन का विवाह पद्मावती से कराने का उद्देश्य मगधराज से वैवाहिक सन्धि कर उनका सहयोग प्राप्त करना था यौगन्धरायण ने कौशाम्बी की रक्षा व उन्नति के लिये ही इस विवाह को सम्पन्न कराने की योजना बनायी थी[4] ।

स्वप्नवासवदत्तम से स्पष्ट है कि उस समय बाल विवाह नही होते थे पद्मावती का तरूणी होने पर ही विवाह हुआ था।[5] इसी प्रकार वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध मे अंगारवती का कथन कि अभी तो मेरी बेटी छोटी है भी बाल विवाह का निषेध करता है।[6] इस समय भी गान्धर्व विवाह का भी प्रचलन था तथा परिस्थितिवश इसे क्षात्र धर्मसम्मत मान लिया गया था।[7] विवाह मे अग्नि को साक्षी बनाया जाता था विवाह के समय धार्मिक क्रिया भी सम्पन्न की जाती थी तथा नक्षत्रादि का भी ध्यान रखा जाता था शुभ नक्षत्र मे ही विवाह कौतुक का मगल सूत्र बाँधा जाता था।[8] विवाह संस्कार के प्रारम्भ मे वर को स्नान कराया

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम, डॉ0 गंगासागर राय– द्वितीय अंक पृष्ठ 47 एवं 54
2– दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः। तस्माद् देवीं तापदाहूयताम्।
प्रतिज्ञायौगन्धरायण, या0 गंगासागर राय द्वितीय अंग पृष्ठ 49
3– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् –2: 4
4–(अ) स्वप्नवासवदत्तम – व्या0 डॉ गंगासागर राय – षृष्ट अंक पृष्ठ 212
(ब) तापसवत्सराजचरितम् – 1 : 14
5– स्वप्नवासदत्तम् 'व्या0 डॉ0 गंगासागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 58
6– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्याख्या " " द्वितीय अंक 69
7– " " चतुर्थ अंक पृष्ठ 138
8– स्वप्नवासवदत्तम् " " " द्वितीय अंक पृष्ठ 68

जाता था।[1] सौभाग्यवती महिलाऐ ही जमाता को चतुःशाला मे ले जाती थी विवाह के बाद कन्या का पिता उपहार देता था भृगांर एक ऐसा ही उपहार था।[2] जो महासेन यौगन्ध ारायण को देता है।

प्रियदर्शिका तथा रत्नावली से विवाह संस्कार का पूर्ण विवरण प्राप्त नही होता तथापि कुछ तथ्यों का ज्ञान अवश्य होता है उस समय कन्या पिता द्वारा वर को प्रदान की जाती थी।[3] इस समय भी बालविवाह नही होते थे प्रियदर्शिका मे विन्ध्यकेतु को मारकर लायी गयी अरण्यका के समबन्ध मे राजा उद्यन कहता है।–यदा वर योग्या भविष्यति तदा मां स्मारय।[4]नायिकाओ के सौन्दर्य वर्णन से प्रतीत होता है कि वे पूर्ण यौवना थी यौवन के सभी लक्षण उनमें विद्यमान थे लगभग 16 वर्ष की अवस्था विवाह योग्य मानी जाती थी वर के चयन का पूर्ण अधिकार पिता को था। वर के गुण के रूप में उसके सौन्दर्य कुल एवं शील आदि का परिगणन किया जाता था कन्या के पतिगृह जाने के समय उसके बन्धु बान्धव वर पक्ष से उसके साथ सद् व्यवहार करने का निवेदन करते थे जिससे वह अपने बन्धुजनो का स्मरण न करें।[5]

यद्यपि ये चारों रचनाए प्रेम पर आधारित है किन्तु तापसवत्सराजचरितम् मे प्रेम अपने उच्चतम स्वरूप मे व्यक्त हुआ है। इसमें प्रेमप्राप्ति के लिए पद्मावती को तापस वेष धारण किये हुए दिखाया गया है।[6] यह इस बात का भी परिचायक है कि विवाह मे कन्या की सहमति भीली जाती रही होगी विवाह का उद्देश्य राजनीतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाना था और इसकी आवश्यकता दोनो पक्षो को थी। इस समय भी विवाह युवावस्था मे होते थे क्योंकि तपस्विनी पद्मावती युवती है।[7] विवाह के पूर्व वर तथा कन्या पक्ष एक दूसरे की स्थिति तथा अपनी अवस्थाओं के अनुरूप संचालित होते थे विवाह के सन्दर्भ मे सिद्वों

1–– स्वप्नवासदत्तम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 73
2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व्या0 डा0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 136
3–1– (अ) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं दत्ता तातेन।
रत्नावली व्याख्या डॉ0 राजेश्वर शास्त्री – प्रथम अंक पृष्ठ 51
(ब) अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्तां
प्रियदर्शिका –व्या0 रामचन्द्रमिश्र – द्वितीय अंक पृष्ठ 36
4– प्रिददर्शिका व्या0 – रामचन्द्र मिश्र – प्रथम अंक पृष्ठ 16
5– आर्यपुत्र दूरे खल्वेतस्याः पितृकुलम्। तत्तथा कुरू यथा न बन्धुजनं स्मरति।
रत्नावली, व्या0 डॉ0 राजेश्वर शास्त्री – चतुर्थ अंक पृष्ठ 235
6– तापसवत्सराजचरितम् तृतीय अंक पृष्ठ 71
5– तापसवत्सराजचरितम् – तृतीय अंक पृष्ठ 71

की वाणी को विशेष महत्व दिया जाता था।[1]

इन रचनाओं मे विवाह के दो ही रूप परिलक्षित होते है प्रथम गान्धर्व विवाह द्वितीय ब्रहा विवाह ये दोनो विधियाँ ही विवाह क्रिया की प्रधान सम्पादिका थी।

स्त्रियों की स्थितिः— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तम के अध्ययन से पता चलता है कि भास के समय थी तथा समान आसन पर बैठती थी।[2] इसके अतिरिक्त वे गायन वादन चित्रकला आदि कलाओं मे भी दक्ष थी कला शिक्षण हेतु शिक्षक नियुक्त किये जाते थे।[3] तथा कन्यायें भी सीखने जाती थी स्त्रियों की चरित्र रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।[4] प्रोषितपतिका स्त्रियों की चरित्र की रक्षा के लिए उनके संरक्षक सावधान रहते थे स्वयं स्त्रियां भी पर पुरूष संकीर्तन व दर्शन को दोष मानती थी चरित्र रक्षा के लिये उन्हे विश्वास पात्रों के पास न्याय रूप में रखा जाता था।[5] पुरूष भी विवाहित स्त्रियों के दर्शन को दोष मानते थे परन्तु कन्या दर्शन निर्दोष माना जाता था।[6]अरूचिकर घटना होने पर स्त्रियाँ आत्महत्या कर लेती थी प्रतिज्ञायौगन्धरायणम मे अगांरवती द्वारा आत्महत्या के प्रयास का सकेंत हुआ है।[7]

प्रियदर्शिका व रत्नावली के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय भी स्त्रियाँ की दशा अच्छी थी उन्हे पर्याप्त वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। अन्तःपुर में प्रधान अमात्य के उच्चवर्गीय कर्मचारीगण और सेनापति भी जा सकते थे रत्नावली मे राजा उद्यन रानी तथा उसकी दासियों की उपस्थिति मे ही सिंहल के मन्त्री से साक्षात्कार करता है प्रियदर्शिका मे भी जब सेनापति विजयसेन तथा द्रढवर्मा का कन्चुकी राजा से मिलते है तो उस समय वासवदत्ता राजा के समीप ही बैठी रहती हैं। वस्तुतः इस काल मे महिलाओं का उन्नत स्थान उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक था कुमारियों से मर्यादित आचरण की अपेक्षा की जाती थी स्वाभिवाविक लज्जा एवं भय के कारण वे पुरूषो के समक्ष ठहर नही पाती थी।[8]

1— स्वप्नवासवदत्तम, व्या0— डॉ0 गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 15
2— स्वप्नवासदत्तम् व्याख्या — डॉ0 गंगासागर राय षष्ठ अंक पृष्ठ 179
3— प्रतिायौगन्धरायणम् व्याख्या — डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 131
4— स्वप्नवासदत्तम् 1 : 9
5— स्वप्नवासदत्तम् व्या0 — गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 24
6— निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम्। प्रियदर्शिका— रामचन्द्र मिश्र द्वितीय अंक पृ0 32
7— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— डॉ0 गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 138
8— प्रियदर्शिका रामचन्द्रमिश्र — द्वितीय अंक पृष्ठ 36

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध मे इन रचनाओं मे कोई विशेष परिचय नही मिलता प्रियदर्शिका मे महारानी अंगारवती के द्वारा भेजे पत्र को अन्तःपुर की दासी कांचनमाला द्वारा पढ़े जाने की चर्चा प्राप्त होती है।[1] इससे प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ शिक्षित थी राजा के अन्तःपुर मे कुमारियों को नृत्य तथा वाद्य आदि की विशिष्ट शिक्षा दी जाती थी। उस समय सती प्रथा का प्रचलन था। प्रियदर्शिका में विध्यकेतु का वध होने पर उसकी स्त्रियाँ सती हो गयी थी।[2] बहुपत्नी विवाह भी प्रचलित थे।[3] राजा के स्नानादि कार्य सम्पादित कराने मे वेश्याओं का उल्लेख हुआ है।

वस्तुतः ये रचनाए राजपरिवारों से सम्बन्धित है अतः इनमें राजपरिवार की स्त्रियाँ के विषय में ही प्रकाश पड़ता है समाज के अन्य वर्गो की स्त्रियोंकी दशा के सम्बन्ध में ये प्रायः मौन ही है।

धर्म एवं कर्मकाण्ड़— सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिये धर्म की महती आवश्यकता होती है कर्तव्य परायण संयमी आस्तिक सत्यवादि काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य से रहित समाज की स्थापना करना ही धार्मिक वेत्ताओं का उद्देश्य था प्रतिज्ञायौगगन्धरायणमः स्वप्नपासवदत्तम प्रियदर्शिका रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम् के आधार पर तत्कालीन समाज के धर्म एवं कर्मकाण्ड़ विषयक निम्नलिखित तथ्य उद्घटित होते है—

भास के नाटकों से स्पष्ट होता है कि समाज धर्म प्रधान था देवता के रूप में यक्षिणी की पूजा की जाती थी! कालाष्टमी को कन्यायें यक्षिणी की पूजा करती थी।[4] किसी भी कठिन कार्य को आरम्भ करने से पहले देवताओं के स्मरण एवं प्रणमन[5] की परम्परा थी देवताओं के मन्दिरों को देवकुल पीठिका कहते थे देवताओं के रूप मे यक्षिणी के अतिरिक्त कार्तिकेंय कात्यायनी तथा शिव की भी पूजा की जाती थी राजा भी देवपूजन करते थे प्रतिज्ञायौगन्धरायणम मे एक स्थल पर चतुष्पथ विधि में श्वानों के बलि देने का

1— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र चतुर्थ अंक पृष्ठ 82
2— प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र प्रथम अंक पृष्ठ 16
3— षोडशान्तः पुरज्येष्ठा पुण्या नगर देवता।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु।। स्वप्नवासदत्तम् — 6 : 9
4— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 96
5— प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 20

भी उल्लेख हुआ है। साथ ही यज्ञीय क्रिया कलापों से सम्बन्धित ज्ञान भी प्राप्त होता है।[1]

हर्ष कें समय जन जीवन में ऐसा विश्वास था कि निश्छल रूप से सम्पादित ध ाार्मिक अनुष्ठान समस्त इच्छाओं की पूर्ति करते है।[2] देवों का दर्शन शुभ माना जाता था।[3] हिन्दू स्त्रियों की देवों तथा ब्राह्मणों के प्रति भक्ति भावना थी प्रियदर्शिका मे उपवास नियम मे स्वस्तिवायन हेतु वासवदत्ता ब्राह्मण विदूषक को आमन्त्रित करती है।[4] रत्नावली में भी वासवदत्ता कामदेव पूजन के उपरान्त विदूषक को स्वस्ति वायन प्रदान करती है। मंगलसूत्र को सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। जिसे सौभाग्य वती स्त्रियां किसी भी परिस्थिति मे नही उतारती थी प्रियदर्शिका मे व्रतोपवास नियम मे वर्तमान देवी वासदत्ता सभी आभूषणो का परित्याग कर देने पर भी मंगलसूत्र को धारण किये रहती है। [5] तापसवत्सराजचरितम मे भी इस प्रकार की धार्मिक भावना का उल्लेख हुआ है।

ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त उस समय विद्यमान जैन तथा बौद्ध धर्म का भी परिज्ञान, नाटकों के माध्यम से होता है। नाटक में श्रमणों का उल्लेख भी हुआ है तथा प्रसंगतः श्रवणक की चन्द्रमा से उपमा भी दी गयी है।[6] प्रतिज्ञायोगन्धरायणम् से उनके आचार–विचार का भी पता चलता है।

वस्तुतः नाटकों में उपलब्ध धर्म का यह स्वरूप सामाजिक समरसता, सहिष्णुता एवं लोकमंगल की भावना को अभिव्यक्त करता है।

नैतिकता – नैतिकता की कोई निश्चित परिभाषा नही दी जा सकती है। वस्तुतः नैतिकता तात्कालिक परिस्थितियों से निर्धारित होती है तथा उसे संचालित करने वाले कारक भी तात्कालिक ही होते है, किन्तु नैतिकता के मूल में ऋजुता की जो भावना विद्यमान रहती है, वह सार्वकालिक ओर शाश्वत होती है, उसे प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्तियों पर आरोपित किया जा सकता है। नैतिकता की इसं सर्वमान्य परिभाषा को प्रतिज्ञायौगधरायणम, स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसत्सराजचरितम् में भी देखा जा सकता है।

1– प्रियदर्शिका – 1 : 6
2– प्रियदर्शिका – 1 : 6
3– रत्नावली – डॉ राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 48
4– 'आर्य स्वस्ति वायनं प्रतीच्छ' रत्नावली राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 49
4– क्षामां मंगलमात्रं ....अद्यप्रियाम। प्रियदर्शिका 2 : 1
6– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् गंगासागर राय – तृतीय अंक पृष्ठ 82

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में प्रतिपादित नैतिक मूल्य राजनीतिक परिवेश से सम्बन्धि ात है, जिससे राजाओं के पारस्परिक व्यवहार को भी निर्धारित किया जा सकता है। राजा की सब प्रकार से रक्षा करना तथा उसे उन्नति के लिए प्रेरित करना, उसके परिजनों, मन्त्रियों का नैतिक उत्तरदायित्व है। नाटक में इस प्रकार की नैतिकता का विन्यास हुआ है। शत्रु द्वारा प्रदत्त उपहार का त्याग करना भी नैतिकता की ही श्रेणी में आता है।

स्वप्नवासवदत्तम्, प्रियदर्शिका , रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम् में प्रतिपादित नैतिकता सर्वमान्य । एवं सार्वकालिक है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् के विपरीत इन चारो कथानको में, प्रेम, स्नेह, व करूण की भावना प्रदिपादित है। अतः इनमें अवस्थापित नैतिकता विषयक मान्यताएं समाज की प्रतिबद्धताओं की द्योतक है। ये नैतिक नियम लिंगभेद से परे मानवमात्र के लिए समान है। इन नाटको में समाज ने यदि सपत्नीत्व की निन्दा की है तो बहु विवाह की प्रशंसा भी नहीं की, क्योंकि इन दोनो से मानव मात्र की सम्प्रभुता प्रभावित होती है। सम्भवतः इसी कारण से भास तथा अनंगहर्ष ने अपनी रचनाओं में ज्येष्ठा पत्नी वासवदत्ता को अनुपस्थित दिखाया है तथा पद्मावती के प्रति उदयन की परांगमुखता दिखायी है। धीरे– धीरे ही इसे सामाजिक के अनुकूल बनाया गया है। जबकि हर्ष की रत्नावली व प्रियदर्शिका में वासवदत्ता को उपस्थित कराकर, राजा के चरित्र का अपकर्ष ही किया गया है।

इन कृतियों में एक सर्वमान्य नैतिक तथ्य प्रकट होता है, वह है बहुविवाह की स्थिति में अपनी पूर्व पत्नी या पत्नियों का ध्यान रखना एवं उनकी भावनाओं को आहत न करना। प्रियदर्शिका व रत्नावली में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जबकि स्वप्नवासदत्तम् तथा तापसवत्सराज चरितम् में यह भावना यत्र–तत्र ध्वनित होती है।

तात्कालिक समाज में जिन नैतिक मान्यताओं का प्रस्फुटन हो रहा था, उनका प्रतिबिम्ब तत्तत् रचनाओं पर स्पष्ट रूप से पड़ा है। समाज का यह नैतिक उत्तरदायित्तव है कि वह अपने नियमों तथा मान्यताओं से उस वर्ग विशेष को परिपुष्ट करे जो वञ्चित है, प्रवञ्चना का शिकार है। भले ही उसमें इस वञ्चना–प्रवञ्चना के प्रति सहमति या असहमति दिखाई दे रही है। नैतिकता के ये भाव अभीष्ट रचनाओं में अवसर प्राप्त परिलक्षित होते है।

शिक्षा — शिक्षा, जीवन को संस्कारित तथा उसे नवीन दिश प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण क्रिया है। मानवीयों भावों को दैवीय भावों तक ले जाने की अद्‌भुत कार्य शिक्षा ही करती है। शिक्षा मानव की अन्तः चेतना को जाग्रत करती है तथा उसका सर्वागीण विकास करती है। समीक्ष्य रचनाओं में शिक्षा के स्वरूप के सन्दर्भ में कुछ तथ्य उद्‌घाटित होते है।

महाकविभास के समय, वेदाध्ययन आश्रमों में किया जाता था।[1] शिक्षा पूर्णतः आवासीय थी। ब्रह्मचारी गुरू के समीप, उनके आश्रमों में रहकर ही शिक्षा प्राप्त करता था। गान्धर्व विद्या का भी उल्लेख हुआ है। वीणावदन की शिक्षा के लिए अलग स्थान होते थे। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में इनके लिए 'नारदीय' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र, व्यापार, मन्त्र विद्या, नक्षत्र विद्या आदि का भी ज्ञान दिया जाता था। राजा के अन्तःपुर में कुमारियों को नृत्य तथा वाद्य आदि की विशिष्ट शिक्षा दी जाती थी। प्रियदर्शिका तथा रत्नावली में चित्रशाला के उल्लेख से ज्ञात होता है कि चित्रकला की शिक्षा के लिए अलग भवन की व्यवस्था थी। इनके अतिरिक्त स्वप्नवासदत्ता व तापसवत्सराज चरितम् में शिक्षा के स्वरूप पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

कलाएँ — समीक्ष्य ग्रन्थों में तत्कालीन समाज में लोकप्रिय कुछ कलाओं का भी पता चलता है। भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायणम तथा स्वप्नवासवदत्तम् में वास्तु सम्बन्धी कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिससे तत्कालीन शिल्पकला का ज्ञान होता है। अन्तपुर का निर्माण कलात्मक होता था, जिन्हें प्रमदवन[2] के नाम से जाना जाता था। इनमें लतामण्डप तथा बैठने के शिलापट्ट भी होता था। भास ने पर्वततिलक नामक शिलापट्ट का उल्लेख किया है।[3] स्नान हेतु अन्तःपुर में दीर्घिका[4] होती थी। राजाओं के निवास हेतु राजाप्रसादो का निर्माण किया जाता था।

सन्दर्भित रूपकों में कई प्रकार के भवनों का उल्लेख हुआ है। सम्भवतः जलमहल को ही समुद्रगृह[5] कहा जाता था। कुछ निवास स्थानों की रचना विशेष प्रकार

1— स्वप्नवासदत्तम् डॉ० गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ 36
2— (क) प्रतियौगन्धरायणम्—डॉ० गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 97
(ख) स्वप्नवासवदत्तम— डॉ० गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 105
3— स्वप्नवासवदत्तम् गंगा सारग राय चतुर्थ अक पृष्ठ 96
4— स्वप्नवासवदत्तम् व्याख्या डॉ० गंगासागर राय चतुर्थ अंक पृष्ठ 81
5— स्वप्नवासदत्तम् व्याख्या डॉ० गंगासागर राय पंचम अंक पृष्ठ 149

की होती थी। इनमें मयूराष्टि मुख प्रासाद तथा[1] सूर्यामूख प्रासाद [2] का उल्लेख हुआ है। प्रासादो का निर्माण कलात्मक होता था। कुछ भवनों में मणियाँ बिछी होती थी, इनको मणिभूमिका [3] कहा जाता था। नाटकों में 'शान्तिगृह' तथा अग्निगृह [4] का भी ज्ञान होता है। शान्तिगृह सम्भवः विश्रान्ति धाम के समान रहा होगा। अग्निगृह के चार द्वार होते थे। नगर में राजमार्ग होते थे तथा वहां नलियाँ होती थी। नगर की गलियों को चतुष्पथ भी कहते थे। नगरों मे प्राकार व तोरण भी होते थे। राजप्रसाद के प्रमुख द्वार को भद्रद्वार [5] कहते थे। कहीं–कहीं तोरण स्वर्ण की चित्रकारी से भी युक्त होते थे, जो काञ्चनतोरण कहलाते थे।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तम् से वास्तुकला का विवरण उपलब्ध होता है तो प्रियदर्शिका व रत्नावली से यह पता चलता है कि राजाओं के दरबार में गायन वादन व नृत्य की कलाओं में निपुण होना अनिवार्य माना जाता था। प्रियदर्शिका मे राजा उदयन विन्ध्यकेतु की कन्या के रूप में उपस्थित अरण्यका को गीत, नृत्य, वाद्यादि समस्त कन्यकोचित कलाओं की शिक्षा दिये जाने का आदेश देता है।[6] सम्भवतः वीणा उस समय लोकप्रिय वाद्य था। संगीत विद्या में पुरूष भी निष्णात थे।[7] राजाओं के अन्तः पुर की दासियाँ भी इत्यादि कलाओं में निपुण थी। [8]

उन दिनों चित्रकला उन्नति के शिखर पर थी। रत्नावली में सागरिका चित्रकला में इतनी कुशल थी कि वह राजा उदयन को मात्र एक बार अत्यल्प समय कि लिए ही देखती है, फिर भी उसका चित्र बनाने में सफल हो जाती है।[9] राजा के अन्तःपुर की दासियाँ भी चित्र कला में प्रवीण थी। सागरिका द्वारा बनाये गये चित्रफलक में उसकी सखी सुसंगता उसका भी चित्र चित्रित कर देती है।[10] नाटिकाओं में उल्लिखित 'चित्रशाला' से प्रतीत होता है कि उन दिनों चित्रकला की शिक्षा के लिए पृथक भवन की व्यवस्था थी।

---

1 प्रतिज्ञायोन्धरायणम् व्या0 डॉ0 गंगासागर राय — द्वितीय अंक — पृष्ठ 68
2 स्वप्नवासदत्तम् डॉ0 गंगासागर राय — षष्ट अंक — पृष्ठ 171
3 स्वप्नवासदत्तम् डॉ0 गंगासागर राय — तृतीय अंक — पृष्ठ 73
4 प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् डॉ0 गंगासागर राय — तृतीय अंक — पृष्ठ 87
5 प्रतिज्ञायौन्धरायणम् — द्वितीय अंक — पृष्ठ 60
6 प्रियदर्शिका — प्रथम अंक — पृष्ठ 17
7– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् डॉ0 गंगासागर राय — द्वितीय अंक — पृष्ठ 62
8– रत्नावली राजेश्वर शास्त्री — प्रथम अंक — पृष्ठ 28–29
9– रत्नावली राजेश्वर शास्त्री — द्वितीय अंक — पृष्ठ 59
10– रत्नावली राजेश्वर शास्त्री — द्वितीय अंक — पृष्ठ 62

खान–पान व रहन–सहन :– समीक्ष्य ग्रन्थो प्रतिज्ञायौगन्धरायणम स्वप्नवासवदत्तम, प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम् में तत्कालीन भोजन व्यवस्था का विशेष विवरण उपलब्ध नही होता अपितु कुछ विशेष पदार्थो का सकेंत मात्र होता है। मोदक[1] अतिप्रिय पदार्थ रहा होगा। माँस मदिरा का भी प्रयोग किया जाता था।[2] समाज के निम्नवर्गीय यिट, चेट, वेश्याएं दासियाँ आदि मघपान करती थीं किन्तु ब्राह्मणवर्ग सुरापायी नहीं था।

रहन–सहन के सन्दर्भ में भी ये कृतियाँ प्रायः मौन ही है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों को ललित काव्य के माध्यम से विस्तारित करने वाले इन ग्रन्थों में भी यही पक्ष रंखाकित हुआ है। क्योंकि इनमें नैसर्गिक गुणों को ही सौन्दर्य माना गया है। जिसके प्रकटीकरण के लिए किसी भी बाह्रा प्रसाधन की आवश्यकता नही पड़ती तथापि उत्सवों के अवसर पर विशेष वस्त्र धारण किये जाते थे।

मनोरंजन के साधन :– स्वस्थ मनोरंजन, स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु आवश्यक है। मनोरंजन के स्वरूप के आधार पर तत्कालीन समाज का चित्र रेखांकित किया जा सकता है। भास, हर्ष, एवं अनंगहर्ष की कृतियाँ अपने काल का प्रतिनिधित्व करती है। इनके आधार पर तत्कालीन समाज के मनोरजक तथ्यों को उद्‌घाटित किया जा सकता है।

स्त्री पुरूष विनोद प्रिय होने के साथ–साथ क्रीडा में भी रूचि रखते थे। स्त्रियाँ कुमारी अवस्था तक ही स्वच्छन्द रूप से खेल सकती थी। कन्दुक क्रीडा इनका प्रिय खेल था।[3] मनोरजंनार्थ वीणावादन गायन[4] भी सीखती थी। मनोरंजन हेतु परस्स्पर हास–परिहास हुआ करते थे।[5] मृगया[6] पुरूष वर्ग के मनोरंजन का प्रिय साधन था। हस्तिग्रहण[7] एक विद्या थी जो मनोरंनार्थ हुआ करती थी। पुरूष भी वीणावादन में कुशल होते थे।

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् गंगासागर राय तृतीय अंक पृष्ठ 76 – 79
2– " " 4 : 1
3– स्वप्नवासवदत्तम् डॉ0 गंगा सागर राय द्वितीय अंक पृष्ठ 56
4– प्रतिज्ञायोगन्धरायम् " " द्वितीय अंक पृष्ठ 51
5– क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावत अयं कन्या भावरमणीयःकालः
स्वप्नवासवदत्तम् द्वितीय अंक पृष्ठ – 58
6– स्वप्नवासवदत्तम् गंगासागर राय प्रथम अंक पृष्ठ– 38
7– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् " प्रथम अंक पृष्ठ – 18

प्रियदर्शिका व रत्नावली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनोरंजन के साधन के रूप में ऋतुओं से सम्बन्धित उत्सव मनाये जाते थे। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक से ज्ञात होता है कि कौमुदीमहोत्सव [1] शरद् ऋतु से सम्बन्धित उत्सव था। नाटको का अभिनय भी मनोरजंन के साधन होते थे। कौमुदीमहोत्सव के अवसर पर उदयनचरित[2] नामक नाटक का अभिनय मनोरंजनार्थ ही हुआ था। बसन्त ऋतु के आगमन पर मदन–महोत्सव[3] नामक उत्सव मनाने की परम्पराथी। इस वसन्तोत्सव में भगवान कामदेव[4] का पूजन होता था। इन उत्सवों के अवसर पर स्त्री पुरूष आमोद–प्रमोद रत हो ,ज़ाते थे। वातावरण अत्यन्त मोहक व उत्साह जनक हो जाता था। स्त्रियाँ मदोन्मत्त होकर नृत्य तथा गायन करती थी।[5] जादू आदि का प्रयोग भी मनोरंजन हेतु होते थे। रत्नावली में मंजोरजनार्थ ऐन्द्रिजालिक का उल्लेख हुआ है।[6]

राजनीति – प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा तापसवस्तसराजचरितम् का कथानक राजनीतिक परिवेश से युक्त है। इनमें राजनीतिक यथार्थता का अत्यधिक कुशलता पूर्वक नियोजन हुआ है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम, एवं तापसवत्सराजचरितम् में निरूपित राजनीति के आधार पर तत्कालीन राजनीतिक कौशल तथा कूटनीतिक रणनीतियों को समझा जा सकता हैं

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में अपनी पुत्री वासवदत्ता के विवाह के प्रति चिन्तित एवं उदयन के गुणों पर मुग्ध राजा प्रद्योत्त कपट से उदयन को बन्दी बनवाता है। वह मल्लिका वृक्ष की आड़ से एक कृत्रिम हस्ति की योजना कर उसके चारों ओर अपने सैनिको को नियुक्त कर देता है। आखेटप्रेमी उदयन उसको पकड़ने जाता है तो प्रद्योत के सैनिक उसे बन्दी बना लेते है। यौगन्धरायण राजा को मुक्त कराने की प्रतिज्ञा कर, समस्त उज्जयिनी को अपने गुप्तचरों से भर देता है। यौगन्धरायण उन्मत्तक का वेष धारण कर, वसन्तक डिण्डिक रूप में तथा रूमण्वान् श्रमणक के वेष में वत्सराज को बड़ी कुशलतापूर्वक मुक्त करा देते है।

1– प्रियदर्शिका रामचन्द्र मिश्र   चतुर्थ अंक पृष्ठ 84
2–   "   तृतीय अंक पृष्ठ 59
3– रत्नावली 1 : 9
4– रत्नावली राजेश्वर शास्त्री प्रथम अंक पृष्ठ 47
5– रत्नावली   1 : 16
6– "   4 : 8–11

तापसवत्सराजचिरतम् में उदयन की विलासिता व उसकी राजकाज की उपेक्षा से चिन्तित मन्त्रियों ने एक राजनयिक योजना तैयार की, जिसके तहत सांकृत्यायनी को परिव्रजिका का वेष धारण कर राजा का चित्र लेकर राजगृह जाना है तथा वहाँ पद्मावती को राजा के प्रति आकर्षित कराना है। यौगन्धरायण स्वयं राजा प्रद्योत के पास जाकर उससे वासवदत्ता के लिए पत्र लिखवाता है, जिसमें उदयन की विलासिता पर चिन्ता एवं उससे निरपेक्ष वासवदत्ता के प्रति खेद व्यक्त किया गया है। लामकायन ब्राह्मण को ब्राह्मण का वेष धारण कराकर प्रयाग भेजा जाता है तथा उनका शिष्य उसके और मन्त्रियों के बीच संदेश वाहक का कार्य करता है। विदूषक व वासवदत्ता भी इस योजना से अवगत है। इसके अतिरिक्त मगधेश्वर से भी इस सम्बन्ध में वार्ता कर ली गयी है। तापसवत्सराजचरितम् में इसी राजनीतिक परिवेश को संयोजत किया गया है। नाटक का समस्त कथा विधान राजनीति की दृढ़ धुरी पर अवस्थित है। नाटक में उच्च राजनीति के कौशल का दर्शन होता है।

इनके अतिरिक्त रत्नावली में भी राजनीतिक कुशलता का दर्शन होता है। यौगन्धरायण द्वारा सागरिका को वासवदत्ता के पास रखना कुशल राजनीति का परिचायक है।

कहना न होगा कि भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष अपने युग के प्रतिनिधि कवि है। उदात्त भावभूमि पर सृजित इनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक नियमो, मान्यताओं एवं अवधारणाओं की स्पष्ट छाप है।

****

उपसंहार–

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की भावना से अनुप्राणित संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट वाहक हैं। देववाणी संस्कृत भाषा अपने वृहद इतिहास मे अत्यन्त महत्वशालिनी रही है। कालान्तर में चिन्तकों एवं साहित्यकारों के संरक्षण में उसके स्वरूप का परिपोषण एवं पल्लवन हुआ। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य, विश्व–साहित्य के शीर्ष पर प्रतिष्ठित हुआ। ऋषियों, मुनियों एवं मनीषियों की मनीषा से अनुस्यूत ज्ञान, संस्कृत भाषा के माध्यम से ही प्रकट हुआ है। महाकवियों ने जनसामान्य की भावना की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा को सर्वोत्तम माना।

कालान्तर में संस्कृत साहित्य की जो अविरल धारा प्रवाहित हुयी, उसमें नाट्य/रूपकों को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। क्योकि रूपक, श्रव्य एवं दृश्य दोनों प्रकार के काव्यों का मिश्रण है इसलिए वह जनसामान्य की रसानुभुति का सर्वोत्तम साधन बन पड़ा है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में काव्य की इस सर्वश्रेष्ठ विधा के शीर्ष महाकवियों–भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष की उत्कृष्ट कृतियों–प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं स्वप्नवासवदत्तम् प्रियदर्शिका एवं रत्नावली तथा तापसवत्सराजचरितम् को आधार बनाया गया है इन कृतियों में भारतीय भावनाओं की कोमल अभिव्यक्ति हुयी है। भारतीय भावना सदा आदर्शोन्मुख रही है, अतः संस्कृत नाटककार भी आदर्शवाद के पक्षपाती हैं।

उल्लिखित पांचो कृतियों का कथानक उदयन की प्रणय कथाओं पर आधारित है, जिनमें वासवदत्ता का चरित्र महत्वपूर्ण है। रामाश्रित, व कृष्णाश्रित कथानको के अतिरिक्त वासवदत्ता उदयन पर आश्रित कथानक ही नाटककारों कों विशेषतः आकृष्ट करता रहा। परिणाम स्वरूप प्रतिज्ञायौगन्धरायणम, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रियदर्शिका, रत्नावली एवं तापसवत्सराज जैसी अनूठी कृतियाँ हमारे समक्ष है। प्रस्तुत शोध में इन कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित विचारणीय तथ्यों का समावेश किया गया है–

प्रथम अध्याय में भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उन रूपको का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने ''वासवदत्ता' के

चरित पर आधारित कथानक को अपनी रचनाओं के लिए चुना। साथ ही वासवदत्ता की ऐतिहासिकता एवं संस्कृत साहित्य में उसके स्थान को स्पष्ट किया गया है। यह अध्याय परिचयात्मक ही बन पडा है।

द्वितीय अध्याय में कथावस्तु के सन्दर्भ में विचार किया गया है। इनमें समीक्ष्य ग्रन्थों की विधाओं के निर्धारण, उनमें सन्निहित, सन्धियों, कार्यावस्थाओं, अर्थप्रकृतियों तथा नाट्यालंकारों के योजना की समीक्षा हुयी है। वस्तुतः कथा वस्तु की सफलता, मर्मस्पर्शी एवं रसात्मक स्थलों को चिन्हित कर, उन्हे कुशलता से चुन लेने में है। जो मानस प्रांगण को गद्‌गद करने में सक्षम हो। भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष ने 'वासवदत्ता चरित' के कथानक पर अपनी रचनाओं का सृजन किया है। तथापि इन तीनों की कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होता है। अत्यन्त लोकप्रिय इस कथा के जिन ऐतिहासिक तत्वों का अस्तित्व भास तथा अनङहर्ष की रचनाओं में प्राप्त होता है, हर्ष की रचनाओं में उस ऐतिहासिकता का अभाव पाया जाता है। उदयन कथा का विस्तृत रूप कथासरित्सागर में उपलब्ध है किन्तु भास, हर्ष तथा अनङहर्ष ने अपनी नाट्य कृतियों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए, अपनी कल्पना शक्ति से, उनमें कुछ नवीन तथ्यों का समावेश किया है तथा कुछ तथ्यों को छोड़ दिया है। उनकी यही प्रवृत्ति ही रचनाओं में परस्पर पर्याप्त अन्तर दिखाती है।

वासवदत्ता कथाश्रित भासप्रणीत प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् व स्वप्नवासवदत्तम्, अन्य रूपको की उपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण् की कथावस्तु राजनीतिक दाँव–पेंच, छल, प्रवंचना सें अनुप्राणित है किन्तु 'स्वप्नवासवदत्तम्' विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम पर आधारित है। इसका वस्तु विधान अत्यन्त स्वाभाविक है। भास की इन रचनाओं की कथावस्तु में स्वाभाविकता, ऐतिहासिकता, नाटकीयता, प्रभावोत्पादकता तथा घटनाओं की कार्यान्वित का कुशलता पूर्वक निर्वहन हुआ है। हर्ष की नाटिकाएं प्रियदर्शिका व रत्नावली दोनो का कथानक समान है। प्रणय आधारित इन रचनाओं की कथावस्तु ऐतिहासिकता की अपेक्षा कल्पनात्मक ज्यादा बन पड़ी है। हर्ष ने कथानक की गत्यात्मकता, प्रभावोत्पादकता, तथा रसात्मक वृद्धि हेतु अनेक मौलिक कल्पनाएं की है।

जिसके कारण ऐतिहासिक तत्व तो तिरूभूत हुआ है। किन्तु श्रृंगार अपने उच्चतम स्वरूप में अभिव्यक्त होकर सहृदयों की प्रीति का पोषक बना। अनंगहर्ष कृत तापसवत्सराज चरितम् की कथावस्तु, भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् से अत्यधिक साम्य रखती है। अनंगहर्ष ने भी कथानक को प्रभाव शाली एवं गतिशील बनाने हेतु कुछ मौलिक उद्भावनाएं की है, जिससे ऐतिहासिक तथ्य कुछ शिथिल हुए हैं।

तृतीय अध्याय पात्रसंयोजन पर आधृत है। इसमें नायक–नायिकाओं की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति को निर्धारित करते हुए उनके चरित्र की विशेषताओं पर विस्तृत विमर्श हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों के संयोजन, व उनकी चरित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। 'उदयन' को तीनो ही नाटककारों ने नायक के रूप में चित्रित किया है। भास ने उसे 'धीरोदात्त' की कोटि में रख कर उसके चरित्र को आदर्शोन्मुख बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है तो हर्ष ने उदयन को 'धीरललित' कोटि में रखकर उसके चरित्र का अपकर्ष ही किया है। यद्यपि अनंगहर्ष ने भी उदयन को 'धीरोदात्त' कोटि में रखने का प्रयत्न किया है। किन्तु वे उसमें उन गुणों का निवेश करने में अक्षम रहे हैं जो भास के उदयन में मिलते हैं। भास का उदयन समाज का जीवन्त पात्र है। वह कलाप्रेमी होने के साथ–साथ एक वीर योद्धा भी है। प्रेम एवं दाक्षिण्य उसका महान गुण है। पद्मावती से विवाहोपरान्त भी वह वासवदत्ता को विस्मृत नही करता साथ ही पद्मावती को अपने इस भाव से दूर ही रखता है। यही वह गुण है जो अनंगहर्ष के उदयन में नही मिलता। तापसवत्सराज का उदयन वासवदत्ता पर अत्यन्त आसक्त है। इस प्रगाढ़ अनुरक्ति के कारण वह नवोढा पद्मावती के भावो की चिन्ता नही करता । हर्ष का उदयन तो शुद्ध धीरललित कोटि का हैं। जो अन्य स्त्री पर अनुरक्त होकर भी ज्येष्ठा पत्नी की उपेक्षा नही करता। वासवदत्ता का चरित्र इन सभी कृतियों मे विशेष रूप से समीक्ष्य हैं। भास एंव अनंगहर्ष दोनों ही उसके चरित्र को शीर्ष स्थान तक ले जाते हैं जबकि हर्ष ने उसमें नारीगत सामान्य स्वभाव का सन्निवेश किया है। भास व अनंगहर्ष की नायिका 'वासवदत्ता' त्याग की मूर्ति एवं प्रीति का पुंजीभूत परिणाम है। उसका चरित्र भारतीय नारी के लिए आदर्श है। यौगन्धरायण तो सभी रचनाओ में

बुद्धिमान व स्वामिभक्त अमात्य के रूप में चित्रित हुआ है। कि इस अध्याय मे तीनो नाटककारों की पात्र चयन की प्रवृत्तियों की समीक्षा की गयी है।

चतुर्थ अध्याय में रसाभिव्यंजन पर विमर्श हुआ है। कथावस्तु के अनुरूप भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में वीर रस को एवं स्वप्नवासवदत्तम् मे विप्रलम्भ श्रृंगार को अंगीरस के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। हर्ष ने दोनों ही प्रणय नाटिकाओं में श्रृंगार को शीर्ष स्थान देकर नाट्यशास्त्रीय पद्धति का अनुगमन किया है। अनंगहर्ष तो करूण को अंगीरस के रूप अभिव्यन्जित कर भवभूति के समक्ष स्थित हुए है। तीनों नाटककारों ने अपनी कथावस्तु के अनुरूप मुख्य रस को प्रतिष्ठित कर अन्य रसों की भी भावपूर्ण अभिव्यक्ति की है।

पंचम अध्याय, काव्य सौन्दर्य एवं भावभिव्यजना से संम्बन्धित है। भास, हर्ष एवं अनंगहर्ष ने अपनी रचनाओं में मानवीय भावों की सूक्ष्म व भावपूर्ण अभिव्यक्ति की हैं इनकी रचनाओं में प्रेम, स्नेह, त्याग, सहानुभूति, कर्तव्यपरायणता, स्वामिभक्ति आदि भावो की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है। जिससे सामाजिक तदाकार हो जाता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे स्वामिभक्ति व बुद्धि कौशल के भाव के अतिरिक्त कन्या के लिए माता–पिता की जिस चिन्ता का निदर्शन हुआ है, वह समाजिक के लिए अनुभव सिद्ध है। इसीप्रकार स्वप्नवासवदत्तम् व तापसवत्सराजचरितम् में उत्कृष्ट त्याग की मनोहर अभिव्यक्ति हुयी है। इन रचनाओं मे जहां वासवदत्ता का त्याग उसके प्रति प्रेम की पुष्टि करता है। वहीं उदयन की दशा उनकी पत्नि–निष्ठा को व्यन्जित करता है। पद्मावती के कोमल भावों की भी व्यंजना हुई है। प्रणय-चित्रण में तो हर्ष ने सभी को पीछे छोड़ दिया है। प्रियदर्शिका व रत्नावली में विशुद्ध प्रणय चित्रण हुआ है। प्रणय और प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। नाटककारों ने प्रकृति को मानव के सुख–दुख मे सदा सहचरी के रूप मे चित्रित किया है। उन्होंने मानवीय भावनाओं को प्रकृति के स्पन्दन में महसूस कर सामाजिकों को भी इसकी अनुभूति करायी है। इस अध्याय मे सन्दर्भित नाटककारों की सौन्दर्यप्रियता की भी समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

षष्ठ अध्याय, भाषा–शैली एवं गुण–दोष से सम्बन्धित है। नाटको की सफलता

के लिए अनिवार्य हैं कि उनकी भाषा शैली सरल, सरस एवं सुबोध हो। नाटकीय संविधान दृढ़ हो तथा संवाद संक्षिप्त किन्तु चुस्त हो। अभिनेयता तो उनकी सफलता की प्रथम अनिवार्यता है। इस अध्याय मे नाटककारों को इन कसौटियों पर परखने का प्रयास किया है। महाकवि भास की रचनाएं प्रतिज्ञायौन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की सफलता के लिए अनिवार्य सभी गुणो से समन्वित हैं। उन्होंने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर संक्षिप्त, गम्भीर व उद्देश्य पूर्ण करने में समर्थ संवादों की योजना प्रस्तुत की है। अभिनेयता की दृष्टि से तो भास के नाटक सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके नाट्य नैपुण्य का यह सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् मे उदयन तथा वासवदत्ता मंच पर कभी नही आते किन्तु दर्शकों को उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास बना रहता है। अप्रत्याशित घटनाओं की योजना में भी उन्हें दक्षता प्राप्त है। इन सब गुणों के होते हुए भी भास की रचनाओं में कतिपय व्याकरणिक त्रुटियां परिलिक्षित होती हैं। महाकवि हर्ष ने भी पात्रानुकूल भाषा एवं प्रांजल शैली का विन्यास किया है। उनके संवाद स्पष्ट एवं सुश्लिष्ट है। प्रसाद गुणोपेत इनकी भाषा मे सहज प्रवाह है जो भावाभिव्यक्ति मे पूर्ण समर्थ है। रूपक को अभिनेय बनाने में हर्ष को विशेष दक्षता प्राप्त है। घटनाओं एवं वर्णनो की तारतम्यता एवं अद्भुत वर्णन कुशलता से इन्होंने नाटिकाओं को पूर्ण अभिनेय बनाया हैं कथानक की दृष्टि से प्रियदर्शिका भले ही शिथिल हो किन्तु वह अभिनेयता के गुणों से समवेत है। रत्नावली तो इनकी नाट्य प्रतिभा का चरम निदर्शन है। जो प्रतिनिधि रचना के रूप में प्रथित है। अनगहर्ष की तापसवत्सराजचरितम् भाषा एवं शैली मे कुछ न्यून बन पड़ी है। इसमें कहीं–कहीं लम्बे–लम्बे संवाद तथा दीर्घ स्वगत कथनों की प्रचुरता है किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से यह भी अनूठी रचना है।

सप्तम अध्याय, तत्कालीन समाज एवं संस्कृति से सम्बन्धित है। साहित्य समाज का दर्पण होता हैं इन रूपको मे प्रतिबिम्बित तत्कालीन समाज एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासदत्तम्, प्रिय दर्शिका, रत्नावली, व तापसवत्सराजचरितम् में प्रक्षेपित सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों एवं अवधारणाओं को उद्घृत करने का प्रयत्न किया गया है।

शोध हेतु समीक्ष्य ग्रन्थों–प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् स्वप्नवासवदत्तम्, प्रियदर्शिका,

रत्नावली एवं तावसवत्सराजचरितम् में 'वासवदत्ता' नामक पात्र महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में न्यस्त है। रूपको मे इसके पक्ष को निर्णायक पक्ष के रूप मे प्रतिष्ठा मिली हैं। 'वासवदत्ता कथाश्रित रूपको का तुलनात्मक अध्ययन' भास, हर्ष व अनंगहर्ष की इन रचनाओं के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का विनम्र प्रयास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्र0सं0	ग्रन्थ	टीकाकार/सम्पादक	प्रकाशक
1	प्रतिज्ञायौगन्धरायणम (भास)	डॉ0 गंगासागर राय	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1994
2	भासनाटकचक्रम (द्वितीयो भागः)	आचार्य बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी –1
3	प्रतिज्ञायौगन्धरायणम (भास)	'प्रकाश' टीका	
4	स्वप्नवासवदत्ता (भास)	डॉ0 गंगासागर राय	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय संस्करण 2003
5	स्वप्नवासवदत्ता (भास)	पं0 अनन्तराम शास्त्री बेताल एवं पं0 जगन्नाथ शास्त्री होशिङ्ग	चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी –1 द्वादश संस्करण –1977
6	स्वप्नवासवदत्ता (भास)	प्रो0 पी0पी0 शर्मा	रामनारायण इलाहाबाद, सप्तम् संस्कृत– 1956
7	स्वप्नवासवदत्ता (भास)	आचार्य शेषराज शर्मा ' रेग्मी'	चौखम्भा साहितय
8	स्वप्नवासवदत्ता (भास)	पं0 ब्रजबिहारी लाल शर्मा	लक्ष्मी पुस्तक सदन, गाँधीनगर दिल्ली, प्रथम संस्करण– 1971
9	प्रियदर्शिका (श्री हर्ष)	पं0 रामचन्द्र मिश्र	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
10	प्रियदर्शिका नाटिका (श्री हर्ष)	डॉ0 कृष्णकुमार	साहित्य भण्डार मेरठ
11	रत्नावली नाटिका (श्री हर्ष)	पं0 रामचन्द्र मिश्र	चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी –1 चतुर्थ संस्करण –1976
12	रत्नावली नाटिका (श्री हर्ष)	डॉ0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री, मुसलगाँवकर	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय संस्करण 2004
13	रत्नावली नाटिका (श्री हर्ष)	डा0 शिवराज शास्त्री	साहित्य भण्डार मेरठ, संशोधित नवीन संस्करण– 1994
14	रत्नावली नाटिका (श्री हर्ष)	पं0 परमेश्वरीदीन पाण्डेय	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
15	तापसवत्सराज नामनाटकम (अनङ्गहर्ष)	डॉ0 देवीदत्त शर्मा एवं प्रो0 इन्द्रदत्त उनियाल	साहित्य भण्डार मेरठ–2, प्रथम संस्करण– 1969
16	नाट्ययशास्त्रम् (भरतमूनि)	श्री सत्यप्रकाश शर्मा	चौखम्भा सूर्यभारती प्रकाशन, वाराणसी पुर्नमुद्रित संस्करण – 2000
17	नाट्ययशास्त्रम् (भरतमूनि)	डॉ0 वटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी

18	दशरूपकम् (धनञ्जय)	श्री निवास शास्त्री	साहित्य भण्डार मेरठ
19	काव्य प्रकाश (मम्मट)	आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी षष्टम् संस्करण –1998
20	काव्यप्रकाश (मम्मट)	डॉ0 सत्यव्रत सिह	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी
21	साहित्यदर्पण (विश्वनाथ)	डॉ0 सत्यव्रत सिह	चौखम्भा विद्या भवन चौक, वाराणसी–1 संस्करण– 1957
22	साहितयदर्पण (विश्वनाथ)	लोकमणि दाहाल	चौखम्भा सुरभारती वाराणसी
23	ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन)	आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी
24	वक्रोक्तिजीवितम् (कुन्तक)	श्री राधेश्याम मिश्र	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी पंचम संस्करण–2001
25	वक्रोक्तिजीवितम् (कुन्तक)	श्री परमेश्वरीदीन पाण्डेय	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण 1984
26	संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय	हिन्दी समिति, सूचना विभाग उ0प्र0
27	ए0बी0कीथ – संस्कृत नाटक	भाषान्तरकार – डॉ0 उदयभानू सिंह	मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली द्वितीय संस्करण 1971
28	नाट्यदर्पण (रामचन्द्र गुणचन्द्र)	थानेशचन्द्र उत्प्रेति	
29	काव्यालंकार (रूद्रट)	नामिसाधु	
30	रसगंगाधर (पंडितराज जगन्नाथ)		

31 काव्यालंकारसूत्र – भामह

32 काव्यमिमांशा – राजशेखर

33 कथासरित्साबर – सोमदेव

34 वृहत्कथा – गुणाढ्य

35 संस्कृत नाट्य सिद्धान्त– डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी

36 भारतीय नाट्य परमपरा और अभिनय दर्पण– वाचस्पति गैरोला

37 आधुनिक संस्कृत नाटक : नये तथ्य नये आयाम – रामजी उपाध्याय

38 मध्यकालीन संस्कृत नाटक : नये तथ्य नये आयाम–रामजी उपाध्याय

39 भारतीय नाट्य शास्त्र और रंगमंच – रामसागर त्रिपाठी

40 संस्कृत सुकवि समीक्षा – आचार्य बलदेव उपाध्याय– 1963

41 संस्कृत कवि दर्शन – डॉ0 भोलाशंकर व्यास – 1968

42 महाकवि भास : एक अध्ययन– आचार्य बलदेव उपाध्याय

43 भास एवं भवभूति के नाटको में रसतत्व– डा0 उमेश पाण्डेय

44 संस्कृत साहित्य की रूप रेखा – पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा0 शान्ति कुमार नारायण व्यास

45 संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गैरोला

46 संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास–डा0 कपिलदेव द्विवेदी

47 संस्कृत साहित्य का इतिहास–डा0 दयाशंकर शास्त्री

48 संस्कृत साहित्य का इतिहास–डा0शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम कानपुर

49 संस्कृत साहित्य का इतिहास–डा0 कीथ (अनुवादक–डा0 मंगलदेव शास्त्री)

50 संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा0 रामजी उपाध्याय

51 नाट्यशास्त्र–काशीसंस्करण

52 प्राचीन भारत का इतिहास–बी0डी0 महाजन

53 प्राचीन भारत का इतिहास–एल0पी0 शर्मा

54 History of Sanskrit Literature-A. Macdonell, 1962

55 History of Sanskrit Literature-A.B. keith, 1948

56 History of Indian Literature-M. Winternitz, 1927

57 Sanskrit Drama A. B. Keith 1923

58 History of Sanskrit Poetics-V.P.Kane

59 Sanskrit Poetics-S.K. Dey, K.L. Mukhopadhayaya

60 Bhasha A Study-Pulasker

61 Priyadarshika-Kolambia University Press

62 Paritijanayaugandharayana of Bhasa-Prof. C.R.Devdhar

63 Playsacribed to Bhasa-Prof. C.R.Derdhar

64 उत्तमरामचरितम्–भवभूति

65 मेघदूतम्–कालिदास

66 मालविकाग्निामिश्रं–कालिदास